वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 3
ISBN 978-93-80353-71-5

त्रिलोक भास्कर

–रचयित्री –

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

भगवान शांतिनाथ जन्म, दीक्षा व निर्वाणकल्याणक दिवस–ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 11 जून 2010 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 292943

Website : www.jambudweep.org

E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

तृतीय संस्करण	वीर नि. सं. 2537	मूल्य
1100 प्रतियाँ	फाल्गुन कृ. 11	100/-रु.
	भगवान ऋषभदेव केवलज्ञान दिवस	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

प्रथम संस्करण से द्वितीय संस्करण (सन्-1999) तक–2200 प्रतियाँ

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषय-दर्पण

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	17
प्राक्कथन	20
त्रैलोक्य चैत्य वंदना	23
पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	28
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	37
वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के सहयोगियों की सूची	44

ग्रंथ विषय सूची

मंगलाचरण	1

सामान्य लोक का वर्णन

तीन लोक के जड़भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण	2
लोक की चौड़ाई का प्रमाण	2
त्रस नाली का प्रमाण	2
अधोलोक के राजू का वर्णन	2
अधोलोक से मध्यलोक तक की चौड़ाई घटने का क्रम	3
ऊर्ध्वलोक में राजू के प्रमाण का वर्णन	3
प्रथम स्वर्ग से सिद्ध शिला तक लोक की चौड़ाई बढ़ने-घटने का क्रम	4
वातवलयों का वर्णन	5
लोक का घनफल	6
अधोलोक का घनफल	6
ऊर्ध्वलोक का घनफल	6
त्रस नाली का वर्णन	7
कोस एवं योजन बनाने की विधि	7
ऊत्सेधांगुल से किनका प्रमाण है?	9
प्रमाणांगुल से किन-किन का माप होता है?	9
आत्मांगुल से किन-किन का प्रमाण होता है ?	9

विषय	पृष्ठ संख्या
पल्य बनाने की प्रक्रिया	9
सागर का प्रमाण	10

अधोलोक का वर्णन

नरक पृथ्वियों के अन्य नाम	11
पृथ्वियों की मोटाई का प्रमाण	12
नरक के बिलों का वर्णन	12
शीत ऊष्ण बिलों का प्रमाण	12
नारक बिलों में भेद	13
पहले नरक के इंद्रक बिलों के नाम	14
इंद्रक और श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण	14
प्रकीर्णक बिलों का प्रमाण	15
इंद्रक, प्रकीर्णक और श्रेणीबद्ध बिलों की पृथक्-पृथक् संख्या	15
पृथक्-पृथक् नरकों में बिलों का विस्तार	16
इन बिलों का तिरछा अंतराल	16
49 इंद्रक बिलों की मोटाई का प्रमाण	17
इंद्रक बिलों के अंतराल का प्रमाण	17
सातों नरकों के पटलों का आपस में अन्तर	18
सातों नरकों में एक-दूसरे से कितना अन्तर है ?	18
सातों नरकों के अंतिम इंद्रक और द्वितीय पृथ्वी के प्रथम इंद्रक का अन्तर	19
नारकियों के जन्म लेने के उपपाद स्थान का वर्णन	19
अधोलोक का नक्शा	20
नरक में उत्पत्ति का वर्णन	21
नरक के दुःखों का वर्णन	21
नारकियों का आहार और मिट्टी के दोष	24
तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक जाने वालों का वर्णन	24
नारकी के दुःखों के भेद	24
असुर कुमार कृत दुःखों का वर्णन	25
नरक में अवधिज्ञान का वर्णन	25
अवधि के क्षेत्र का प्रमाण	25
नरक में सम्यक्त्व के कारण	26

विषय	पृष्ठ संख्या
नरक में जाने के कारण	27
नारकियों के शरीर की अवगाहना	27
प्रत्येक नरक के प्रथम पटल और अंतिम पटल में शरीर की अवगाहना का प्रमाण	27
सातों पृथ्वियों में शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना	28
नारकियों की लेश्यायें	28
नारकियों की आयु	29
नरक में नारकियों के जन्म लेने के अंतर का वर्णन	30
कौन-कौन से जीव किन-किन नरकों में जाने की योग्यता रखते हैं	30
नरक से निकलकर नारकी किन-किन पर्यायों को प्राप्त कर सकते हैं	31
नारकी जीवों के वर्णन का चार्ट	32
भवनवासीदेव	
भवनवासी देवों का स्थान	34
भवनवासी देवों के भेद	34
व्यंतरवासी देवों के भेद	34
भवनवासी देवों के चिन्हों का वर्णन	34
भवनवासी देवों के भवनों का प्रमाण	35
भवनवासी देवों के इंद्रों का वर्णन	35
इंद्रों के भवनों की संख्या	35
आगे उत्तर इंद्रों का प्रमाण	37
भवनवासियों के निवास स्थान के भेद	37
भवनों का वर्णन	38
जिनमंदिर का वर्णन	38
देवों के भवनों का वर्णन	39
परिवार देवों का वर्णन	40
पारिषद देव	41
इंद्रों की देवियों की संख्या	42
मानसिक आहार का वर्णन	43
देवों के उच्छ्वास का वर्णन	43

विषय	पृष्ठ संख्या
देवों के शरीर के वर्णन	44
इंद्रों का वैभव	44
देवों की आयु का वर्णन	45
देवियों की आयु का वर्णन	45
देवों के शरीर की अवगाहना	45
भवनवासी देवों का चार्ट	46
देवों का अवधिज्ञान एवं विक्रिया	47
भवनवासी देवों में जन्म लेने के कारण	47
भवनवासी देवों में सम्यक्त्व के कारण	47
देवों के जन्म स्थान	47
भावन इंद्र चार्ट	49
व्यंतरवासी देव	
व्यंतरवासी देवों के निवास स्थान	52
व्यंतर देवों के भवन आदिकों का विस्तार आदि	52
व्यंतर देवों के भेद	53
व्यंतर देवों के चिन्ह विशेष	53
व्यंतर देवों के अंतर्गत कुलों के भेदों का वर्णन	54
किन्नर के 10 भेद	54
किंपुरुष के 10 भेद	54
महोरग जाति के 10 भेद	54
गंधर्वजाति के देवों के 10 भेद	55
यक्षों के 12 भेद	55
राक्षसों के 7 भेद	55
भूतों के 7 भेद	55
पिशाचों के 14 भेद	56
व्यंतर देवों के शरीर के वर्ण	57
दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र	57
इंद्रों का वैभव	57
व्यंतर देवों के परिवार देव	58

विषय	पृष्ठ संख्या
व्यंतर देवों के विशेष स्थान	59
व्यंतर देवों का आहार	61
देवों के उच्छ्वास का वर्णन	61
देवों के अवधिज्ञान का विषय	61
व्यंतर देवों की शक्ति एवं विक्रिया का वर्णन	61
देवों के शरीर की अवगाहना	62
व्यंतर देवों में जन्म लेने के कारण	62
इन देवों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण	62
व्यंतर देवों का विशेष वर्णन	63
मध्य लोक	
जम्बूद्वीप के परकोटे का वर्णन	66
जम्बूद्वीप के मुख्य चारद्वारों का वर्णन	68
द्वारों के अधिपति व्यंतर देवों का वर्णन	68
विजय देव के नगर का वर्णन	68
छह कुलाचल और सात क्षेत्र	69
भरत क्षेत्र का नक्शा	70
क्षेत्र एवं पर्वतों के विस्तार का प्रमाण	71
भरतक्षेत्र विजयार्ध पर्वत का वर्णन	71
सिद्धकूट पर स्थित जिनमन्दिर	74
दक्षिण उत्तर भरत का प्रमाण	76
हिमवन् पर्वत का वर्णन	77
हिमवन् पर्वत के 11 कूटों का वर्णन	77
जिनभवन का वर्णन	77
शेष कूटों का वर्णन	78
पद्म सरोवर का वर्णन	79
पद्म द्रह का नक्शा	80
कमल का वर्णन	81
जिनमंदिरों का वर्णन	83
गंगा नदी का वर्णन	83

विषय	पृष्ठ संख्या
गंगा कुण्ड का वर्णन	84
गंगा कूट का चित्र	85
गंगा नदी के आगे बढ़ने का वर्णन	86
सिंधु नदी का वर्णन	87
छह-खंड का विभाजन	87
वृषभाचल का वर्णन	87
हैमवत क्षेत्र	88
शब्दवान् वृत्तवैताढ्य	88
नाभिगिरि का चित्र	89
रोहितास्या नदी का वर्णन	89
महाहिमवन पर्वत का वर्णन	90
महापद्म सरोवर का वर्णन	90
महापद्म सरोवर के कूट	91
रोहित नदी	91
हरिक्षेत्र एवं निषध पर्वत का वर्णन	91
निषध पर्वत	92
निषध पर्वत के कूटों का वर्णन	92
तिगिंछ सरोवर	93
कमल का वर्णन	93
सरोवर संबंधी कूटों का वर्णन	93
हरित् नदी	93
विदेह क्षेत्र का वर्णन	94
सुमेरु पर्वत	94
सुमेरु पर्वत के वर्ण का कथन	96
सुमेरु पर्वत की हानि वृद्धि का क्रम	96
सुमेरु पर्वत का चित्र	97
चूलिका का वर्णन	98
मेरु पर्वत के शिखर का विस्तार	99
सुमेरु की कटनी के स्थान का प्रमाण	99

विषय	पृष्ठ संख्या
पांडुकवन का वर्णन	99
पांडुकशिला का वर्णन	100
पांडुकशिला का प्रमाण	100
सिंहासन आदि का वर्णन	101
अन्य तीन शिलाओं का वर्णन	101
पांडुक वन में स्थित लोकपाल देवों के भवनों का वर्णन	101
लोकपालों का परिवार, देवियाँ आदि	102
पांडुकवन के चैत्यालयों का वर्णन	102
चैत्यवृक्ष का वर्णन	105
मंदिर के चारों तरफ ध्वजपंक्ति, चैत्यवृक्ष व मानस्तंभ का वर्णन	106
सौमनस वन का वर्णन	107
पुष्करिणी एवं सौधर्म इंद्र के भवनों का वर्णन	107
पुष्करिणी एवं ईशान इंद्र के भवनों का वर्णन	109
सौमनस वन के जिनमंदिर	109
नंदन वन का वर्णन	110
भद्रसाल वन का वर्णन	110
गजदंत पर्वत का वर्णन	111
सीतोदा नदी का वर्णन	113
सीतोदा नदी के अंतर्गत पाँच सरोवरों का वर्णन	114
कांचन शैलों का वर्णन	115
आठ दिग्गज पर्वतों का वर्णन	115
सीता नदी का वर्णन	115
सुमेरु सहित सीता नदी का चित्र	116
सीता नदी के पाँच द्रहों का वर्णन	117
देवकुरु का वर्णन	118
देवकुरु उत्तर कुरु का चित्र	119
शाल्मली वृक्ष का वर्णन	120
उत्तर कुरु का वर्णन	120
जम्बू वृक्ष का चित्र	121

विषय	पृष्ठ संख्या
जम्बू वृक्ष का वर्णन	122
शाल्मली वृक्ष का वर्णन	125
पूर्व विदेह, अपर विदेह का वर्णन	126
वक्षार पर्वतों का वर्णन	126
विभंग नदियों का वर्णन	127
देवारण्य भूतारण्य वनों का वर्णन	127
बत्तीस विदेहों का वर्णन	128
बत्तीस विदेह के प्रत्येक के छह-छह खंड	128
आर्यखण्ड का वर्णन	130
विदेह क्षेत्र में कितनी चीजें हैं ?	131
नील पर्वत का वर्णन	132
केसरी सरोवर का वर्णन	132
रम्यक क्षेत्र का वर्णन	132
रुक्मि पर्वत का वर्णन	133
हैरण्यवत क्षेत्र का वर्णन	133
शिखरी पर्वत का वर्णन	134
ऐरावत क्षेत्र का वर्णन	134
जम्बूद्वीप की 34 कर्मभूमि	135
6 भोगभूमि	135
शाश्वत कर्मभूमि	135
षट्काल परिवर्तन	135
जम्बूद्वीपस्थ छह कुल पर्वत का चार्ट	136
जम्बूद्वीपस्थ सात क्षेत्र का चार्ट	136
प्रथम काल का वर्णन	138
द्वितीय काल का वर्णन	139
तृतीय काल का वर्णन	140
कुलकरों की उत्पत्ति	140
चतुर्थकाल का वर्णन	141
त्रेसठ शलाका पुरुष	142

विषय	पृष्ठ संख्या
पंचम काल का वर्णन	143
छठे काल का वर्णन	144
उत्सर्पिणी का पहला छठा काल	145
उत्सर्पिणी का पंचम काल	145
उत्सर्पिणी का चतुर्थ काल	146
उत्सर्पिणी का तृतीय काल	146
उत्सर्पिणी का द्वितीय काल	147
प्रथम काल का वर्णन	147
भरत ऐरावत के म्लेच्छ खण्डों की व्यवस्था	147
जम्बूद्वीप की सभी चीजों का उपसंहार	148
जम्बूद्वीप में नब्बे कुण्ड	149
छब्बीस सरोवर	149
प्रमुख नदियाँ	149
परिवार नदियाँ	149
जम्बूद्वीप में वेदियाँ और उपवन खण्ड	149
सात क्षेत्र	150
बत्तीस विदेह	150
चौंतीस कर्मभूमि	151
अड़सठ विद्याधर श्रेणियाँ	151
एक सौ सत्तर म्लेच्छ खण्ड	151
छह भोगभूमि	151
जम्बूद्वीप के पर्वतों के कूट	151
जम्बूद्वीप के चैत्यालय	152
जम्बूद्वीप के दो वृक्ष	152
जम्बूद्वीप के परिवार वृक्ष	152
श्री देवी के परिवार कमल	153
लवण समुद्र का वर्णन	153
मध्यलोक सामान्य का नक्शा	154
लवण-समुद्र का नक्शा	155

विषय	पृष्ठ संख्या
समुद्र के मध्य में पाताल	156
चार उत्कृष्ट पाताल	156
चार मध्यम पाताल	157
1000 जघन्य पाताल	157
नागकुमार देवों के 1,42,000 नगर	158
उत्कृष्ट पाताल के आसपास के 8 पर्वत	158
आठ सूर्यद्वीप	159
समुद्र में गौतमद्वीप का वर्णन	159
मागध द्वीप आदि का वर्णन	159
48 कुमानुष द्वीप	160
कुभोगभूमि में जन्म लेने के कारण	161
धातकी खण्ड द्वीप का वर्णन	164
इष्वाकार पर्वत	164
कुल पर्वत और क्षेत्रों का वर्णन	164
6 पर्वतों का विस्तार आदि	165
7 क्षेत्रों का विस्तार	165
पूर्व धातकी खंड के विजयमेरु का वर्णन	166
गजदंत का वर्णन	166
धातकी वृक्ष	166
विदेह के वक्षार, विभंगा नदियों और क्षेत्रों का विस्तार	166
कालोदधि समुद्र का वर्णन	167
पुष्कर द्वीप एवं मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन	168
मानुषोत्तर पर्वत का चार्ट	169
पुष्करार्द्ध द्वीप का वर्णन	171
मनुष्यों का अस्तित्व कहाँ तक है?	172
भरत आदि क्षेत्रों में गुणस्थानों का वर्णन	173
मनुष्यों को सुख कहाँ-कहाँ पर है?	174
मनुष्यगति में सम्यक्त्व के कारण	175
तिर्यक् लोक का वर्णन	175

विषय	पृष्ठ संख्या
समुद्र के जल का स्वाद	176
जलचर जीव कहाँ हैं?	176
द्वीप समुद्र के अधिपति व्यंतरदेव	176
नंदीश्वर द्वीप	177
पूर्व दिशा के पर्वत	177
तेरह जिनमंदिर	177
नंदीश्वर द्वीप का नक्शा	178
दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा के पर्वत	179
अरुणवर द्वीप समुद्र	180
ग्यारहवां कुण्डलवर द्वीप	180
13 वां रुचकवर द्वीप	181
रुचकवर पर्वत व द्वीप का नक्शा 1	182
मध्यलोक के 458 चैत्यालय	182
रुचकरवर पर्वत व द्वीप का नक्शा 2	183
दूसरा जम्बूद्वीप	183
स्वयंभूरमण द्वीप	184
तिर्यंचों की भोगभूमि कर्मभूमि व्यवस्था	185
तिर्यंचों की आयु	185
तिर्यंचों की उत्पत्ति गुणस्थान आदि का वर्णन	185
सम्यक्त्व के कारण	186
कौन तिर्यंच कहाँ तक जन्म ले सकते हैं	186
सुमेरु पर्वत का चित्र	188
ज्योतिर्वासी देव	
ज्योतिर्लोक प्रकरण	189
ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊँचाई	189
सूर्य आदि के विमानों का प्रमाण	189
ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण	190
ज्योतिष्क देवों के वाहन देव	190
शीतउष्ण किरणें	190

विषय	पृष्ठ संख्या
सूर्य आदि के बिम्ब में स्थित जिनमंदिर प्रासाद आदि	191
देवों की आयु	191
1 चंद्र का परिवार	191
सूर्य का गमन क्षेत्र	191
एक मुहूर्त और एक मिनट में सूर्य का गमन	192
दक्षिणायन उत्तरायण	192
चक्रवर्ती द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन	192
चंद्र की गलियाँ	192
कृष्ण शुक्ल पक्ष	193
लवण समुद्र में ज्योतिष देव	193
धातकी खण्ड आदि द्वीप समुद्रों में ज्योतिषी देव	193
ध्रुवताराओं का प्रमाण	193
ढाई द्वीप के आगे सूर्य आदि का वर्णन	193
ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति एवं सम्यक्त्व के कारण	193
ऊर्ध्व लोक	
ऊर्ध्व लोक का वर्णन	196
वैमानिक देव	
कल्प के 12 भेद	198
कल्पातीत देवों के भेद	198
नव अनुदिश पाँच अनुत्तर के नाम	198
बारह कल्पों की विमान संख्या	198
कल्पातीतों के विमान	198
इंद्रक प्रस्तार	199
इंद्रक विमानों का विस्तार आदि	200
श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक कहाँ हैं	201
विमानों का विस्तार आदि	201
ग्यारह स्थान के विमानों की मोटाई वर्ण आदि	201
संख्यात असंख्यात योजन वाले विमानों की संख्या	202
संख्यात असंख्यात योजन के विमान	202

विषय	पृष्ठ संख्या
विमानों के आधार	203
देवों के भवन	203
दक्षिण उत्तर इंद्र और उनके विमान	203
स्वर्गों में देवेन्द्रों के चिन्ह	204
सौधर्म इंद्र का नगर	205
ईशान इंद्र का नगर	206
सानत्कुमार इंद्र का नगर	206
माहेन्द्र इंद्र का नगर	206
ब्रह्मब्रह्मोत्तर इंद्र के नगर	206
लांतव-कापिष्ठ इंद्र के नगर	207
शुक्र-महाशुक्र इंद्र के नगर	207
शतार-सहस्रार इंद्र के नगर	208
आरण-अच्युत इंद्र के नगर	208
सौधर्म इंद्र का वैभव	210
इंद्र के ऐरावत हाथी का वर्णन	212
इंद्र और प्रतीन्द्रों की देवियों का वर्णन	213
देवियों की उत्पत्ति के स्थान	213
सौधर्म इंद्र का नगर	214
नगर के बाहर का वर्णन	214
नंदन वन का वर्णन	214
लोकपाल नगर का वर्णन	215
गणिकाओं के नगर	215
सौधर्म नगर के अभ्यंतर का वर्णन	215
तीर्थंकरों के वस्त्रादि वाले दिव्य स्तम्भ	216
न्यग्रोध वृक्ष	217
उपपाद गृह और जिनभवन	217
सुधर्मा सभा का वर्णन	217
देवियों के भवन	218
इंद्रों के यान विमान	218

विषय	पृष्ठ संख्या
कल्पातीतों का वर्णन	219
भवनों का प्रमाण	219
लौकान्तिक देवों का वर्णन	220
लौकान्तिक देवों की ऊँचाई आयु आदि	221
मुक्तिगामी जीवों का वर्णन	221
स्वर्ग में जन्म का सुख	221
देवों का गमन मूल शरीर से नहीं	222
देवों की आयु	223
देवियों की आयु	223
अवगाहना	224
देवों का आहार उच्छ्वास	225
देवों में जन्म-मरण का अंतर काल	225
काय प्रवीचार का वर्णन	225
देवों में लेश्यायें	226
देवों में अवधिज्ञान और विक्रियाशक्ति का प्रमाण	226
महादेवियों की विक्रिया	227
महादेवियों की परिवार देवियाँ	227
दक्षिण इंद्रों की महादेवियों के नाम	227
उत्तर इंद्रों की महादेवियों के नाम	227
इंद्रों की वल्लभिका देवियाँ	227
देवों में सम्यक्त्व के कारण	228
देवगति में गमन के कारण	228
देवों के आने के स्थान	229
देवों की शक्ति का कथन	229
देवों में किनकी अधिकता और किनकी न्यूनता है	229
कंदर्प किल्विषक आभियोग्य देवों की उत्पत्ति	229
घातायुष्क देवों की आयु	230
ऊर्ध्वलोक के चैत्यालय	231
सिद्धलोक और सिद्धशिला	231

प्रस्तावना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

यह त्रिलोक भास्कर नामक पुस्तक आपके हाथों में है। इसमें विशाल ग्रंथ की सामग्री संक्षिप्तरूप में गागर में सागर के समान समाविष्ट है।

जैन दर्शन में अहिंसा अनेकान्त कर्म सिद्धांत अपरिग्रह स्याद्वाद जैसे अनेक लोकोपकारी सर्वोदयी सिद्धांतों का निरूपण किया है उसी के साथ लोक और उसकी रचना के संबंध में विशाल वाङ्मय का निर्माण हुआ है। भगवान महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य ध्वनि में जिन विषयों का प्रतिपादन किया है। उनमें दृष्टिवाद नाम का एक अंग है उसके पाँच भेद हैं–

परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका इनमें से परिकर्म में गणित के करण सूत्रों का वर्णन है। इसके पाँच भेद हैं–

चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीप सागर प्रज्ञप्ति और व्याख्या प्रज्ञप्ति।

चंद्र प्रज्ञप्ति में चंद्रमा संबंधी विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि, वृद्धि, ग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांश ग्रहण आदि का वर्णन है। इसी प्रकार सूर्य प्रज्ञप्ति में सूर्य संबंधी आयु, परिवार, गमन आदि का वर्णन है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप संबंधी मेरु, कुलाचल, महाह्रद, (तालाब क्षेत्र कुडंवन व्यंतरों के आवास महानदी आदि) का वर्णन है।

द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप-समुद्रों का स्वरूप, वहाँ पर होने वाले अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन है। व्याख्या प्रज्ञप्ति में भव्य-अभव्य भेद-प्रमाण, लक्षण, रूपी-अरूपी, जीव-अजीव द्रव्यों का और अवांतर सिद्धों का तथा दूसरी वस्तुओं का वर्णन है।

इन्हीं के आधार पर आचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रंथ की प्राकृत भाषा में अनुपम रचना की। सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचंद्र आचार्य ने जहाँ धवला आदि ग्रंथों का अध्ययन करके गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार आदि अद्वितीय जिनवाणी का सारभूत अमृतमयी वाङ्मय प्रस्तुत किया उसी प्रकार लोक, उसकी रचना के सम्बन्ध में त्रिलोकसार नामक विलक्षण असाधारण ग्रंथ की रचना की, जिसमें तीनों लोकों का बहुत रोचक हृदयग्राही वर्णन संकलित किया है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और

श्लोक वार्तिक के तीसरे और चौथे अध्याय में इस विषय का सुंदर ढंग से प्रतिपादन किया है।

भगवान महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाण महोत्सव के पुनीत अवसर पर देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार की योजनाएँ चालू हुई। इन्हीं योजनाओं में एक जम्बूद्वीप निर्माण योजना का सूत्रपात विदुषीरत्न पूज्य गणिनीप्रमुख 105 आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने किया।

आपने उसी समय सन् 1973 में तीन लोक के संबंध में एक सुंदर रोचक आकर्षक पुस्तक लिखी, जिसका नाम रखा– **त्रिलोक भास्कर**। करणानुयोग के कठिन विषय को सरल और सुबोध भाषा में लिखना आपकी कुशल लेखनी का ही चमत्कार है।

इस त्रिलोक भास्कर में तीनों लोकों का वर्णन सचित्र विषय के साथ चार्ट और रेखांकित भावों के द्वारा भी स्पष्ट किया गया है, अर्थात् विषयों को विस्तार`स समझाया गया है ताकि प्रत्येक जिज्ञासु भली प्रकार से विषय को हृदयङ्गम कस्सके।

जैन दर्शन का सिद्धांत इस विषय में बताया गया है–

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवा जीवेहिं फुढो, सव्वागासावयवो णिच्चो।।

अर्थात् लोक अकृत्रिम है। किसी के द्वारा बनाया हुआ नहीं है। अनादि-निधन है आदि अंत से रहित है। स्वभाव निर्वृत्त है सहज स्वभाव से निष्पन्न है। सम्पूर्ण लोक जीव-अजीव द्रव्यों से भरा है। सर्व आकाश का अवयव है, नित्य है और शाश्वत है।

संसार परिवर्तनशील है और वह दो प्रकार का है भाव संसार और द्रव्य संसार।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबंधानुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो, जीवास्ते शुद्धचशुद्धितः।।

अर्थात् राग द्वेषादि के कारण जीव विषयों में प्रवृत्त होते हैं और नवीन सन्तति को जन्म देते हैं यही भाव संसार है।

कम्मकयमोहवड्ढिय संसारम्हि य अणादिजत्तम्हि।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं।।

अर्थात् कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ मोह अर्थात् अज्ञान, असंयम तथा मिथ्यात्व से वृद्धि को प्राप्त हुआ संसार अनादि है। उसमें जीव का अवस्थान रखने वाला आयु कर्म है। वह उदयरूप होकर मनुष्यादि चार गतियों में जीव की स्थिति करता है। यही द्रव्य संसार है।

श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है–

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति, न च क्रिया कारकमत्र युक्तम्।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति।।

अर्थात् यदि वस्तु सर्वथा द्रव्य और पर्याय दोनों रूप से नित्य हो तो वह उदय-अस्त को प्राप्त नहीं हो सकती। और यदि सर्वथा असत् है उसका कभी जन्म नहीं होता। और जो सत् है उसका कभी नाश नहीं होता। दीपक भी बुझ जाने पर सर्वथा नाश को प्राप्त नहीं होता किन्तु उस समय अन्धकाररूप पुद्गल पर्याय को धारण किए हुए अपना अस्तित्व रखता है।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के सिद्धांत हैं उनमें धरती-आसमान का अंतर है। परन्तु दो बातों में सभी मत वाले सहमत हैं कि संसार में कोई वस्तु बिना बनाए अनादि भी हुआ करती है। और उनके गुण तथा स्वभाव बिना बनाए अनादि होते हैं।

जिन वस्तुओं से यह दुनियाँ बनी हुई है वे सभी जीव अजीव दो भागों में विभक्त हैं तथा उनके गुण और स्वभाव अनादि अनंत हैं। उनके इन अनादि स्वभावों के द्वारा ही जगत् का यह कार्य व्यवहार चालू है। वस्तु स्वभाव ही इसमें मुख्य कारण है।

किनहूं न करे न धरे को, षट् द्रव्य मयी न हरे को।
सो लोक माहि विन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।

यह संसार तो संसरण शील है चौदह राजु ऊँचा और पुरुष के आकार के समान लोक का आकार है जिसमें सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के बिना जीव कष्ट उठाता है।

इस महत्वपूर्ण और उपेक्षित विषय की ओर भी जनता का ध्यान अब आकर्षित हुआ है अतः हम जान पा रहे हैं कि किस प्रकार हमारे आचार्यों ने विविध विषयों पर अपनी अनुपम रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

गणिनीप्रमुख विदुषीरत्न श्री 105 आर्यिकाशिरोमणि ज्ञानमती माताजी ने इस उत्तम पुस्तक में अत्यंत रोचक और आकर्षक ढंग से तीनों लोकों का वर्णन प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक में पाठकों के लिए ज्ञान वर्धन की पर्याप्त सामग्री दी हुई है जिससे सभी जिज्ञासु भली प्रकार लाभ उठा सकते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार से साहित्य को प्रकाशित करने से प्राचीन साहित्य की ओर भी ध्यान आकर्षित होगा। पूज्य माताजी की इस कृति को पढ़कर अधिक जानकारी हेतु आप तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार एवं लोक विभाग आदि करणानुयोग ग्रंथ भी अवश्य पढ़ें ताकि आपकी प्रत्येक जिज्ञासा का समाधान हो सके।

प्राक्कथन

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर महाराज

त्रैलोक्य जिन चैत्यालय एक दृष्टि में

अधोलोक संबंधी–

भवनवासी देवों के दश भेदों के पृथक्-पृथक्–

असुरकुमार के 6400000+नागकुमार के 8400000+सुपर्ण कुमार के 7200000+द्वीपकुमार के 7600000+उदधिकुमार के 7600000+स्तनित कुमार के 7600000+विद्युत्कुमार के 7600000+दिक्कुमार के 7600000+अग्निकुमार के 7600000+वायुकुमार के 9600000=77200000 जिन भवन हैं।

मध्यलोक संबंधी–

जम्बूद्वीप में-सुमेरु पर्वत के 16+गजदंत के 4+कुलाचल के 6+वक्षार पर्वत के 16+विदेहस्थ विजयार्ध के 32+भरत ऐरावत विजयार्ध के 2+जम्बू शाल्मलि वृक्ष के 2=78 चैत्यालय हैं।

इस प्रकार जम्बूद्वीप के 78+धातकी खण्ड द्वीप के 156+पुष्करार्ध के 156 +इष्कवाकार के 4+मानुषोत्तर पर्वत के 4+नंदीश्वर द्वीप के 52+कुण्डल पर्वत के 4+रुचकपर्वत के 4=458 चैत्यालय हैं।

ऊर्ध्वलोक संबंधी–

सौधर्म स्वर्ग के 3200000+ईशान स्वर्ग के 2800000+सानत्कुमार के 1200000+माहेन्द्र के 800000+ब्रह्मयुगल के 400000+लांतव युगल के 50000 +शुक्र-महाशुक्र के 40000+शतारसहस्रार के 6000+आनत प्राणत-आरण-अच्युत के 700+तीन अधो ग्रैवेयक के 111+तीन मध्य ग्रैवेयक के 107+तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयक के 91+नव अनुदिश के 9+पंच अनुत्तर के 5=8497023 चैत्यालय हैं।

तीन लोक के मिलकर 77200000+458+8497023=8,56,97,481 होते हैं।

व्यंतरवासी और ज्योतिर्वासी देवों के असंख्यातों विमान होने से तत्संबंधी चैत्यालय भी असंख्यात हैं।

इन तीन लोक संबंधी जिन चैत्यालयों को मेरा मन, वचन, काय पूर्वक बारंबार नमस्कार होवे।

यावंति जिनचैत्यानि विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

एक महायोजन में 2000 कोश होते हैं। एक कोश में 2 मील मानने से 1 महायोजन में 4000 मील पाये जाते हैं। 4000 मील के हाथ बनाने के लिए 1 मील संबंधी 4000 हाथ से गुणा करने पर 4000×4000=16000000 अर्थात् एक महायोजन में 1 करोड़ 60 लाख हाथ हुये।

वर्तमान में रैखिक माप में 1760 गज का 1 मील मानते हैं। यदि 1 गज में 2 हाथ मानें तो 1760×2=3520 हाथ का एक मील हुआ। पुनः उपर्युक्त एक महायोजन के हाथ 16000000 में 3520 हाथ का भाग देने से 16000000÷3520= $4545\frac{5}{15}$ मील हुये।

इस ग्रंथ में स्थूल रूप से व्यवहार में 1 कोश में दो मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के 2000 कोश को 2 मील से गुणा कर एक महायोजन में 4000 मील मानकर उसी से गुणा करना चाहिए। कहीं-कहीं नक्शों में योजन को 4000 मील से गुणा करके मीलों का प्रमाण दिखाया भी गया है।

इस 'त्रिलोक भास्कर' ग्रंथ में कोश और योजन बनाने की प्रक्रिया बतलाई गई है। उसका अच्छी तरह से मनन करके इस ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिये।

आज कल कुछ लोग ऐसा कह दिया करते हैं कि पता नहीं आचार्यों के समय कोश का प्रमाण क्या था? और योजन का प्रमाण भी क्या था?

किन्तु जब परमाणु से लेकर अवसन्नासन्न आदि परिभाषाओं से आगे बढ़ते हुये जघन्य भोग भूमि के बाल के 8 अग्रभागों का कर्म भूमि का 1 बालाग्र होता है। तब तो इस व्यवस्था से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि भोग भूमियों के बाल की अपेक्षा कर्मभूमि के प्रारंभ में चतुर्थ काल के मनुष्यों का बाल भी मोटा था, पुनः आज पंचमकाल के मनुष्यों का बाल तो उससे भी मोटा ही होगा।

आज के अनुसंधान प्रिय विद्वानों को आज के बाल की मोटाई के हिसाब से ही एक बार अंगुल, पाद, हाथ कोश आदि बनाकर योजन के हिसाब का अनुमान लगाना चाहिये।[1]

1. जम्बूद्वीप पण्णत्ति प्रस्तावना पेज 20।

श्री लक्ष्मी चंद्र एम.एस.सी लिखते हैं कि–

''इस योजन की दूरी आजकल के रैखिक माप में क्या होगी ?

यदि हम 2 हाथ=1 गज मानते हैं तो स्थूलरूप से 1 योजन 8000000 गज के बारबर अथवा 4545.45 मील के बराबर प्राप्त होता है।

यदि हम एक कोश को आजकल के मील के समान मान लें, तो 1 योजन 4000 मील के बराबर प्राप्त होता है।

कर्मभूमि के बालाग्र का विस्तार आजकल के सूक्ष्म यंत्रों द्वारा किये गये मापों के अनुसार 1/500 इंच से लेकर 1/200 इंच तक होता है। यदि हम इस प्रमाण के अनुसार योजन का माप निकाले तो उपर्युक्त प्राप्त प्रमाणों से अत्यधिक भिन्नता प्राप्त होती है। बालाग्र का प्रमाण 1/500 इंच मानने पर 1 योजन 490×48,48 मील प्रमाण होता है। कर्म भूमि का बालाग्र 1/300 इंच मानने से योजन 74472.72 मील के बराबर पाया जाता है। बालाग्र को 1/200 इंच प्रमाण मानने से योजन का प्रमाण और भी बढ़ जाता है।''

इन लक्ष्मी चंद्र प्रोफेसर के समान अन्य विद्वानों को भी इस विषय में समझने का प्रयत्न करना चाहिए। आगम कथित इन योजन आदि के प्रमाणों को कल्पना मात्र कल्पित कर लेना उचित नहीं है।

अतः एक महायोजन में स्थूल रूप से 4000 मील समझना चाहिये, किन्तु यह लगभग प्रमाण ही है। वास्तव में एक महायोजन में इससे अधिक ही मील होंगे ऐसा हमारा अनुमान है। इस प्रकार तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, श्लोकवार्तिक आदि ग्रंथों पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुये अपने सम्यक्त्व को सुरक्षित रखना चाहिए। जब तक केवली, श्रुत केवली के चरणों का सान्निध्य प्राप्त न हो तब तक अपने मन को चलायमान नहीं करना चाहिये। इस ग्रंथ में संक्षेप से तीन लोक का वर्णन किया गया है जो कि बहुत ही सरल भाषा में है। उसे पढ़कर तीन लोक में सर्वत्र घूमने से डरकर लोक के अग्रभाग में स्थिर होने का प्रयत्न करना चाहिए।

त्रैलोक्य चैत्य वंदना

रचयित्री-पूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

महावीर प्रभुको वंदन कर, त्रिभुवन के जिन भवनों की।
करूँ वदंना भक्ति भाव से, राजित सब प्रतिमाओं की।।1।।

भवनवासि देवों में जिनगृह, सप्तकरोड़ बहत्तर लाख।
भवविजयी की प्रतिमा उनमें, नमन करूँ हो दुःख विनाश।।2।।

पंचमेरु के अस्सी जिनगृह, कर्म विजयि प्रतिमा तिनमें।
पंचम गति के प्राप्त करन को, भाव भक्ति से वंदूँ मैं।।3।।

कुलपर्वत के तीस जिनालय, रत्नमयी प्रतिमा भवहर।
भवभय दुःखहरन के हेतु करूँ वंदना मन वच कर।।4।।

रजताचल के इक सौ सत्तर, मदनविजयि जिनराजसदन।
तिनमें प्रतिमा नमन करूँ मैं, शतेन्द्र नितप्रति करें गमन।।5।।

वक्षारगिरी पर अस्सी जिन, भवनों में प्रतिमा राज रहीं।
करूँ वंदना भक्तिभाव से, सुरनर मुनिगण पूज्य कहीं।।6।।

गजदंतगिरी के बीस भवन में, रत्नमयी हैं सिंहासन।
उनपर मारदंति मदहर्ता, जिनबिम्बों को करूँ नमन।।7।।

जम्बू शाल्मलि दश वृक्षों की, शाखाओं पर दश मंदिर।
कंतुविजयि जिनकी प्रतिमाको, वंदूँ सदा भाव शुचि कर।।8।।

इष्वाकार चार पर्वत पर, चार जिनालय में प्रतिमा।
हाथ जोड़कर नमूँ सदा मैं, जिनकी अतुल अकथ महिमा।।9।।

मनुजोत्तर नगपर चउदिश में, चार जिनसदन शोभ रहे।
उन पर दंतिवैरिविष्टर पर, राजित कृति हम नमन करें।।10।।

नंदीश्वर वर द्वीप आठवाँ, बावन श्री जिनभवन वहाँ।
मणिमय कनक रजतमय, मनहर प्रतिमा वंदूँ शीश नमा।।11।।

वहीं चतुर्दिक अंजनगिरि में, कर्मांजनच्युत श्री जिनगेह।
तिनमें नित्य निरंजन प्रतिमा, वंदूँ दुरितांजन हर हेत।।12।।

दधिमुख पर्वत सोलह तिनपर, सुरनुत चैत्यालय शोभैं।
मोहविजयि की वहाँ मूर्तियाँ, वंदूँ मैं सुरगण पूजे।।13।।

रतिकराद्रि बत्तीस जहाँ पर, जिन भवनों में जिनप्रतिमा।
मोहतिमिर हर भास्कर जिनकी, वंदन करूँ महा महिमा।।14।।

कुंडलगिरि के चतुर्दिशा में, चउ जिनगृह शोभा पाते।
काल विजयि के जिनबिम्बों को, वंदन कर भव दुख जाते।।15।।

रूचकगिरी के चतुर्दिक चतु-अनंगजयि जिनमंदिर है।
विधुतकर्म श्री जिनबिम्बों को, वंदन भावभक्ति कर है।।16।।

मध्यलोक के चार शतक, अट्ठावन अकृत्रिम मंदिर।
स्मरविजयि जिनकी आकृतियाँ, वंदूँ मैं मस्तक नत कर।।17।।

व्यंतरवासी देवों में व्यतीत, संख्या जिनराज भवन।
मीनपताका विजयी जिनकी, प्रतिमा अनुपम करूँ नमन।।18।।

ज्योतिष सुर के अगणित जिनगृह में चैत्यालय भास रहे।
रवि शशि दीप्ति विजित तेजोमय, जिन प्रतिमा की स्तुति कहें।।19।।

ऊर्ध्वलोक के प्रथम स्वर्ग में, बत्तिस लक्ष भवन मनहर।
जितकषाय रिपु जिनवर प्रतिमा, वंदूँ मैं भव पातक हर।।20।।

ईशान स्वर्ग में अट्ठाइस, लक्ष प्रमित जिन सदनों में।
त्रिभुवन पूजित जिन प्रतिमा के, शत शत वंदन चरणों में।।21।।

सानत्कुमार दिव में जिनगृह, बारह लक्ष प्रमाण कहे।
यम के अंतक जिनबिम्बों को, वंदूँ मैं भवपाप बहे।।22।।

माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष, जिनभवनों में जिन प्रतिमायें।
भक्तिभाव से नमस्कार कर, हम भी शाश्वत सुख पायें।।23।।

ब्रह्मयुगल स्वर्गों में जिनगृह, चतुर्लक्ष महिमा अनुपम।
परमब्रह्म जिन प्रतिमा तिनमें, ब्रह्मसौख्य के लिये नमन।।24।।

लांतव युगल में सहस पचास, जिनालयों में शोभ रही।
काल विजयि जिनवर की प्रतिमा, वंदूँ सुर मन मोह रही।।25।।

शुक्र युगल स्वर्गों में चालिस हजार जिनगृह शोभ रहे।
उनमें कंतुविजयि जिनबिम्बों को वंदत शिवसौख्य लहे।।26।।

शतार युग स्वर्गों में श्री जिन, भवन छह सहस तिनमें हैं
दिनकर किरण प्रभाधिक सुंदर, जिनबिम्बों को वंदूँ मैं।।27।।

आनत प्राणत आरण अच्युत, वहाँ सातशत भवन कहे।
तिनमें त्रिभुवन नुत तीर्थंकर की प्रतिकृति हम नमन करें।।28।।

तीन अधोग्रैवेयक में इक-सौ ग्यारह जिन भवन नमूँ।
तहाँ मदन मद मर्दन जिन प्रतिमा को वंदूँ पाप वमूँ।।29।।

मध्यम ग्रैवेयक तीनों में, इकसौ सात जिनालय है।
उनमें तीर्थकरों की प्रतिमा, भवभय हरिये वंदूँ मैं।।30।।

ऊर्ध्व ग्रैवेयक त्रय में जिन, मंदिर इक्यानवे प्रमाण।
चतुर्गति दुःख नाश हेतु मैं, जिनबिम्बों को करूँ प्रणाम।।31।।

नवअनुदिश में नव मंदिर घन, घाति अघाति विघातक के।
त्रिभुवन जन हृदयाम्बुज भास्कर, प्रतिमा वंदूँ रूचि धरके।।32।।

पंच अनुत्तर में पंचालय, पंचकल्याणक पति जिनके।
पंचपरावर्तन से छूटूँ, मैं पंचांग नमन करके।।33।।

आठ कोटि छप्पन सुलक्ष, सत्तावने हजार चार शतक।
इक्यासी जिनगृह अकृत्रिम, मनवचतन से नमूँ सतत।।34।।

अभिषेक प्रेक्षागृह क्रीडन, संगीत नाटक लोकगृह।
रत्नखचित वेदी मंडपमणि, मंगलघट और धूप सुघट।।35।।

मणिमाला ध्वज तोरण शोभित, घंटा किंकणि ध्वनी सहित।
शालत्रय मानस्तंभ-स्तूपादि उपवनों से वेष्टित।।36।।

इत्यादि विविध अनुपम वैभव-युत चैत्यालय शोभा पाते।
भव्य जनों का पाप दूर कर विचित्र महिमा बतलाते।।37।।

कोश चारसौ लंबे दो सौ चौड़े, ऊँचे तीन शतक।
जिनगृह इनके अर्ध-मध्य का, जघन्य मिति के भेद विविध।।38।।

प्रति जिनगृह में इकसौ आठ प्रम, हस्त दोसहस ऊँचाई।
मध्यम लघु जिनगृह में प्रतिमा, यथायोग्य परिमाण कही।।39।।

गर्भालय में जिनवर सन्निधि, यक्ष मूर्तियाँ चामरयुत।
श्रीदेवी श्रुतदेवी सानत्कुमार, अरू सर्वाण्ह यक्ष।।40।।

अष्टमंगल अठ प्रातिहार्ययुत, गंधकुटी में शोभित हैं।
कर्मजयी जिन प्रतिमा वंदूँ, सुरनर मुनिगण वंदित हैं।।41।।

नवसौ पचीस कोटि त्रेपन, लाख सताइस सहस प्रमाण।
नवसौ अड़तालिस जिन प्रतिमा, शिवसुख हेतु करूँ प्रणाम।।42।।

अकृत्रिम जिन प्रतिमा इतनी, ही संख्या में आती हैं।
ज्योतिर्व्यंतर भवनों में वे संख्यातीत कहाती हैं।।43।।

मानस्तंभों में तथा चैत्य, सिद्धार्थ वृक्ष कांचन गिरिपर।
और जहाँ भी बिम्ब राजते, नमूँ सदा मैं अंजलि कर।।44।।

गंगा प्रपात कुण्ड में गंगादेवी, के गृहकी छत पर।
जटाजूट के मुकुट सहित जिन, प्रतिमा वंदूँ पातक हर।।45।।

हिमगिरसे पड़ती गंगा वहाँ, करती हुई अभिषेक महा।
इसीलिए लौकिक जन ने उस, गंगा को भी पूज्य कहा।।46।।

जिनवर समवसरण में मानस्तंभ चैत्य सिद्धार्थ तरू।
इनमें प्रतिमा नमूँ गंधकुटि में, साक्षात् प्रभु दर्श करूँ।।47।।

जम्बूधातकि पुष्करार्ध ढाई, द्वीपों में जिनमंदिर।
मनुजचक्रवर्त्यादिक निर्मापित कृत्रिम वंदू अघहर।।48।।

दश भरतैरावत विदेह में, इकसौ साठ नगरियों के।
इकसौ सत्तर धर्मतीर्थंकर वंदूँ त्रिकरण शुचि करके।।49।।

भूतभविष्यत् वर्तमान त्रैकालिक, त्रिभुवन तिलक महान्।
चौबीसी तीसों वंदूँ मैं पाप कर्म की होवे हान।।50।।

सीमंधर आदिक तीर्थंकर, विहरमान बीसों संतत।
भव्यकमल बोधन दिनकर को, वंदूँ मैं क्षय को पातक।।51।।

अनुपम गर्भावतरण, जन्मोत्सव सुरर्षिनुत निष्क्रमण।
कैवल्यज्ञान निर्वाण पंचकल्याणक का नित करूँ नमन।।52।।

कैलाशगिरि, चंपा पावापुरि ऊर्जयंत सम्मेदाचल।
सिद्धक्षेत्र वंदनसे होऊँ, कर्मनाश कर पूर्ण विमल।।53।।

गणधर मुनिगण अमित जहाँ पर, मुक्ति धाम को प्राप्त हुये।
नमूँ सभी निर्वाण भूमियाँ नितप्रति मन शुद्धि के लिये।।54।।

पंचकल्याणक से पवित्र सब, क्षेत्र वंदना करूँ सदा।
पंचमगति की शीघ्र प्राप्ति हो, भव दुःख फिर नहिं पाऊँ कदा।।55।।

अतिशय क्षेत्र सभी मैं वंदूँ अतिशय गुणसे जो हैं सिद्ध।
सातिशय पुण्य हेतु भविजन का मुनिगण को हो ध्यान सुसिद्ध।।56।।

गोम्मटदेव सदा वंदूँ जिनके दर्शन से भक्ति जगी।
अकृत्रिम जिन बिम्ब दर्श की तथा तीव्र रुचि स्तवन की।।57।।

त्रिलोक मस्तक पर पैंतालिस, लक्ष सुयोजन सिद्ध शिला।
भूतभवद्भावी अंनत सब, सिद्ध नमूँ मन कमल खिला।।58।।

मृत्युंजयि की प्रतिमा कृत्रिम तथा अकृत्रिम अप्रतिम हैं।
भुवनत्रय में जितनी भी उनको मम शिरसा वदंन है।।59।।

अर्हत्सिद्ध आचार्य उपाध्याय और अखिल साधु वंदू।
उनके प्रतिबिम्बों को भी मैं, नमूँ कर्मपर्वत खंडूँ।।60।।

कलिप्रभाव दलनपटु श्री चारित्र चक्रवर्ती ऋषिवर।
शांतिसिंधु, उन पट्ट शिष्य श्री-वीरसिंधु आचार्य प्रवर।।61।।

परंपरागत शिवसिंधु आदि, सूरमुनिगणको नमूँ त्रिबार।
सम्यग्ज्ञानमती भक्ति से पाऊँ शाश्वत सौख्य अपार।।62।।

यह त्रिलोक जिन चैत्यवंदना रूचि से जो नित पढ़ते हैं।
सो ''सज्ज्ञानमती'' भक्ति से त्रिभुवन पति सुख पाते हैं।63।।

ग्रंथ की लेखिका, राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामतीं

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन सागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. जन्म, वैराग्य और दीक्षा—22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में ''मैना'' का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में 24 घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।

जैनेश्वरी दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **''आर्यिका ज्ञानमती''** नाम प्राप्त किया।

2. अध्ययन और अध्यापन—ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ

स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से—भगवान महावीर के पश्चात् 2600 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग 250 से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. सिद्धांत चक्रेश्वरी—पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। समस्त 16 पुस्तकों की टीका आप लिख चुकी

हैं, जिसमें से छह पुस्तकें हिन्दी टीका सहित प्रकाशित भी हो चुकी हैं और आगे का प्रकाशन कार्य चल रहा है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा 1000 वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर—जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

6. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार—सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ—किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को

स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम—त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् 1956-57 में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् 1967 में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवा यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा अंततः यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हैं तथा निरंतर धर्मप्रभावना में संलग्न हैं।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की शृँखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका

श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी, आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, आर्यिका श्री सम्मेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चंदनामती) एवं अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हो रहा है।

58 वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

9. तीर्थ विकास की भावना—तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर' में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के सुफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-खैरवाड़ा में कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, पिड़ावा में समवसरण रचना की प्रेरणा, सोलापुर (महा.) में भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में मंदारवृक्ष की स्थापना, अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में पारिजातवृक्ष की स्थापना

आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि 'राजगृही' में 'मुनिसुव्रतनाथजिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली पावापुरी में जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली गुणावां जी में गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, श्री सम्मेदशिखर जी में भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

वर्तमान में तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की श्रृँखला में भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में 'पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' का निर्माणकार्य पूर्ण होकर वेदी पर भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा 9 फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा विराजमान हो चुकी है, जिसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जून 2010 में सम्पन्न होकर अब इस उपेक्षित जन्मभूमि का परिचय सभी भक्तों को प्राप्त हो रहा है।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल–माधोराजपुरा (राज.) में भी वहाँ की जैन समाज द्वारा 'दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम पर्वत का निर्माण करके 15 फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई है। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा 21 नवम्बर से 26 नवम्बर 2010 तक पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन हुई है।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थंकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना–

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने में इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् 2007 में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान 2127 जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अलावा हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं 56 फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् 2010 में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद लगा रही हैं।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा– विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से अनवरतरूप से चल रहा है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ– शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्त रूप ले रही है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके विशेष निर्माण सम्पन्न किया जा रहा है।

12. धर्मप्रभावना के विविध आयाम– जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का निष्पादन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली में उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्ड रूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'केवलज्ञान कल्याणक मंदिर' में स्थापित होकर युगोंयुगों तक भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिलाता रहेगा। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी श्रृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल जी द्वारा उद्घाटित) भी उनकी प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। जैन टी.वी. चैनल द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर

जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित किये गये। पुनश्च आस्था चैनल पर पिछले कई वर्षों से प्रतिदिन प्रसारित, जैनधर्म के मौलिक सिद्धांतों एवं सार से ओत-प्रोत प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से पूज्य माताजी जैन समाज के घर-घर में समाहित हुई, जैनेतर समाज में भी इस प्रवचन शृँखला का व्यापक प्रभाव देखने में आया। वर्तमान में पारस चैनल पर पूज्य माताजी के मंगल प्रवचन प्रसारित हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित किये हुए है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है

13. संघर्ष विजेत्री—पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया-प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है। किसी भी संस्था, तीर्थ, चंदे आदि की दानराशि को अपनी संघ व्यवस्था में समाहित न करने का उनका नियम है। 54 वर्षों से इस नियम का पालन करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर वे अडिग हैं। यही कारण है कि उन्हें लम्बी-लम्बी यात्राएं कराने में अपना कर्तव्यपालन करने वाले संघपति श्रावक भी अपना सौभाग्य समझते हैं।

14. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन—23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष 2006 को "सम्मेदशिखर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, तकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर 2007 में अहिच्छत्र में आयोजित 'सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक' के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

15. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती —वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक

प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 14 से 16 अप्रैल 2006 तक **'गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'** का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

16. अमृतमय हों वर्ष तुम्हारे : हीरक जयंती महोत्सव—जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के 58 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये हैं। इसीलिए इनके 75वें जन्मदिवस पर 12 से 14 अक्टूबर 2008 को राष्ट्रीय स्तर पर हीरक जयंती महोत्सव मनाया गया।

17. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने—21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् 2009 "शांति वर्ष" में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

18. 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाने की प्रेरणा—बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष 2010 को "प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की है। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 11 जून 2010 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 31 मई 2011 तक यह वर्ष विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया जा रहा है।

ऐसी महान चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में भावभीना कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो तथा आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान - जम्बूद्वीप

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

पिछले तीन दशकों से राजधानी दिल्ली की उत्तर दिशा में उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आकर्षण का केन्द्र अवस्थित है। 200 फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना **'जम्बूद्वीप'** के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित 101 फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज किसके मन को आकर्षित नहीं करती है?

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)।** जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से 1972 में इस संस्थान का सूत्रपात किया गया। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की 30 एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

1. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की 207 प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

2. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

3. ध्यान मंदिर-24 तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'हीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

4. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

5. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में 12वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन

प्रतिमा विराजमान हैं।

6. शांतिनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।

7. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित **ॐ** (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

8. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान 20 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

9. सहस्रकूट मंदिर-जिनेन्द्र भगवान की 1008 प्रतिमाओं सहित।

10. भगवान ऋषभदेव मंदिर-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

11. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ-'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, 8 प्रतिमाओं से समन्वित 31 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

12. तेरहद्वीप जिनालय-इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल 2127 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

13. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर-इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

14. नवग्रह शान्ति जिनमंदिर–पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशांति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन-पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शांति करते हुए देखे जाते हैं।

15. तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ–हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान की 31-31 फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

16. तीनलोक की भव्य रचना–त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

17. जम्बूद्वीप पुस्तकालय—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग 15000 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

18. जम्बूद्वीप औषधालय

19. ज्ञानमती कला मंदिरम्—हस्तिनापुर के पौराणिक इतिहास को प्रदर्शित करने वाली झांकियों सहित।

20. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

21. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला—1972 में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में लगभग 300 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

22. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका—यह पत्रिका सन् 1974 से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

23. राजा श्रेयांस भोजनशाला—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ 500 लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

24. धर्मशालाएँ—200 से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

25. मनोरंजन के साधन—तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर 1981-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

31 अक्टूबर 1982-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल 1985-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून 1982 से अप्रैल 1985-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री

श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा 4 जून, 1982 को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए 1045 दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

1992-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

1993-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर 1995-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-95'**।

मार्च-अप्रैल 1998-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 9 अप्रैल 1998 को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। 3 वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर 1998-जम्बूद्वीप स्थल पर **'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'**, जिसका उद्घाटन किया गया-स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी 2000-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले **'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'** का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर 1008 संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून 2000-जम्बूद्वीप स्थल पर 11 जून 2000 को **'जैनधर्म की प्राचीनता'**

विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी 2001-भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'** का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। 4 से 8 फरवरी 2001 तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 1008 महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् 2003-2004-भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार-प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

सन् 2005-2007-भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव-6 जनवरी 2005 को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (27 दिसम्बर 2005 तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् 2006 में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि ''सम्मेदशिखर वर्ष'' घोषित किया तथा दिसम्बर 2007 में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके 4 जनवरी 2008 को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष 2009 को ''शांति वर्ष'' के रूप में मनाने की घोषणा की गई।

यह 'शांति वर्ष-2009' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं, तुमकूर (कर्नाटक) से एक करोड़ मंत्र एवं उदयपुर (राज.) से एक करोड़ मंत्र सन् 2006 में इस बैंक में जमा हुए अतः उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया गया। करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् 1995 से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को 1,00,000/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल 2006 में ''गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् 1999 में स्थापित 11,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् 2000 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् 2003 में स्थापित 11,000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार-सन् 2004 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सववर्ष' के अवसर पर घोषित **'भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड', 'ब्राह्मी पुरस्कार', 'भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार', 'गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार' एवं 'हीरक जयंती पुरस्कार'** भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

इलाहाबाद-उ.प्र. में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ का निर्माण

सन् 2001 में संस्थान के अन्तर्गत भगवान ऋषभदेव दीक्षा एवं केवलज्ञान-कल्याणक भूमि प्रयाग (उ.प्र.) में इस तीर्थ का निर्माण इलाहाबाद-बनारस हाइवे

पर किया गया है। इस तीर्थ परिसर में ''ऋषभदेव दीक्षाकल्याणक तपोवन'' एवं समवसरण रचना मंदिर के साथ-साथ भगवान की निर्वाणभूमि के प्रतीक में विशाल कैलाशपर्वत का भी निर्माण हुआ। इसमें 72 चैत्यालय हैं तथा पर्वत के नीचे गुफा मंदिर में भगवान ऋषभदेव की अतिशयकारी धातु प्रतिमा (सवा तीन फुट पद्मासन) विराजमान है। पर्वत के ईशान कोण में निर्मित 31 फुट ऊँचे कीर्तिस्तंभ में ऋषभदेव-महावीर स्वामी की 8 प्रतिमाएँ हैं। क्षेत्र पर यात्रियों के आवास-भोजन आदि की सम्पूर्ण आधुनिक व्यवस्था उपलब्ध है। इस तीर्थ का संचालन संस्थान के अंतर्गत गठित उपसमिति के द्वारा किया जा रहा है।

भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर तीर्थ का विकास

भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) का विकास करने हेतु संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर दिगम्बर जैन समिति नाम से एक उपसमिति बनाई गई, जिसके माध्यम से वहाँ 'नंद्यावर्त महल' तीर्थ परिसर का निर्माण किया गया। वहाँ नंद्यावर्त महल तीर्थ परिसर में भगवान शांतिनाथ चैत्यालय के अतिरिक्त विश्वशांति महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति मंदिर तथा तीन मंजिल का त्रिकाल चौबीसी मंदिर है। वहाँ यात्रियों के लिए आधुनिक सुविधायुक्त आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था है।

उपरोक्त सभी निर्माण योजनाएं, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक कार्यक्रम **पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी** की पावन प्रेरणा से उनके ससंघ सानिध्य में इस संस्थान द्वारा आयोजित किये गये हैं। संघस्थ **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी** का मार्गदर्शन एवं **पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज** का निर्देशन इन समस्त कार्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहता है।

भगवान पुष्पदंतनाथ जन्मभूमि काकंदी तीर्थ का विकास

पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित ''अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी'' द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा 9 फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत ''वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला'' की स्थापना सन् 1972 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. **श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, रेखा वली, दिल्ली-6।**
2. **श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।**
3. **श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।**
4. **श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।**
5. **श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।**
6. **श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।**
7. **श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।**
8. **डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)**
9. **श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.**
10. **श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली**
11. **श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई**
12. **श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।**
13. **श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.**
14. **श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तरखंड)।**
15. **श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।**
16. **श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।**
17. **श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।**

परम संरक्षक

1. **श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।**
2. **डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।**
3. **श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।**
4. **श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।**
5. **श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।**
6. **श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।**

7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज,नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।

22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्ला,देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा जैन ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली,चौकबाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना,रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।

56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, नौ विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।

89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पंचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
107. डॉ. विमला जैन ''विमल'' ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

त्रिलोक भास्कर

।। मंगलाचरण ।।

सिद्धिप्रदानि चैत्यानि, यावंति भुवनत्रये।
तावंति शिरसा वंदे, नित्यं सर्वार्थसिद्धये।।

सामान्य लोक का वर्णन

सर्वज्ञ भगवान से अवलोकित अनंतानंत अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में 343 घन राजू प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। यह लोकाकाश जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचों द्रव्यों से व्याप्त है। आदि और अनंत से रहित-अनादि अनंत है, स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। छह द्रव्यों से सहित यह लोकाकाश स्थान निश्चय ही स्वयं प्रधान है। इसकी सब दिशाओं में नियम से अलोकाकाश स्थित है।

इस लोक के 3 भेद हैं–अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।

अधोलोक का आधार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश, मध्यलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के ऊपरी भाग के समान एवं उर्ध्वलोक का

आकार खड़े किये हुए मृदंग के सदृश है।

सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र 7 राजू है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण

अधोलोक की ऊँचाई 7 राजू, मध्यलोक की ऊँचाई 1 लाख 40 योजन एवं ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई 7 राजू प्रमाण है। असंख्यातों योजनों का 1 राजू होता है। 14 राजू ऊँचे लोक में, 7 राजू में नरक एवं 7 राजू में स्वर्ग हैं, इन दोनों के मध्य में 1 लाख 40 योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है, बस इसी सुमेरु प्रमाण ऊँचाई वाला मध्य लोक है जो कि ऊर्ध्वलोक का कुछ भाग है और वह राजू में ना कुछ के समान है। अतएव ऊँचाई के वर्णन में 7 राजू में अधोलोक एवं सात राजू में ऊर्ध्वलोक कहा गया है।

लोक की चौड़ाई का प्रमाण

नरक के तलभाग में चौड़ाई 7 राजू है। घटते-घटते यह चौड़ाई मध्यलोक में 1 राजू रह गई है। पुनः मध्यलोक के ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्म लोक-पाँचवें स्वर्ग तक चौड़ाई 5 राजू हो गई है। पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग से आगे घटते-घटते सिद्ध शिला तक चौड़ाई पुनः 1 राजू रह गई है।

त्रस नाली का प्रमाण

तीनों लोकों के बीचों-बीच में 1 राजू चौड़ी एवं 1 राजू मोटी तथा कुछ कम 13 राजू ऊँची त्रसनाली है। इस त्रसनाली में ही त्रस जीव पाये जाते हैं।

अधोलोक के राजू का वर्णन

मृदंगाकार अधोलोक में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात पृथ्वियाँ हैं, जोकि कुछ कम एक-एक राजू के अंतराल से हैं अर्थात् इन पृथ्वियों की मोटाई क्रम से 1 लाख 80 हजार योजन, बत्तीस हजार योजन, अट्ठाईस हजार योजन आदि हैं, जिसका वर्णन आगे आयेगा। मध्य लोक के अधोभाग से लेकर पहला राजू शर्करा पृथ्वी के अधोभाग में पूर्ण होता है। अर्थात् 1 राजू में रत्नप्रभा और शर्करा प्रभा ये दोनों ही पृथ्वी हैं। इसके आगे दूसरा राजू प्रारंभ होकर

बालुकाप्रभा के अधोभाग में पूर्ण होता है। तीसरा राजू पंकप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में समाप्त होता है। इसके अनंतर चौथा राजू धूमप्रभा के अधोभाग में, पाँचवां राजू तमःप्रभा के अधोभाग में, छठा राजू महातमःप्रभा के अंत में एवं सातवाँ राजू अधोलोक के तल भाग में समाप्त होता है। मतलब यह है कि 1 राजू में 2 नरक, 5 राजू में पाँच नरक, ऐसे 6 राजू में 7 नरक एवं 1 राजू में निगोद भाग स्थित है–ऐसा समझना चाहिये।

1 राजू में–रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा
1 राजू में–बालुकाप्रभा
1 राजू में–पंकप्रभा
1 राजू में–धूमप्रभा
1 राजू में–तमःप्रभा
1 राजू में–महातमःप्रभा
1 राजू में–नित्य निगोद, ऐसे सात राजू हुए।

अधोलोक से मध्यलोक तक की चौड़ाई घटने का क्रम

अधोलोक के तल भाग में–7 राजू
सातवीं पृथ्वी के निकट–6-1/7 राजू
छठी पृथ्वी के निकट–5-2/7 राजू
पाँचवी पृथ्वी के निकट–4-3/7 राजू
चौथी पृथ्वी के निकट–3-4/7 राजू
तीसरी पृथ्वी के निकट–2-5/7 राजू
दूसरी पृथ्वी के निकट–1-6/7 राजू
प्रथम पृथ्वी के निकट–1राजू मात्र
सम्पूर्ण मध्य लोक की चौड़ाई 1 राजू मात्र ही है।

ऊर्ध्व लोक में राजू के प्रमाण का वर्णन

मध्यलोक के ऊपरी भाग में सौधर्म विमान के ध्वजदण्ड तक 1 लाख 40 योजन कम 1-1/2 राजू प्रमाण ऊँचाई है। इसके आगे माहेन्द्र और सानत्कुमार के ऊपरी भाग तक 1-1/2 राजू पूर्ण होता है। अनंतर ब्रह्मोत्तर

के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, कापिष्ठ के ऊपरी भाग में 1/2 राजू महाशुक्र के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, एवं सहस्रार के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, आनत के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, आरण के ऊपरी भाग में 1/2 राजू समाप्त होता है। पुनः 1 राजू की ऊँचाई में 9 ग्रैवेयक, 9 अनुदिश, 5 अनुत्तर एवं सिद्धशिला है। अर्थात्–

कुछ कम 1-1/2 राजू में–सौधर्म, ईशान स्वर्ग
1-1/2 राजू में–सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग
1/2 राजू में–ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग
1/2 राजू में–लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग
1/2 राजू में–शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग
1/2 राजू में–सतार, सहस्रार स्वर्ग
1/2 राजू में–आनत, प्राणत स्वर्ग
1/2 राजू में–आरण, अच्युत स्वर्ग
1 राजू में-9 ग्रैवेयक 9 अनुदिश, 5 अनुत्तर और सिद्ध शिला पृथ्वी है।
1-1/2+1-1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1=7 राजू

प्रथम स्वर्ग से सिद्धशिला तक लोक की चौड़ाई बढ़ने-घटने का क्रम

मध्यलोक में	–1 राजू
सौधर्म, ईशान स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–2-5/7 राजू
सानत्कुमार, माहेन्द्र के अंत में चौड़ाई	–4-3/7 राजू
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर के अंत में चौड़ाई	–5 राजू
लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–4-3/7 राजू
शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–3-6/7 राजू
सतार-सहस्रार स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–3-2/7 राजू
आनत-प्राणत स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–2-5/7 राजू
आरण-अच्युत स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–2-1/7 राजू
9 ग्रैवेयक, 9 अनुदिश, 5 अनुत्तर एवं सिद्धशिला तक चौड़ाई	1 राजू

अपने-अपने अंतिम इन्द्रक विमान संबंधी ध्वजदण्ड के अग्रभाग तक

उन-उन स्वर्गों का अंत समझना चाहिए और लोक का जो अंत है, वही कल्पातीत भूमि का भी अंत है।

जैन सिद्धांत में 8 पृथ्वी मानी गई हैं। 7 नरक की 7 पृथ्वी एवं 1 मोक्ष-पृथ्वी, ऐसे पृथ्वी के 8 भेद हैं।

वातवलयों का वर्णन

इस लोकाकाश को चारों तरफ से वेष्टित करके तीन वातवलय हैं। ये वायुकायिक जीवों के शरीर स्वरूप हैं। यद्यपि वायु अस्थिर स्वभाव वाली है फिर भी ये तीनों वातवलय स्थिर स्वभाव वाले वायुमण्डल हैं। इनके (1) घनोदधिवातवलय (2) घनवातवलय एवं (3) तनुवातवलय ये तीन भेद हैं।

घनोदधिवात गोमूत्र वर्ण वाला है, घनवात मूंग के समान वर्ण वाला एवं तनुवात अनेक वर्ण वाला है। चारों तरफ से लोक को वेष्टित करके सर्व प्रथम घनोदधिवातवलय स्थित है, इस घनोदधि को वेष्टित करके घनवात एवं घनवात को वेष्टित करके तनुवातवलय स्थित हैं। तनुवातवलय के चारों तरफ अनंत अलोकाकाश है।

आठ पृथ्वियों के नीचे तलभाग में 1 राजू की ऊँचाई तक इन तीनों वायुमण्डलों में से प्रत्येक की मोटाई बीस हजार योजन प्रमाण है। सातवें नरक में पृथ्वी के पार्श्व भाग में क्रम से इन तीनों वातवलयों की मोटाई सात, पाँच और चार योजन है। इसके ऊपर मध्यलोक के पार्श्व भाग में पाँच, चार और तीन योजन प्रमाण है।

इसके आगे तीनों वायु की मोटाई ब्रह्मस्वर्ग के पार्श्व भाग में क्रम से 7, 5 और 4 योजन है तथा ऊर्ध्व लोक के अंत में – पार्श्व भाग में 5, 4 व 3 योजन प्रमाण है। लोक शिखर के ऊपर तीनों वातवलयों की मोटाई क्रमशः 2 कोस, 1 कोस और कुछ कम 1 कोस प्रमाण है अर्थात् – लोक के तल भाग से 1 राजू तक तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन 20000+ 20000+20000=60000 योजन हैं।

सातवें नरक के पास – 7+5+4=16 योजन

मध्यलोक के पार्श्व भाग में – 5+4+3=12 योजन

ब्रह्म स्वर्ग के पार्श्व भाग में – 7+5+4=16 योजन

लोक के पार्श्व भाग में – 5+4+3=12 योजन

लोक के शिखर पर – 2 कोस, 1 कोस, 425 धनुष कम 1 कोस (1575 धनुष)

लोक का घनफल

यह लोक तल में 7 राजू, मध्य में 1, पाँचवें स्वर्ग में 5, और अंत में 1 राजू है। इन चारों स्थानों की चौड़ाई को जोड़ देने से 7+1+5+1=14 राजू हुए। इस 14 में 4 का भाग देने से 14÷4=3-1/2 राजू हुए। इसमें लोक के दक्षिण-उत्तर की मोटाई का गुणा कर देने से 3-1/2×7=24-1/2 हुए। फिर इस चौड़ाई और मोटाई के गुणनफल में 14 राजू का गुणा कर देने से 24-1/2×14=343 राजू हुये। इस लोकाकाश का घनफल 343 राजू प्रमाण है।

अधोलोक का घनफल

लोक के नीचे पूर्व-पश्चिम चौड़ाई 7 राजू और मध्यलोक में 1 राजू इन दोनों को मिलाने से 7+1=8 राजू हुए। पुनः इसे आधा करने से 8÷2=4, इसमें दक्षिण-उत्तर की मोटाई 7 राजू का गुणा करने से 4×7=28 राजू हुये। इसमें अधोलोक की ऊँचाई 7 राजू से गुणा करने से 28×7=196 राजू हुए। यह अधोलोक का घनफल है।

ऊर्ध्वलोक का घनफल

मध्यलोक में पूर्व-पश्चिम दिशा की चौड़ाई 1 राजू, आगे ब्रह्म स्वर्ग के पास 5 राजू, दोनों को मिलाने से 1+5=6 राजू हुए। इसे आधा करके 6÷2=3, दक्षिण-उत्तर की मोटाई 7 राजू से गुणा करके 3×7=21 हुए, इसमें ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई 3-1/2 राजू का गुणा करके 21×3-1/2=73-1/2 राजू हुए। यह मध्यलोक से ब्रह्म स्वर्ग तक का घनफल है और इतना ही ब्रह्मस्वर्ग से आगे लोक के अन्त का घनफल है, अतः 73-1/2 + 73-1/2=147 राजू प्रमाण संपूर्ण ऊर्ध्व लोक का घनफल हुआ है।

अधोलोक का घनफल 196 और ऊर्ध्वलोक का 147 राजू है। दोनों को मिला देने से 196+147=343 राजू प्रमाण सारे लोक का घनफल होता है।

इस प्रकार लोकाकाश का घनफल 343 राजू प्रमाण है।

त्रस नाली का वर्णन

लोक के बहुमध्य भाग में एक राजू चौड़ी, एक राजू मोटी और कुछ कम 13 राजू ऊँची त्रसनाली है, जो कि त्रस जीवों का निवास क्षेत्र है, अर्थात् इस त्रसनाली के भीतर ही त्रस जीव पाये जाते हैं बाहर नहीं। तेरह राजू में कुछ कम जो कहा है उस कमी का प्रमाण–

32162241-2/3 धनुष कम 13 राजू।

इस त्रसनाली के बाहर भी उपपाद, मारणांतिकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात इन तीन अपेक्षाओं से त्रस जीवों का अस्तित्व पाया जाता है।

उपपाद–किसी भी विवक्षित भव के प्रथम समय की पर्याय को उपपाद कहते हैं। लोक के अंतिम वातवलय में स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगति द्वारा त्रसनाली में त्रस पर्याय से उत्पन्न होने वाला है, वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है, उस समय त्रस नाम कर्म का उदय आ जाने से त्रस पर्याय को धारण करने पर भी त्रसनाली के बाहर है। इसलिये उपपाद की अपेक्षा त्रस जीव त्रसनाली के बाहर रहता है।

मारणांतिक समुद्घात–त्रसनाली में स्थित किसी जीव ने अंतर्मुहूर्त पहले मारणांतिक समुद्घात के द्वारा त्रसनाली के बाहर के प्रदेशों का स्पर्श किया क्योंकि उसको मरण करके वहीं स्थावर में उत्पन्न होना है तो उस समय में भी त्रस जीव का अस्तित्व त्रस नाली के बाहर पाया जाता है।

केवली समुद्घात–जब आयु कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही बाकी हो परन्तु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक हो तब सयोग केवली भगवान् के दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात होता है और ऐसा होने से तीनों कर्मों की स्थिति भी आयु कर्म के बराबर हो जाती है। इन तीनों अवस्थाओं में त्रस जीव त्रसनाली के बाहर भी पाये जाते हैं।

कोस एवं योजन बनाने की विधि

पुद्गल के सबसे छोटे अणु को परमाणु कहते हैं।

ऐसे अनंतानंत परमाणुओं का	1 अवसन्नासन्न
8 अवसन्नासन्न का	1 सन्नासन्न

8 सन्नासन्न का	1 त्रुटिरेणु
8 त्रुटिरेणु का	1 त्रसरेणु
8 त्रसरेणु का	1 रथरेणु

8 रथरेणु का-उत्तम भोग भूमिज के बाल का 1 अग्रभाग।

उत्तमभोगभूमि के बाल के 8 अग्रभागों को	- मध्यम भोग भूमिज के बाल का 1 अग्रभाग 1
मध्यम भोग भूमिज के बाल के 8 अग्रभागों का	- जघन्य भोग भूमिज के बाल का 1 अग्रभाग 1
जघन्य भोग भूमिज के 8 बाल के अग्रभागों का	- कर्म भूमिज के बाल का 1 अग्रभाग।

कर्म भूमिज के बाल के 8 अग्रभागों का	1 लिक्षा
8 लिक्षा का	1 जूं
8 जूं का	1 जौ
8 जौ का	1 अंगुल

इसे ही उत्सेधागुंल कहते हैं, इससे 500 गुणा प्रमाणांगुल होता है।

6 उत्सेधांगुल का	1 पाद
2 पाद का	1 बालिस्त
2 बालिस्त का	1 हाथ
2 हाथ का	1 रिक्कू
2 रिक्कू का	1 धनुष
2000 धनुष का	1 कोस
4 कोस का	1 लघुयोजन
500 योजन का	1 महायोजन

1 महायोजन में 2000 कोस होते हैं

असंख्यात योजनों का एक राजू होता है।

अंगुल के तीन भेद हैं–उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल।

बालाग्र, लिक्षा, जूँ और जौ से निर्मित जो अंगुल होता है वह उत्सेधांगुल है।

पाँच सौ उत्सेधांगुल प्रमाण एक प्रमाणांगुल होता है।

अवसर्पिणी काल के प्रथम भरत चक्रवर्ती का एक अंगुल प्रमाणांगुल के प्रमाण वाला है।

जिस-जिस काल में भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस काल में उन्हीं-उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है।

इस उत्सेधांगुल से ही उत्सेधकोस एवं चार उत्सेध से एक योजन बनता है यह लघुयोजन कहलाता है।

इस उत्सेधयोजन से पाँच सौ गुणा प्रमाण महायोजन होता है।

उत्सेधांगुल से किनका प्रमाण है?

देव, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान व नगर आदि का प्रमाण उत्सेध अंगुल, उत्सेध कोस, से होता है।

प्रमाणांगुल से किन-किन का माप होता है?

द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, जगती और भरत आदि क्षेत्र इन सबका प्रमाण प्रमाणांगुल से जाना जाता है।

आत्मांगुल से किन-किन का प्रमाण होता है।

झारी, कलश, दर्पण, भेरी, युग, शय्या, शकट, हल, मूसल, शक्ति, तोमर, बाण, नालि, अक्ष, चामर, दुंदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास स्थान, नगर और उद्यान आदि का प्रमाण आत्मांगुल से समझना चाहिए।

पल्य बनाने की प्रक्रिया

चार कोस का एक योजन होता है। एक योजन प्रमाण विस्तार गोल गड्ढे का घनफल 19/24 योजन प्रमाण है। इस 1 योजन प्रमाण वाले गड्ढे में मेंढ़ों के रोम के इतने छोटे टुकड़े करके (जिसके पुनः दो टुकड़े न हो सकें) खचाखच भर दें। उसमें जितने रोम हैं उनका प्रमाण-413452630308-203177749512192000000000000000000। इस गड्ढे के इतने रोमों में से सौ-सौ वर्ष में एक-एक रोम खण्ड के निकालने पर जितने समय में वह

गड्ढा खाली हो जाये उतने काल को 'व्यवहार पल्य' कहते हैं।

इस व्यवहार पल्य की रोम राशि को, असंख्यात करोड़ वर्षों के जितने समय हैं, उतने खण्ड करके उनसे दूसरे पल्य को भरकर पुनः एक-एक समय में एक-एक रोम खण्ड को निकालो। इस प्रकार जितने समय में वह दूसरा पल्य खाली हो जाय उतने काल को उद्धार पल्य कहते है।

इस उद्धार पल्य से द्वीप और समुद्रों का प्रमाण जाना जाता है। इस उद्धार पल्य की रोम राशि में से प्रत्येक रोम खण्ड के असंख्यात वर्षों के समय प्रमाण खंड करके तीसरे गड्ढे के भरने पर और पहले के समान एक-एक समय में एक-एक रोम खंड को निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा रिक्त हो जाये उतने काल को 'अद्धापल्य' कहते है।

इस अद्धापल्य से नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवों की आयु तथा कर्मों की स्थिति का प्रमाण जाना जाता है।

सागर का प्रमाण

इन दश कोड़ाकोड़ी पल्यों का जो प्रमाण हो उतना पृथक्-पृथक् सागरोपम का प्रमाण होता है। अर्थात् दश कोड़ाकोड़ी व्यवहार पल्यों का एक व्यवहार सागर, दश कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों का एक उद्धारसागर, एवं दश कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक 'अद्धासागर' होता है।

इस ग्रंथ में आगे सर्वत्र यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्सेधांगुल से देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकियों के शरीर की ऊँचाई, चारों प्रकार के देवों के निवासस्थान, नगर आदि का प्रमाण होता है।

द्वीप, समुद्र, कुलपर्वत, वेदी, जगती, नदी, सरोवर, कुण्ड, भरत आदि क्षेत्रों का प्रमाण महायोजन से होता है।

अधोलोक का वर्णन

अधोलोक में सबसे पहली मध्यलोक से लगती हुई रत्नप्रभा पृथ्वी है। इससे कुछ कम एक राजू नीचे शर्करा प्रभा है। इसी प्रकार से एक-एक राजू नीचे बालुकाप्रभा आदि पृथ्वियां हैं।

इन पृथ्वियों के अन्य नाम

घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये नाम भी इन सातों ही पृथिवियों के अनादि निधन हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के 3 भाग हैं– खरभाग, पंकभाग और अब्बहुल भाग।

रत्नप्रभा पृथ्वी 1 लाख 80 हजार योजन मोटी है। इसमें-खर-भाग 16000 योजन, पंकभाग 84000 योजन एवं अब्बहुलभाग 80000 योजन का है।

इनमें से भी खरभाग 16 भेदों से सहित है।

चित्रा, वज्रा, वैडूर्या, लोहिता, कामसारकल्पा, गोमेदा, प्रवाला, ज्योतिरसा, अंजना, अंजनमूलिका, अंका, स्फटिका, चंदना, सर्वार्थका, वकुला और शैला ये 16 भेद हैं।

खरभाग की मोटाई 16000 योजन है एवं ये उपर्युक्त पृथ्वियां भी 16 हैं। प्रत्येक पृथ्वी एक-एक हजार योजन प्रमाण मोटाई वाली हैं। लम्बाई और चौड़ाई से ये पृथ्वियाँ लोक के बराबर हैं।

इस मध्यलोक में सबसे प्रथम चित्रा पृथ्वी है। जिसके ऊपर के भाग पर ही मध्यलोक की रचना है। इस चित्रा पृथ्वी में अनेक वर्णों से युक्त महीतल, शिलातल, उपपाद, बालु, शक्कर, शीसा, चाँदी, सुवर्ण इनके उत्पत्तिस्थान वज्र, लोहा, तांबा, रांगा, मणिशिला, सिंगरफ, हरिताल, अंजन, प्रवाल, गोमेद, रुचक, कदंब, स्फटिक मणि, जलकांत मणि, सूर्यकांतमणि, चंद्रकांतमणि, वैडूर्य, गेरू, चन्द्राश्म आदि विविध वर्णवाली अनेक धातुएँ हैं। इसीलिए इस पृथ्वी का ''चित्रा' नाम सार्थक है।

खरभाग और पंकभाग में भवनवासी तथा व्यंतरवासी देवों के निवास हैं। इनका वर्णन आगे आवेगा और अब्बहुल भाग में प्रथम नरक के बिल हैं जिनमें नारकी लोगों के आवास हैं।

यह पहली रत्नप्रभा पृथ्वी बहुत प्रकार के रत्नों से सहित शोभायमान है अतः इसका 'रत्नप्रभा' नाम सार्थक है।

सातों पृथ्वियों की मोटाई का प्रमाण

रत्नप्रभा	–	1 लाख 80 हजार योजन
शर्कराप्रभा	–	32000 योजन
वालुकाप्रभा	–	28000 योजन
पंकप्रभा	–	24000 योजन
धूमप्रभा	–	20000 योजन
तमः प्रभा	–	16000 योजन
महातमःप्रभा	–	8000 योजन

ये सातों ही पृथ्वियाँ ऊर्ध्व दिशा को छोड़ शेष 9 दिशाओं में घनोदधि वातवलय से लगी हुई हैं, परन्तु आठवीं मोक्षपृथ्वी दशों दिशाओं में ही घनोदधि वातवलय को छूती है।

नरक के बिलों का वर्णन

सातों नरकों के बिलों की संख्या चौरासी लाख प्रमाण है–

प्रथम पृथ्वी के	–	30,00000 बिल
द्वितीय पृथ्वी के	–	25,00000 बिल
तृतीय पृथ्वी के	–	15,00000 बिल
चौथी पृथ्वी के	–	10,00000 बिल
पाँचवी पृथ्वी के	–	3,00000 बिल
छठी पृथ्वी के	–	99,995 बिल
एवं सातवीं पृथ्वी के	–	5 बिल हैं।

अब्बहुल भाग से पहले नरक से लेकर छठे नरक तक जो पृथ्वियों का प्रमाण है उनके ऊपर व नीचे एक-एक हजार योजन प्रमाण मोटी पृथ्वी को छोड़कर पटलों के क्रम से नारकियों के बिल हैं और सातवीं पृथ्वी के ठीक मध्य भाग में ही नारकियों के बिल हैं।

शीत-उष्ण बिलों का प्रमाण

पहली, दूसरी, तीसरी व चौथी पृथ्वी के सभी बिल एवं पांचवीं पृथ्वी के चार भागों में से तीन भाग (3/4) प्रमाण बिल अत्यन्त उष्ण होने से वहां रहने

वाले जीवों को तीव्र गर्मी की पीड़ा पहुँचाने वाले हैं। पांचवीं पृथ्वी के अवशिष्ट 1/4 भाग प्रमाण बिल तथा छठी और सातवीं पृथ्वी में स्थित नारकियों के बिल अत्यन्त शीत होने से वहां रहने वाले जीवों को भयानक शीत की वेदना देने वाले हैं।

नारकियों के उपर्युक्त 8400000 बिलों में से 8225000 उष्ण एवं 175000 बिल अत्यन्त शीत हैं।

यदि उष्ण बिल में मेरू के बराबर लोहे का शीतल पिंड डाल दिया जाए तो वह तल प्रदेश तक न पहुँच कर बीच में ही मैन (मोम) के टुकड़े के समान पिघल कर नष्ट हो जाएगा।

इसी प्रकार यदि मेरुपर्वत के बराबर लोहे का उष्ण पिंड शीत बिल में डाल दिया जाए तो वह भी तल प्रदेश तक न पहुँच कर बीच में ही नमक के टुकड़े के समान विलीन हो जायेगा।

बकरी, हाथी, घोड़ा, भैंस, गधा, ऊँट, बिल्ली सर्प और मनुष्यादिक के सड़े हुए माँस की गंध की अपेक्षा नारकियों के बिल अनंतगुणी दुर्गंध से युक्त हैं। स्वभावतः गाढ़ अंधकार से परिपूर्ण ये नारकियों के बिल क्रकच, कृपाण, छुरिका, खैर की आग, अति तीक्ष्ण सुई और हाथियों की चिंघाड़ से भी अत्यन्त भयानक हैं।

नारक बिलों में भेद

ये नारकियों के बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक के भेद से तीन प्रकार के हैं।

इंद्रक–जो अपने पटल के सब बिलों के बीच में हो वह इन्द्रक कहलाता है।

श्रेणीबद्ध–जो बिल चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में पंक्ति से स्थित रहते हैं वे श्रेणीबद्ध हैं।

प्रकीर्णक–श्रेणीबद्ध बिलों के बीच में इधर-उधर रहने वाले बिलों को प्रकीर्णक संज्ञा है।

रत्नप्रभा आदि 7 पृथ्वियों में क्रम से 13, 11, 9, 7, 5, 3, 1 इस प्रकार कुल 49 इंद्रक बिल हैं। इन्हें प्रस्तार एवं पटल भी कहते हैं।

प्रथम नरक में 13 इंद्रक पटल हैं। ये एक पर एक ऐसे खन पर खन बने हुए के समान हैं। ये तलघर के समान भूमि में हैं एवं चूहे आदि के बिलों के समान हैं। औंधे मुख बने हुए हैं। व्यवस्थित दरवाजे खिड़की आदिकों से रहित हैं। इसीलिए इनका बिल नाम सार्थक है।

पहले नरक के इंद्रक बिलों के नाम

सीमंतक, निरय, रौरव, भ्रांत, उद्भ्रांत, संभ्रांत, असम्भ्रांत, विभ्रांत त्रस्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त ये 13 इंद्रक हैं।

इंद्रक और श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण

पहले 'सीमन्तक' नामक इंद्रक बिल की चारों दिशाओं में उनचास-उनचास और चारों विदिशाओं में 48-48 श्रेणीबद्ध बिल हैं। 'सीमन्तक' इंद्रक संबंधी श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण 388 है। दिशा संबंधी 49 को 4 से गुणा एवं विदिशा संबंधी 48 को 4 से गुणा करने पर 49×4=196, 48×4=192। 196+192=388 होता है।

इससे आगे दूसरे निरय आदि इन्द्रक बिलों के आश्रित रहने वाले श्रेणीबद्ध बिलों में से एक-एक बिल कम होता जाता है। इसी प्रकार प्रथम पृथ्वी संबंधी इंद्रक व श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण 4433 है। सम्पूर्ण-सातों पृथ्वियों में कुल 9653 इंद्रक व श्रेणीबद्ध बिल हैं। यथा–

		इंद्रक	श्रेणीबद्ध
प्रथम पृथ्वी में	–	13	4420
द्वितीय पृथ्वी में	–	11	2684
तृतीय पृथ्वी में	–	9	1476
चौथी पृथ्वी में	–	7	700
पाँचवी पृथ्वी में	–	5	260
छठी पृथ्वी में	–	3	60
सातवीं पृथ्वी में	–	1	4
कुल जोड़		49	+ 9604 =9653

प्रकीर्णक बिलों का प्रमाण

रत्नप्रभा आदिक प्रत्येक पृथ्वी के सम्पूर्ण बिलों की संख्या को रखकर उनमें से अपने-अपने इंद्रक और श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या को घटा देने पर उस-उस पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों का प्रमाण होता है।

यथा –

प्रथम पृथ्वी के समस्त बिल-30,00000 हैं,

3000000-(13+4420)=2995567

उन्तीस लाख, पंचानवे हजार, पाँच सौ सरसठ प्रकीर्णक बिल हैं। ऐसे ही सभी नरकों के बिलों का प्रमाण निकाल लेना चाहिए।

इंद्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों की पृथक्-पृथक् संख्या

नरक		इंद्रक	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक
प्रथम पृथ्वी में	–	13	4420	2995567
द्वितीय पृथ्वी में	–	11	2684	2497305
तृतीय पृथ्वी में	–	9	1476	1498515
चौथी पृथ्वी में	–	7	700	999293
पाँचवी पृथ्वी में	–	5	260	299735
छठी पृथ्वी में	–	3	60	99932
सातवीं पृथ्वी में	–	1	4	0
कुल जोड़		49	+ 9604	8390347

सातवीं पृथ्वी में प्रकीर्णक बिल नहीं हैं अतः 6 पृथ्वी संबंधी सभी प्रकीर्णक बिलों का जोड़ तेरासी लाख नब्बे हजार तीन सौ सैंतालीस (8390347) है।

इंद्रक बिलों का विस्तार संख्यात योजन प्रमाण है। श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण असंख्यात योजन एवं प्रकीर्णक बिलों का विस्तार कुछ का संख्यात और कुछ का असंख्यात योजन है। सम्पूर्ण बिलों की संख्या के पाँच भागों

में से एक भाग (1/5) प्रमाण बिलों का विस्तार संख्यात योजन और शेष भाग (4/5) प्रमाण बिलों का विस्तार असंख्यात योजन प्रमाण है।

सभी बिल 8400000 हैं उसमें संख्यात योजन विस्तार वाले 1680000, असंख्यात योजन विस्तार वाले 6720000।

पृथक्-पृथक् नरकों में बिलों का विस्तार

	संख्यात योजन वाले	असंख्यात योजन वाले
प्रथम पृथ्वी में	600000	2400000
द्वितीय पृथ्वी में	500000	2000000
तृतीय पृथ्वी में	300000	1200000
चौथी पृथ्वी में	200000	800000
पाँचवी पृथ्वी में	60000	2400000
छठी पृथ्वी में	19999	79996
सातवीं पृथ्वी में	1	4
कुल जोड़	1680000	6720000

इन बिलों का तिरछा अंतराल

संख्यात योजन विस्तार वाले नारकियों के बिलों में तिरछे रूप में जघन्य अंतराल 6 कोस और उत्कृष्ट अंतराल 12 कोस प्रमाण है।

असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों में जघन्य अंतराल 7000 योजन और उत्कृष्ट अंतराल असंख्यात योजन प्रमाण है।

पूर्वोक्त प्रकीर्णक बिलों में से असंख्यात योजन विस्तार वाले बिल अधिक हैं और संख्यात योजन वाले बिल थोड़े ही हैं। ये सब बिल अहोरात्र अंधकार से व्याप्त हैं।

संख्यात योजन प्रमाण वाले बिलों में नियम से संख्यातों नारकी जीव तथा असंख्यात योजन प्रमाण वाले बिलों में असंख्यातों नारकी जीव रहते हैं।

प्रथम इंद्रक का विस्तार पैंतालीस लाख योजन और अंतिम इंद्रक का

विस्तार 1 लाख योजन है। दूसरे इंद्रक से लेकर 48 वें इंद्रक तक का प्रमाण तिलोयपण्णत्ति से समझ लेना चाहिए।

49 इंद्रक बिलों की मोटाई का प्रमाण

प्रथम पृथ्वी में 13 इंद्रक हैं शेष 6 पृथ्वियों में उत्तरोत्तर इनसे 2-2 कम होते गये हैं। सब पटल 49 हैं। प्रथम पृथ्वी के 13 पटलों की मोटाई 1-1 कोस है। आगे द्वितीय आदि नरकों में वह मोटाई आधा-आधा कोस बढ़ती गई हैं।

यथा–

सात नरकों में		इंद्रक की मोटाई
प्रथम नरक में	–	1 कोस
द्वितीय नरक में	–	1-1/2 कोस
तृतीय नरक में	–	2 कोस
चतुर्थ नरक में	–	2-1/2 कोस
पाँचवें नरक में	–	3 कोस
छठे नरक में	–	3-1/2 कोस
सातवें नरक में	–	4 कोस

इंद्रक बिलों के अंतराल का प्रमाण

प्रथम आदि पृथ्वियों में जिन 13, 11 आदि पटलों का अवस्थान बतलाया गया है उनके मध्य में कितना अंतर है और वह किस प्रकार से प्राप्त होता है उसे स्पष्ट करते हैं–

जिस विवक्षित नरक पृथ्वी में जितने पटल स्थित हैं उन सबके समस्त मोटाई के प्रमाण को तथा पृथ्वी के जितने भाग में उन पटलों का अवस्थान नहीं है उसको भी कम करके शेष में एक कम अपनी पटल संख्या का भाग देने से जो लब्ध हो, उतना उन पटलों के मध्य में ऊर्ध्व अंतर का प्रमाण होता है। जैसे– 'प्रथम पृथ्वी के जिस अब्बहुल भाग में प्रथम नरक है– उसकी मोटाई का प्रमाण अस्सी हजार योजन है। चूँकि उसके ऊपर और नीचे हजार-हजार योजन में कोई पटल नहीं है अतएव अस्सी हजार में 2 हजार कम करने से 78 हजार रहते हैं। पुनः 13 पटल के प्रत्येक की मोटाई एक-

एक कोस होने से 13 कोस अर्थात् 3-1/4 योजन होती है। इस मोटाई को 78 हजार योजन में कम करके उसमें 1 कम प्रथम नरक के पटल 13 का भाग दे दीजिए उन पटलों के मध्य के अंतर का प्रमाण निकल आएगा।

$(80000-2000)-(1/4\times13) \div (13-1) = 6499-35/48$योजन

सातों नरकों के पटलों का आपस में अंतर

		अंतर
प्रथम पृथ्वी में	–	6499-35/48
द्वितीय पृथ्वी में	–	2999-47/80
तृतीय पृथ्वी में	–	3249-7/16
चतुर्थ पृथ्वी में	–	3665-45/48
पाँचवीं पृथ्वी में	–	4499-1/16
छठीं पृथ्वी में	–	6998-11/16

सातवीं पृथ्वी के एक ही इंद्रक के होने से अंतर की संभावना नहीं है।

सातों नरकों में एक दूसरे से कितना अंतर है?

प्रथम पृथ्वी की मोटाई 1 लाख अस्सी हजार योजन और द्वितीय पृथ्वी की मोटाई 32 हजार योजन है।

180000+32000=212000 योजन।

इस मोटाई से रहित दोनों पृथ्वियों के मध्य में एक राजू प्रमाण अंतराल है। यह तो अंतर प्रथम नरक से दूसरे नरक के मध्य का हुआ। अब प्रथम नरक के अंतिम इंद्रक से द्वितीय नरक के प्रथम इंद्रक का अंतर बताते हैं।

एक हजार योजन प्रमाण चित्रा पृथ्वी की मोटाई प्रथम पृथ्वी की मोटाई में सम्मिलित है। फिर भी उसकी गणना ऊर्ध्वलोक की मोटाई में की गई है। अतएव इसमें से एक हजार योजन घटा दीजिए। पुनः प्रथम पृथ्वी के नीचे और द्वितीय पृथ्वी के ऊपर ऐसे एक-एक हजार योजन के क्षेत्र में नारकियों के बिलों के न होने से 2 हजार योजन कम कर देने से शेष 2 लाख 9 हजार योजन प्रमाण से रहित, एक राजू प्रमाण प्रथम पृथ्वी के अंतिम इंद्रक और द्वितीय पृथ्वी के प्रथम इंद्रक के अंतर का प्रमाण निकलता है।

सातों नरक के अंतिम इंद्रक और द्वितीय पृथ्वी के प्रथम इंद्रक का अंतर

प्रथम नरक के अंतिम इंद्रक से द्वितीय पृथ्वी के प्रथम इंद्रक का अंतर 209000 योजन कम 1 राजू है।

द्वितीय पृथ्वी के अंतिम इंद्रक से तृतीय पृथ्वी के प्रथम इंद्रक तक अंतर 26000 योजन कम 1 राजू है।

तृतीय पृथ्वी के अंतिम इंद्रक से चतुर्थ पृथ्वी के प्रथम इंद्रक तक अंतर 22000 योजन कम 1 राजू है। चतुर्थ पृथिवी के अंतिम इंद्रक से पंचम पृथ्वी के प्रथम इंद्रक तक 18000 योजन कम 1 राजू है।

पांचवीं पृथ्वी के अंतिम इंद्रक से छठी पृथ्वी के प्रथम इंद्रक तक अंतर 14000 योजन कम 1 राजू है।

एवं छठी पृथ्वी के अंतिम इंद्रक से सातवीं पृथ्वी के प्रथम इंद्रक तक का अंतर 3000 योजन और 2 कोस कम 1 राजू है।

नारकियों के जन्म लेने के उपपाद स्थान का वर्णन

इंद्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों में ऊपर के भाग में (छत में) अनेक प्रकार के तलवारों से युक्त अर्धवृत्त और अधोमुख वाले जन्म स्थान हैं।

ये जन्म स्थान घम्मा, वंशा और मेघा नाम की तीसरी पृथ्वी तक उष्ट्रिका, कोथली, कुंभी, मुद्गलिका, मुद्गर और नाली के समान हैं।

चौथी और पांचवीं पृथ्वी में जन्मभूमियों के आकार गाय, हाथी, घोड़ा, भस्त्रा, अब्जपुट, अम्बरीष और द्रोणी (नाव) जैसे हैं।

छठी और सातवीं पृथ्वी की जन्म भूमियाँ झालर, द्वीपी, चक्रवाक, श्रृगाल, गधा, बकरा, ऊँट और रीछ के सदृश आकार वाली हैं।

नारकियों की ये सभी जन्म भूमियां अंत में करोंत के सदृश चारों तरफ से गोल और भयंकर हैं। इन नरकों में बकरी, हाथी, भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, बिलाव और मेढ़े आदि के सड़े-गले शरीरों के दुर्गंध की अपेक्षा अनंतगुणी अधिक दुर्गंध है।

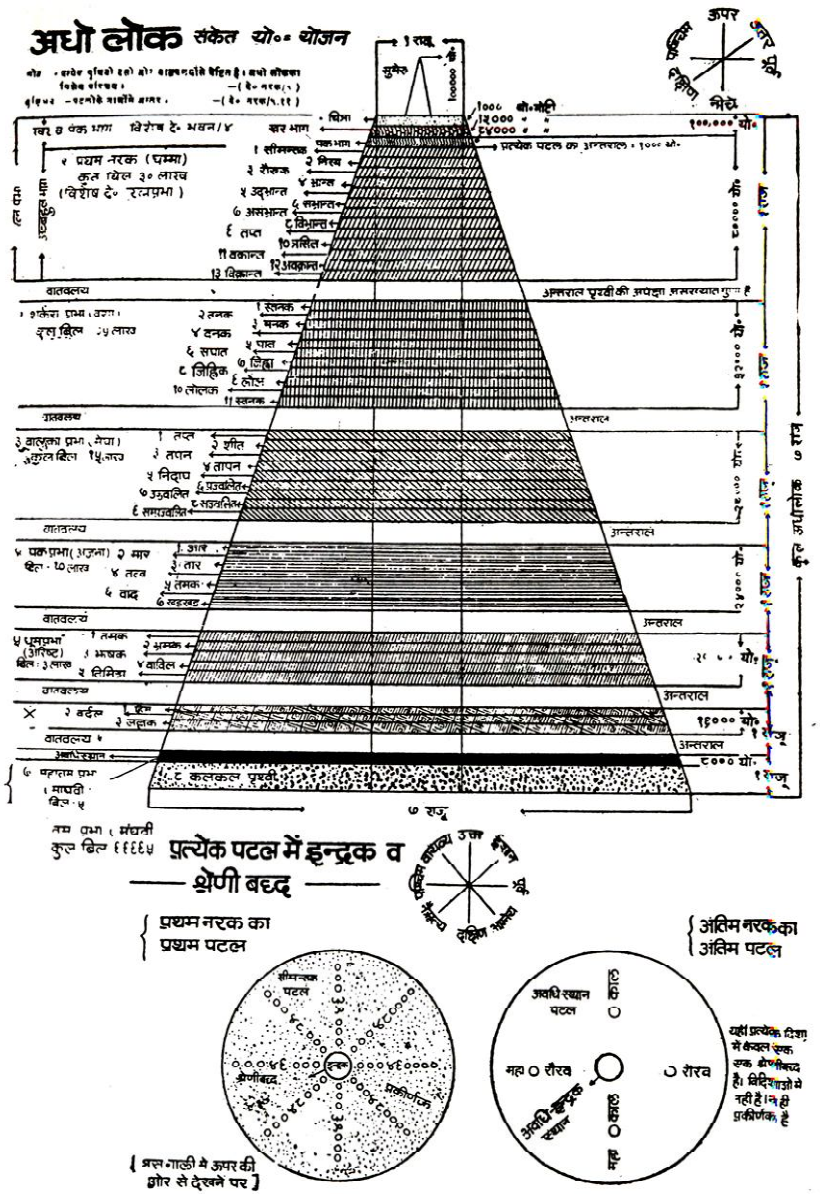

इन जन्म भूमियों का विस्तार एक, दो कोस आदि नीचे लिखे प्रमाण हैं एवं इनकी ऊँचाई अपने-अपने विस्तार से पंचगुणी है यथा–

नरकों में	उपपाद स्थान का विस्तार	ऊँचाई
प्रथम नरक में	1 कोस	5 कोस
द्वितीय नरक में	2 कोस	10 कोस
तृतीय नरक में	3 कोस	15 कोस
चतुर्थ नरक में	1 योजन (4 कोस)	5 योजन
पाँचवें नरक में	2 योजन (8 कोस)	10 योजन
छठे नरक में	3 योजन (12 कोस)	15 योजन
सातवें नरक में	100 योजन (400 कोस)	500 योजन

इन उपपाद स्थानों में एक, दो, तीन, पाँच और सात द्वार – कोन और इतने ही दरवाजे हैं। यह व्यवस्था केवल श्रेणी और प्रकीर्णक बिलों में ही है। इंद्रक बिलों में ये स्थान 3 द्वार और 3 कोनों से युक्त हैं। ये सब जन्म स्थान हमेशा ही अनंत गुणित अंधकार से व्याप्त हैं।

नरक में उत्पत्ति का वर्णन

नारकी जीव पाप से नरक बिल में उत्पन्न होकर एक मूहूर्त काल में छहों पर्याप्तियों को पूर्ण कर आकस्मिक भय को प्राप्त होता है। पश्चात् वह नारकी जीव भय से कांपता हुआ बड़े कष्ट से चलने के लिए प्रस्तुत होकर और छत्तीस आयुधों के मध्य में गिरकर वहाँ से गेंद के समान उछलता है।

प्रथम पृथ्वी में जीव सात योजन (उत्सेधयोजन) छह हजार पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊपर उछलता है, इसके आगे शेष पृथ्वियों के उछलने का प्रमाण क्रम से उत्तरोत्तर दूना-दूना है।

नरक के दुःखों का वर्णन

जिस प्रकार दुष्ट व्याघ्र मृग के बच्चे को देखकर उसके ऊपर टूट पड़ता है, उसी प्रकार क्रूर पुराने नारकी उस नवीन नारकी को देखकर धमकाते हुए उसकी ओर दौड़ते हैं। जिस प्रकार कुत्तों के झुंड एक दूसरे को दारुण दुःख

देते हैं उसी प्रकार नारकी नित्य ही परस्पर दुस्सह पीड़ादिक दिया करते हैं। वे नारकी जीव चक्र, बाण, शूली, तोमर, मुद्गर, करोंत, भाला, सुई, मूसल और तलवार आदि शस्त्र, अस्त्र, वन एवं पर्वत की आग तथा भेड़िया, व्याघ्र, तरक्ष, शृगाल, कुत्ता, बिलाव और सिंह इन पशुओं के अनुरूप परस्पर में सदैव अपने-अपने शरीर की विक्रिया किया करते हैं। ये नारकी गहरे बिल, धुंआ, वायु, खप्पर, यन्त्र, चूल्हा, चक्की, बर्छी आदि के आकार रूप अपने-अपने शरीर की विक्रिया करते हैं और तो क्या ये नारकी दूसरों को दुःख देने के लिये दावानल, अग्नि, सड़े रक्त और कीड़ों से युक्त नदी, सरोवर, कूप और वापी आदि रूप में अपने-अपने शरीर की ही विक्रिया करते हैं। इन नारकियों के पृथक् विक्रिया नहीं होती, अपृथक् विक्रिया ही होती है।

कोई नारकी व्याघ्र सिंहादिक बनकर अन्य नारकी को खाने लगते हैं। कोई नारकी किसी नारकी के द्वारा हजारों यन्त्रों में पेले जाते हैं। कोई किसी को खम्भों में बांधकर लोहे के संबल से मारते हैं, कोई जाज्वल्यमान दुष्प्रेक्ष्य अग्नि में फेंके जाते हैं, कोई नारकी आरों से चीरे जाते हैं, कोई भयंकर भालों से बेधे जाते हैं। कितने ही नारकी जीव लोहे की कड़ाहियों के तपे हुए तेल में डाले जाते हैं और कितने ही अग्नि में तपाये जाते हैं। कभी-कभी कोयले और उपलों की आग में झुलसे हुए ये नारकी जीव शीतल जल समझ कर वैतरणी नदी में प्रवेश करते हैं। उसमें उनका शरीर अनेक रोगों से पूर्ण हो जाता है। क्योंकि वह वैतरणी सड़े हुए खून, पीव से भरी और असंख्य जीवों से व्याप्त रहती है। वहां के नारकी ही इन विक्रियाओं को करते हैं क्योंकि वहाँ पर विकलत्रय जीव पैदा नहीं होते हैं। उस वैतरणी में कैंची के समान तीक्ष्ण जल के आकार से परिणत हुए नारकी अन्य नारकियों के शरीरों को दुस्सह अनेक प्रकार की पीड़ाओं को पहुँचाते हैं। वैतरणी नदी के जल में नारकी कछुआ, मेंढक और मगर प्रभृति जल जीवों के विविध रूपों को धारण कर एक दूसरे का भक्षण करते हैं। पश्चात् वे नारकी विस्तीर्ण शिलाओं के बीच में बिलों को देखकर झटपट उनमें प्रवेश करते हैं, परन्तु वहाँ पर सहसा विशाल

ज्वालाओं वाली महान अग्नि उठती है। जिस अग्नि से उन नारकियों के सम्पूर्ण अङ्ग तीक्ष्ण ज्वालाओं से जल जाते हैं। पुनः वे ही नारकी शीतल छाया की आशा से असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं। वहाँ पर भी वज्रदण्ड और तलवार की धार के समान पैने उन वृक्षों के पत्ते नारकियों के शरीर को विदीर्ण करके खण्ड-खण्ड कर देते हैं। उसी प्रकार से वहाँ चक्र, बाण, तोमर, मुद्गर, तलवार, भाला, मूसल तथा और भी अस्त्र-शस्त्र उनके सिर पर गिरते हैं, अनंतर जिनके शिर छिद गये हैं, हाथ, पैर आदि अङ्ग खण्डित हो गये हैं, जिनके नेत्र और आंतों के समूह बाहर निकल पड़े हैं, ऐसे वे नारकी अशरण होकर उस वन को छोड़कर भागते हैं। तब गृद्ध, गरुड़, काक आदि वज्रमय मुख वाले व तीक्ष्ण दाँतों वाले पक्षी बन करके नारकी उन नारकियों के शरीर को भक्षण करने लगते हैं। कोई-कोई नारकी उन नारकियों के अंग और उपांगों को प्रचण्डघातों से चूर्णकर घावों पर क्षार पदार्थ – तेजाब आदि डाल देते हैं। घावों में क्षार-पदार्थों के डालने से वे नारकी करुणा पूर्ण विलाप करते हैं और दुःख देने वाले नारकी के चरणों में पड़ते हैं। फिर भी वे निर्दयी नारकी उन्हें खण्ड-खण्ड करके चूल्हे में डाल देते हैं। कोई नारकी पर स्त्री में आसक्त होने वालों के शरीरों में तप्तायमान लोहपुतली को चिपका देते हैं। पूर्व भव में माँस भक्षण प्रेमी नारकी के शरीर के ही माँस को काट-काटकर, कोई नारकी उन्हीं के मुख में जबरन डालते हैं। मधु और मद्य के सेवन करने वाले प्राणियों को अन्य नारकी अत्यन्त तपे हुए द्रवित लोहे को जबरदस्ती पिला देते हैं। जिससे उनके अवयव समूह भी पिघल जाते हैं। जिस प्रकार तलवार के प्रहार से भिन्न हुआ कुँए का जल फिर वापस मिल जाता है उसी प्रकार अनेकानेक शस्त्रों से छिन्न-भिन्न किया गया नारकियों का शरीर भी फिर से मिल जाता है। तात्पर्य यह है कि नारकियों की आयु पूरी हुए बिना अकाल मरण नहीं होता है।

नरक की भूमि तप्तायमान लोहे के सदृश दुःखद स्पर्शवाली, सुईं के समान तीखी दूब से व्याप्त है, उस पृथ्वी से इतना दुःख होता है कि जैसे एक साथ ही हजारों बिच्छुओं ने डंक मारा हो। उन नारकियों के उदर, नेत्र,

मस्तक आदि सभी अवयव करोड़ों रोगों से जर्जरित रहते हैं। नरक में नारकियों के साथ ही 5 करोड़ 68 लाख 99 हजार 5 सौ 84 रोग उदय में बने रहते हैं।

नारकियों का आहार और मिट्टी के दोष

कुत्ते, गधे आदि जानवरों के अत्यन्त सड़े हुए माँस और विष्टा आदि की अपेक्षा भी अनंतगुणी दुर्गंधि से युक्त ऐसी उस नरक की मिट्टी को घम्मा नरक के नारकी अत्यन्त भूख की वेदना से व्याकुल होकर भक्षण करते हैं और दूसरे आदि नरकों में उससे भी अधिक गुणी अशुभ दुर्गंधित मिट्टी को खाते हैं। घम्मा पृथ्वी के प्रथम पटल के आहार की मिट्टी को यदि इस मध्य लोक में डाल दिया जाए तो उसकी दुर्गंधि से 1 कोस पर्यंत के जीव मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। इससे आगे दूसरे तीसरे आदि पटलों में आधे-आधे कोस प्रमाण अधिक होते हुए मारण शक्ति बढ़ती गई है और सातवें नरक के अन्तिम उन्चासवें पटल में मिट्टी की मारण शक्ति 25 कोस प्रमाण हो जाती है।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक जाने वालों का वर्णन

कोई-कोई जीव इस मध्यलोक में तीर्थंकर प्रकृति के बंध के पहले यदि नरकायु का बंध कर लेते हैं तो पहले, दूसरे या तीसरे नरक तक जा सकते हैं वें तीर्थकर प्रकृति के सत्त्व वाले जीव भी वहाँ पर असाधारण दुःखों का अनुभव करते रहते हैं और सम्यक्त्व के माहात्म्य से पूर्वकृत कर्म के विपाक का चिंतवन करते रहते हैं। जब इनकी आयु 6 महीने अवशेष रह जाती है तब स्वर्ग के देव नरक में जाकर चारों तरफ के परकोटा बनाकर उस नारकी के उपसर्ग का निवारण कर देते हैं और मध्यलोक में रत्नों की वर्षा, माता की सेवा आदि उत्सव होने लगते हैं।

नारकी के दुःखों के भेद

नरकों में नारकियों को चार प्रकार के दुःख होते हैं। क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक और असुरकृत्।

नरक में उत्पन्न हुए शीत, उष्ण, वैतरणी नदी, शाल्मलिवृक्ष आदि के निमित्त से होने वाले दुःख क्षेत्रज दुःख कहलाते हैं।

शरीर में उत्पन्न हुए रोगों के दुःख और मार-काट, कुंभीपाक आदि के दुःख शारीरिक दुःख है।

संक्लेश, शोक, आकुलता, पश्चात्ताप आदि के निमित्त से उत्पन्न दुःख मानसिक दुःख कहलाते हैं।

एवं तीसरी पृथ्वी पर्यंत संक्लेश परिणाम वाले असुरकुमार जाति के भवनवासी देवों के द्वारा उत्पन्न कराये गये दुःख असुरकृत् दुःख कहलाते हैं।

असुरकुमारकृत दुःखों का वर्णन

पूर्व में देवायु का बंध करने वाले मनुष्य या तिर्यंच अनंतानुबंधी में से किसी एक का उदय आ जाने से रत्नत्रय को नष्ट करके असुरकुमार जाति के देव होते हैं। सिकनानन, असिपत्र, महाबल, रुद्र, अंबरीष आदिक असुरकुमार जाति के देव तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी तक जाकर नारकियों को क्रोध उत्पन्न करा-करा कर परस्पर में युद्ध कराते हैं और प्रसन्न होते हैं।

नरक में अवधिज्ञान का वर्णन

नरक में उत्पन्न होते ही अंतर्मुहूर्त के बाद छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं और भवप्रत्यय अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। जो मिथ्यादृष्टी नारकी हैं उनका अवधिज्ञान विभंगावधि– कुअवधि कहलाता है एवं सम्यक्दृष्टि नारकियों का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

अवधि के क्षेत्र का प्रमाण

प्रथम नरक में अवधिज्ञान का विषय एक योजन है। आगे-आगे आधे-आधे कोस की हानि होकर सातवें नरक में वह एक कोस मात्र रह जाता है। यथा–

प्रथम नरक में	–	4 कोस (1 योजन)
द्वितीय नरक में	–	3-1/2 कोस
तृतीय नरक में	–	3 कोस
चतुर्थ नरक में	–	2-1/2 कोस

पाँचवें नरक में	–	2 कोस
छठे नरक में	–	1-1/2 कोस
सातवें नरक में	–	1 कोस

इस अवधिज्ञान के प्रगट होते ही वे नारकी पूर्व भव के पापों को, बैर-विरोध को एवं शत्रुओं को जान लेते हैं। जो सम्यग्दृष्टी हैं वे अपने पापों का पश्चात्ताप करते रहते हैं, किन्तु जो मिथ्यादृष्टि हैं वे पूर्व भव में किसी के द्वारा किये गये उपकार को भी अपकार रूप समझकर यद्वा-तद्वा आरोप लगाते हुए मार-काट करते रहते हैं। कोई भद्रमिथ्यादृष्टि जीव पाप के फल को भोगते हुए अत्यन्त दुःख से घबड़ा कर पापों का पश्चात्ताप करके 'वेदना अनुभव' नामक निमित्त से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि कोई नारकी पाप के फल को भोगते हुए यह सोचते हैं कि हाय! मैंने परस्त्री सेवन किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यहाँ पर गरम-गरम लोह पुतली से आलिंगन कराया जाता है। मैंने मद्यपान किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यहाँ तांबा गला-गला कर पिलाया जाता है। हाय! हाय! मैंने पूर्व जन्म में गुरुओं की शिक्षा नहीं मानी, भगवान की वाणी पर विश्वास नहीं किया, नियम लेकर भंग किया, इत्यादि के फलस्वरूप मुझे ये नरक यातनायें भोगने को मिली हैं। अब इनसे हमें छुटकारा कैसे मिले, कहाँ जायें, क्या करें, इत्यादि विलाप करते-करते जिन धर्म पर प्रेम करते हुए श्रद्धा से सम्यक्त्वरूपी अमूल्य निधि को प्राप्त कर लेते हैं।

नरक में सम्यक्त्व के कारण

घम्मा आदि तीन पृथ्वियों में मिथ्यात्वभाव से संयुक्त नारकियों में से कोई जातिस्मरण से, कोई दुर्वार वेदना से व्यथित होकर, कोई देवों के संबोधन को प्राप्त कर अनंत भवों के चूर्ण करने में निमित्तभूत ऐसे सम्यग्दर्शन को ग्रहण करते हैं।

पंकप्रभा आदि शेष चार पृथ्वियों के नारकी जीव देवकृत् प्रबोध के बिना जातिस्मरण और वेदना के अनुभव मात्र से ही सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते हैं।

जिनने पहले नरक आयु का बंध कर लिया है, पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त किया है, ऐसे जीव सम्यक्त्व सहित मरकर प्रथम नरक में ही जा सकते हैं, अन्यत्र नहीं। सभी नरकों में सम्यक्त्व के लिए कारणभूत सामग्री मिल जाने से नारकी जीव सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते हैं।

नरक में जाने के कारण

जो मद्य पीते हैं, माँस की अभिलाषा करते हैं, जीवों का घात करते हैं, शिकार करते हैं, क्षणमात्र के इंद्रिय सुख के लिए पाप उत्पन्न करते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के वशीभूत होकर असत्य वचन बोलते हैं, काम से उन्मत्त जवानी में मस्त परस्त्री में आसक्त होकर जीव नरकों में चिरकाल तक नपुंसक वेदी होते हैं और अनंत दुःखों को प्राप्त करते हैं।

नारकियों के शरीर की अवगाहना

रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम सीमंतक पटल के नारकियों के शरीर की ऊँचाई 3 हाथ है। इसके आगे के पटलों में बढ़ते-बढ़ते अंतिम 13 वें पटल में 7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल है। ऐसे ही बढ़ते-बढ़ते सातवीं पृथ्वी के अंतिम अवधिस्थान नामक इंद्रक बिल में 500 धनुष प्रमाण शरीर की अवगाहना है।

प्रत्येक नरक के प्रथम पटल और अंतिम पटल में शरीर की अवगाहना का प्रमाण

	प्रथम पटल में	अंतिम पटल में
प्रथम नरक में	3 हाथ	7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल
द्वितीय नरक में	8 ध. 2 हाथ 24/11 अं.	15 ध.2 हाथ 12 अं.
तृतीय नरक में	17 ध. 34-2/3 अं.	31 ध.1 हाथ
चतुर्थ नरक में	35 ध. 2 हा.20-4/7 अं.	62 ध.2 हाथ
पाँचवें नरक में	75 धनुष	125 धनुष
छठे नरक में	166 ध. 2 हा. 16 अं.	250 धनुष
सातवीं पृथ्वी के अवधि स्थान इंद्रक में		500 धनुष प्रमाण

सातों पृथ्वियों में शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना

प्रथम पृथ्वी में	–	7 धनुष 3 रत्नि 6 अंगुल	ऊँचाई
द्वितीय पृथ्वी में	–	15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल	ऊँचाई
तृतीय पृथ्वी में	–	31 धनुष 1 हाथ	ऊँचाई
चतुर्थ पृथ्वी में	–	62 धनुष 2 हाथ	ऊँचाई
पाँचवीं पृथ्वी में	–	125 धनुष	ऊँचाई
छठीं पृथ्वी में	–	250 धनुष	ऊँचाई
सातवीं पृथ्वी में	–	500 धनुष	ऊँचाई

नारकियों की लेश्यायें

सभी नारकी जीवों के परिणाम हमेशा अशुभतर ही होते हैं, एवं लेश्यायें भी अशुभतर होती हैं। उनके शरीर भी अशुभ नाम कर्म के उदय से हुंडक संस्थान वाले वीभत्स और अत्यन्त भयंकर होते हैं। यद्यपि उनका शरीर वैक्रियक है फिर भी उसमें मल, मूत्र, पीव आदि सभी वीभत्स सामग्री रहती हैं। कदाचित् कोई नारकी जीव सोचते हैं कि हम शुभ कार्य करें, परन्तु कर्मोदय से अशुभ ही होता है। वे दुःख दूर करने के लिए जितने भी उपाय करते हैं उनसे दूना दुःख ही बढ़ता जाता है। कषायों के उदय से अनुरंजित मन, वचन काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। उसके 6 भेद हैं – कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। प्रारंभ की तीन लेश्यायें अशुभ हैं एवं आगे की तीन लेश्यायें शुभ हैं। नरक में सर्वदा अशुभतर और अशुभतम ही लेश्यायें रहती हैं।

प्रथम और द्वितीय नरक में	–	कापोतलेश्या।
तृतीय नरक में	–	ऊपर कापोत और नीचे नील लेश्या।
चौथे नरक में	–	नील लेश्या।
पाँचवें नरक में	–	ऊपर भाग में नील और नीचे भाग में कृष्ण
छठे नरक में	–	कृष्ण लेश्या
सातवें नरक में	–	परमकृष्ण लेश्या होती है।

नारकियों की आयु

दुःखों से घबड़ाकर नारकी जीव मरना चाहते हैं किन्तु आयु पूरी हुये बिना मर नहीं सकते हैं। उनके शरीर तिल के समान खंड-खंड होकर भी पारे के समान पुनः मिल जाते हैं। इन नारकियों की जघन्य आयु कम से कम 10 हजार वर्ष है एवं उत्कृष्ट आयु 33 सागर है। 10 हजार वर्ष से एक समय अधिक से लेकर एवं तेंतीस सागर से एक समय कम के मध्य की सभी आयु मध्यम कहलाती है।

प्रथम नरक में 13 पटल हैं। प्रथम पटल की उत्कृष्ट आयु 90, 000 वर्ष है। द्वितीय पटल में यह आयु जघन्य हो जाती है तथा उत्कृष्ट आयु नब्बे लाख वर्ष हो जाती है। ऐसे ही आगे-आगे के पटलों में जघन्य आयु का प्रमाण पूर्व-पूर्व के पटलों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है। ऐसे ही प्रथम नरक की उत्कृष्ट आयु दूसरे नरक की जघन्य आयु मानी गई है। जैसे-प्रथम नरक की उत्कृष्ट आयु 1 सागर है वही दूसरे नरक में जघन्य आयु है। विशेष-

नरकों में	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
प्रथम नरक में	10000 वर्ष	1 सागरोपम
द्वितीय नरक में	1 सागर	3 सागर
तृतीय नरक में	3 सागर	7 सागर
चतुर्थ नरक में	7 सागर	10 सागर
पाँचवें नरक में	10 सागर	17 सागर
छठे नरक में	17 सागर	22 सागर
सातवें नरक में	22 सागर	33 सागर

इस प्रकार से आयु प्रमाण काल तक उन नरकों में नारकियों को क्षणमात्र के लिये भी सुख नहीं है, प्रतिक्षण दारुण दुःखों का ही अनुभव होता रहता है। इन नारकियों के शरीर आयु के अंत में वायु से ताड़ित मेघों के समान निःशेष विलीन हो जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार से पूर्व में किये गये दोषों से जीव नरकों में जिन नाना प्रकार के दुःख को प्राप्त करते हैं, उन दुःखों के स्वरूप का सम्पूर्णतया वर्णन करने के लिए भला कौन समर्थ

है? यहाँ पर जो जीव पापों में प्रवृत्त होकर आनंद मानते हैं वे ही जीव चिरकाल तक ऐसे नरकवास में निवास करते हैं।

नरक में नारकियों के जन्म लेने के अंतर का वर्णन

इन नरकों में यदि कोई भी नारकी कुछ समय तक जन्म न लेवे तथा वहाँ नारकियों के उत्पन्न होने में व्यवधान पड़ जावे उसका नाम अंतर है। वह अंतर प्रथम नरक में अधिक से अधिक 24 मुहूर्त का है। ऐसे ही सभी का अंतर दिखाते हैं–

प्रथम नरक में	–	24 मुहूर्त
द्वितीय नरक में	–	7 दिन
तृतीय नरक में	–	15 दिन
चतुर्थ नरक में	–	1 मास
पाँचवें नरक में	–	2 मास
छठे नरक में	–	4 मास
सातवें नरक में	–	6 मास

कौन-कौन से जीव किन-किन नरकों में जाने की योग्यता रखते हैं

कर्मभूमि के मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव ही इन नरकों में उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु नारकी, देव, भोग-भूमियाँ, विकलत्रय और एकेन्द्रिय जीव नरकों में नहीं जा सकते हैं। इन नरकों से निकले हुए जीव भी वापस नरक में उसी भव से नहीं जा सकते हैं। न देव हो सकते हैं एवं विकलत्रय, एकेन्द्रिय और भोग भूमियाँ भी नहीं हो सकते हैं। मतलब यही है कि नरक से निकलकर नारकी जीव कर्म भूमियाँ मनुष्य और तिर्यंच ही होते हैं। इनमें भी गर्भज, संज्ञी एवं पर्याप्त ही होते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव मात्र घम्मा पृथ्वी में जाने की योग्यता रखते हैं। सरीसृप प्रथम और द्वितीय नरक में जाने की योग्यता रखते हैं। पक्षी तृतीय पृथ्वी तक, भुजंग आदि चतुर्थ पृथ्वी तक, सिंह पांचवीं तक,

स्त्रियाँ छठी तक एवं मत्स्य और मनुष्य सातवीं पृथ्वी तक जाने की योग्यता रखते हैं।

नरक से निकलकर नारकी किन-किन पर्यायों को प्राप्त कर सकते हैं

नरक से निकलकर कोई भी जीव अनंतर भव में चक्रवर्ती, बलभद्र नारायण और प्रतिनारायण नहीं हो सकता है, यह बात निश्चित है।

प्रथम तीन पृथ्वियों से निकले हुए कोई जीव तीर्थंकर हो सकते हैं।

चौथी पृथ्वी तक के नारकी वहां से निकलकर चरम शरीरी होकर उसी भव से मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। पाँचवी पृथ्वी तक के जीव संयमी मुनी हो सकते हैं। छठी पृथ्वी तक के नारकी जीव देशव्रती हो सकते हैं। सातवीं पृथ्वी से निकल कर जीव कदाचित् सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते हैं परन्तु ये सातवीं पृथ्वी से निकले हुए नारकी नियम से पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, संज्ञी तिर्यंच ही होते हैं, मनुष्य नहीं हो सकते हैं – यह नियम है।

इस प्रकार अति संक्षेप से नरक लोक का वर्णन किया गया है जो कि भव्य जीवों को नरक के दुःखों से भय उत्पन्न कराने के लिए एवं सुख के साधन धर्म में आदर कराने के लिए है। विशेष वर्णन अन्यत्र देखना चाहिए।

नारकी जीवों का वर्णन

पृथ्वी	मोटाई	बिल संख्या	उत्कृष्ट इंद्रक	उत्कृष्ट नरकायु	उत्सेध	अवधि क्षेत्र	उत्पद्यमान जीव	उत्पत्ति मरण अंतर	अग्रिम भव में	उछलन
1. रत्नप्रभा	1800000 यो.	3000000	13	1 सा.	31-1/2 हाथ	1 योजन	असंज्ञी	24 मुहूर्त	तीर्थंकर	7-13/16 यो.
2. शर्कराप्रभा	32000 यो.	2500000	11	3 सा.	62-1/2 हाथ	3-1/2 कोश	सरीसृप	7 दिन	तीर्थंकर	15-10/16 यो.
3. बालुकाप्रभा	28000 यो.	1500000	9	7 सा.	125 हाथ	3 कोश	पक्षी	15 दिन	तीर्थंकर	31-4/16 यो.
4. पंकप्रभा	24000 यो.	1000000	7	10 सा.	250 हाथ	2-1/2 कोश	सर्पादि	1 मास	चरमशरीरी	62-8/16 यो.
5. धूमप्रभा	20000 यो.	300000	5	17 सा.	125 धनुष	2 कोश	सिंह	2 मास	संयत	125 यो.
6. तमःप्रभा	16000 यो.	99995	3	22 सा.	250 धनुष	1-1/2 कोश	स्त्री	4 मास	देशव्रती	250 यो.
7. महातमःप्रभा	8000 यो.	5	1	33 सा.	500 धनुष	1 कोश	मत्स्य	6 मास	सम्यक्त्व धर	500 यो.

भवनवासी देव

भवनवासीदेवों का स्थान

पहले रत्नप्रभा पृथ्वी के 3 भाग बताये जा चुके हैं। उसमें खरभाग और पंकभाग में उत्कृष्ट रत्नों से शोभायमान भवनवासी और व्यंतरवासियों के भवन हैं। इन दोनों भागों में से खरभाग की मोटाई 16 हजार योजन एवं पंकभाग 84 हजार योजन प्रमाण है। 16000+84000=100000 योजन

भवनवासी देवों के भेद

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार, ये 10 भेद हैं।

व्यन्तरवासी देवों के भेद

किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये 8 भेद हैं।

चित्रा भूमि से नीचे 1 हजार योजन जाकर राक्षस जाति के व्यन्तर देवों को छोड़कर बाकी 7 प्रकार के व्यंतर देवों के आवास स्थान हैं। चित्रा पृथ्वी से 2 हजार योजन नीचे जाकर असुरकुमार जाति के भवनवासी देवों को छोड़कर शेष 9 प्रकार के भवनवासी देवों के आवास स्थान हैं, जो कि अल्प ऋद्धिधारियों के हैं। 42 हजार योजन नीचे जाकर महाऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के स्थान एवं 1 लाख योजन जाकर मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासियों के भवन हैं।

रत्नप्रभा के पंकभाग नाम के द्वितीय भाग में असुरकुमार जाति के भवनवासी एवं राक्षस जाति के व्यंतरों के आवास स्थान हैं।

भवनवासी देवों के चिन्हों का वर्णन

भवनवासी देवों के मुकुटों में क्रम से चूड़ामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, आदि 10 प्रकार के चिन्ह माने गये हैं। यथा–

असुरकुमार के मुकुट में	–	चूड़ामणि
नागकुमार के मुकुट में	–	सर्प

सुपर्णकुमार के मुकुट में	–	गरुड़
द्वीपकुमार के मुकुट में	–	हाथी
उदधिकुमार के मुकुट में	–	मगर
स्तनितकुमार के मुकुट में	–	वर्द्धमान
विद्युत्कुमार के मुकुट में	–	वज्र
दिक्कुमार के मुकुट में	–	सिंह
अग्नि कुमार के मुकुट में	–	कलश
वायुकुमार के मुकुट में	–	घोड़ा

भवनवासी देवों के भवनों का प्रमाण

असुरकुमार के	–	64 लाख
नागकुमार के	–	84 लाख
सुपर्णकुमार के	–	72 लाख
द्वीपकुमार के	–	76 लाख
उदधिकुमार के	–	76 लाख
स्तनितकुमार के	–	76 लाख
विद्युत्कुमार के	–	76 लाख
दिक्कुमार के	–	76 लाख
अग्नि कुमार के	–	76 लाख
वायुकुमार के	–	96 लाख
कुल जोड़		7,72, 00000

कुल जोड़ मिलाकर भवनवासी देवों के भवनों का प्रमाण 7 करोड़ 72 लाख होता है। इन एक-एक भवनों में 1-1 जिन मंदिर होने से भवनवासी देवों के 7 करोड़ 72 लाख प्रमाण जिन मंदिर हैं। उनमें स्थित जिन प्रतिमाओं को मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

भवनवासी देवों के इंद्रों का वर्णन

भवनवासी देवों के 10 कुलों में पृथक्-पृथक् दो-दो इंद्र होते हैं। ये सब मिलाकर 20 इंद्र होते हैं। जो अपनी-अपनी विभूति से शोभायमान हैं।

असुरकुमार में	–	चमर इंद्र, वैरोचन इंद्र।
नागकुमार में	–	भूतानंद, धरणानंद।
सुपर्णकुमार में	–	वेणु, वेणुधारी।
द्वीपकुमार में	–	पूर्ण, वशिष्ठ।
उदधिकुमार में	–	जलप्रभ, जलकांत।
स्तनितकुमार में	–	घोष, महाघोष।
विद्युत्कुमार में	–	हरिषेण, हरिकांत।
दिक्कुमार में	–	अमितगति, अमितवाहन।
अग्नि कुमार में	–	अग्निशिखी, अग्निवाहन।
वायुकुमार में	–	वेलंब, प्रभंजन।

इनमें से प्रत्येकों के प्रथम 10 इंद्र दक्षिण इंद्र कहलाते हैं एवं आगे-आगे के 10 इंद्र उत्तर इंद्र कहलाते हैं। ये सब इंद्र अणिमा-महिमा आदि ऋद्धियों से युक्त और मणिमय भूषणों से अलंकृत होते हैं।

इंद्रों के भवनों की संख्या

दक्षिण इंद्रों के भवनों की		**संख्या**
चमर इंद्रों के भवनों की	–	34 लाख
भूतानंद इंद्रों के भवनों की	–	34 लाख
वेणु इंद्रों के भवनों की	–	38 लाख
पूर्ण इंद्रों के भवनों की	–	40 लाख
जलप्रभ इंद्रों के भवनों की	–	40 लाख
घोष इंद्रों के भवनों की	–	40 लाख
हरिषेण इंद्रों के भवनों की	–	40 लाख
अमितगति इंद्रों के भवनों की	–	40 लाख
अग्निशिखी इंद्रों के भवनों की	–	40 लाख
वेलंब इंद्रों के भवनों की	–	50 लाख

इन दक्षिण इंद्रों के भवनों का प्रमाण 4 करोड़ 6 लाख है।

आगे उत्तर इंद्रों का प्रमाण

उत्तर इंद्र		भवन की संख्या
वैरोचन	–	30 लाख
धरणानंद	–	40 लाख
वेणुधारी	–	34 लाख
वशिष्ठ	–	36 लाख
जलकांत	–	36 लाख
महाघोष	–	36 लाख
हरिकांत	–	36 लाख
अमितवाहन	–	36 लाख
अग्निवाहन	–	36 लाख
प्रभंजन	–	46 लाख

इन उत्तर इंद्रों का कुल जोड़ 3 करोड़ 66 लाख प्रमाण है। इस प्रकार से – 40600000+36600000=77200000

भवनवासियों के निवास स्थान के भेद

इन देवों के निवास स्थान के भवन, भवनपुर और आवास के भेद से 3 भेद हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी में स्थित निवास स्थानों को भवन, द्वीप-समुद्रों के ऊपर स्थित निवास स्थानों को भवनपुर और रमणीय तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिक के ऊपर स्थित निवास स्थानों को आवास कहते हैं।

नागकुमार आदि देवों में से किन्हीं के तो भवन, भवनपुर और आवास रूप तीनों ही तरह के निवास स्थान होते हैं परन्तु असुरकुमारों के केवल एक भवनरूप ही निवास स्थान होते हैं।

इनमें अल्पऋद्धि, महाऋद्धि और मध्यमऋद्धि के धारक भवनवासियों के भवन क्रमशः चित्रा पृथ्वी के नीचे-नीचे दो हजार, ब्यालीस हजार और एक लाख योजन पर्यन्त जाकर हैं।

भवनों का वर्णन

ये सब भवन समचतुष्कोण तथा वज्रमय द्वारों से शोभायमान हैं। ये भवन ऊँचाई में तीन सौ योजन और विस्तार में संख्यात और असंख्यात योजन प्रमाण होते हैं। इनमें से संख्यात योजन विस्तार वाले भवनों में संख्यात भवनवासी देव एवं असंख्यात योजन विस्तार वाले भवनों में असंख्यातों देव रहते हैं। इन भवनों की ऊँचाई 300 योजन मात्र है।

जिन मंदिर का वर्णन

इनमें से प्रत्येक के मध्य में एक सौ योजन ऊँचे एक-एक कूट स्थित हैं। इन कूटों के ऊपर पद्मराग मणिमय कलशों से सुशोभित तथा चार गोपुर, तीन मणिमय प्राकार, वन ध्वजाओं एवं मालाओं से संयुक्त जिन गृह विराजते हैं। इन जिन मंदिरों के चारों तरफ चैत्य वृक्षों सहित और नाना वृक्षों से युक्त पवित्र अशोक वन, सप्तच्छद वन, चंपक वन और आम्र वन स्थित हैं। प्रत्येक भवनों के चैत्यवृक्ष का अवगाढ़-जड़ एक कोस, स्कंध की ऊँचाई 1 योजन और शाखाओं की लम्बाई चार योजन प्रमाण कही गई हैं। ये दिव्य वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों की शाखाओं से युक्त, विचित्र पुष्पों से अलंकृत और उत्कृष्ट मरकत मणिमय उत्तम पत्रों से व्याप्त होते हुए अतिशय शोभा को प्राप्त हैं एवं विविध प्रकार के अंकुरों से मंडित, अनेक प्रकार के फलों से युक्त, नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित, छत्र के ऊपर से संयुक्त, घंटा, ध्वजा आदि से रमणीय, आदि-अंत से रहित ये चैत्यवृक्ष पृथ्वीकायिक स्वरूप हैं। इन चैत्यवृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में पद्मासन से स्थित और देवों से पूजनीय पाँच-पाँच जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। ये प्रतिमायें चार तोरणों से रमणीय, आठ महामंगल द्रव्यों से सुशोभित और उत्तमोत्तम रत्नों से निर्मित अतिशय शोभायमान होती हैं। इन जिनालयों में चार-चार गोपुरों से संयुक्त तीन कोट, प्रत्येक वीथी में एक-एक मानस्तंभ व वन, स्तूप तथा कोटों के अंतराल में क्रम से वनभूमि, ध्वजभूमि और चैत्यभूमि ऐसी तीन भूमियाँ हैं। उन जिनालयों में चारों वनों के मध्य में स्थित तीन मेखलाओं से युक्त नंदादिक वापिकायें, तीनों पीठों से युक्त धर्म विभव

तथा चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं। ध्वज भूमि से सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चंद्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन चिन्ह से अंकित प्रत्येक चिन्हों वाली 108 महाध्वजायें और एक-एक महाध्वजा के आश्रित 108 क्षुद्र ध्वजायें होती हैं। ये जिनालय वंदन मंडप, अभिषेक मंडप, नर्तन मंडप, संगीत मंडप और प्रेक्षणमंडप, क्रीड़ागृह, गुणनगृह (स्वाध्याय शाला) एवं विशाल चित्रशालाओं से युक्त हैं। इन मंदिरों में देवच्छंद के भीतर श्री देवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ एवं आठ मंगल द्रव्य होते हैं। झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चामर, छत्र, व्यजन और सुप्रतिष्ठ इन आठ मंगल द्रव्यों में से वहाँ प्रत्येक 108 होते हैं। इन भवनों में चमकते हुए रत्नदीपक, 5 वर्ण के रत्नों से निर्मित चौक, गोशीर्ष, मलयचंदन, कालागरू और धूप की गंध तथा भंभा, मृदंग, मर्दल, जयघंटा, कांस्यताल, तिवली, दुंदुभि एवं पटह आदि के शब्द नित्य गुंजायमान होते हैं। हाथ में चंवर लिए हुए नागकुमार देवों से युक्त उत्तम-उत्तम रत्नों से निर्मित, देवों द्वारा वंद्य ऐसी उत्तम प्रतिमायें सिंहासन पर विराजमान हैं। प्रत्येक जिन भवनों में ये जिन प्रतिमायें 108-108 प्रमाण हैं। ये अनादि निधन जिन भवन भवनवासी देवों के भवनों की संख्या के प्रमाण सात करोड़ बहत्तर लाख हैं।

जो देव सम्यग्दर्शन से युक्त हैं वे कर्म क्षय के निमित्त नित्य ही जिन भगवान की भक्ति से पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि देवों से संबोधित किये गये अन्य मिथ्यादृष्टि देव भी कुल देवता मानकर उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की नित्य ही बहुत प्रकार से पूजा करते रहते हैं।

देवों के भवनों का वर्णन

कूटों के चारों तरफ नाना प्रकार की रचनाओं से युक्त, उत्तम सुवर्ण और रत्नों से निर्मित भवनवासी देवों के महल हैं। ये महल सात, आठ, नौ, दस इत्यादि अनेक भूमियों (तलों) से सहित, लटकती हुई रत्नमालाओं से भूषित, चमकते हुए मणिमय दीपकों से सुशोभित, जन्मशाला, अभिषेकशाला, भूषणशाला, मैथुनशाला, परिचर्यागृह और मंत्रशाला से रमणीय, मणिमय तोरणों से सुंदर द्वारों वाले सामान्यगृह, कदलीगृह, गर्भगृह, चित्रगृह, आसनगृह, नादगृह और लतागृह इत्यादि गृह विशेषों से सहित, सुवर्णमय प्रकार से

संयुक्त, विशाल छज्जों से शोभित, फहराती हुई ध्वजाओं से सहित, पुष्करिणी, वापी, कूप से सहित क्रीडन युक्त मत्तवारणों से संयुक्त मनोहर गवाक्ष और कपाटों से शोभित, नाना प्रकार की पुत्तलिकाओं से सहित एवं अनादि निधन हैं।

उन भवनों के चारों पार्श्वभागों में चित्र-विचित्र आसन एवं उत्तम रत्नों से निर्मित दिव्य शय्यायें स्थित हैं।

परिवार देवों का वर्णन

प्रत्येक इन्द्र के परिवार देव दस प्रकार के हैं– प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक, लोकपाल, तनुरक्षक (आत्मरक्षक), तीन पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक।

इनमें से इन्द्र राजा के सदृश, प्रतीन्द्र युवराज के सदृश, त्रायस्त्रिंश देव पुत्र के सदृश, सामानिक देव पत्नी के तुल्य, चारों लोकपाल तंत्रपालों के सदृश और सभी तनुरक्षक देव राजा के अंगरक्षक के समान हैं।

राजा की बाह्य, मध्य और अभ्यंतर समिति के समान देवों में भी तीन प्रकार की परिषद होती हैं। इन तीनों परिषदों में बैठने वाले देव क्रमशः बाह्य पारिषद, मध्यमपारिषद और आभ्यंतर पारिषद कहलाते हैं।

अनीक देव सेना के तुल्य, प्रकीर्णक देव प्रजा के सदृश, आभियोग्य जाति के देव दास के सदृश और किल्विषक देव चांडाल के समान होते हैं।

इनमें प्रतीन्द्र इंद्र के बराबर 20 होते हैं। प्रत्येक इंद्रों के त्रायस्त्रिंश देव 33 ही होते हैं।

चमर आदि इंद्रों के सामानिक देवों का प्रमाण 10 लाख 30 हजार है।

चमरइन्द्र के सामानिक	–	64000
वैरोचन के सामानिक	–	60000
भूतानंद के सामानिक	–	56000

शेष 17 इंद्र के पचास-पचास हजार हैं।

64000+60000+56000+(50000×17)=1030000 हुए।

प्रत्येक इन्द्र के पूर्व आदि दिशाओं के रक्षक क्रम से सोम, यम, वरुण और कुबेर नामक चार-चार लोकपाल होते हैं।

चमरेन्द्र के आत्मरक्षक देव 2 लाख छप्पन हजार, वैरोचन के 2 लाख 40 हजार, भूतानंद के 2 लाख 24 हजार एवं धरणानंद आदि शेष 17 इंद्रों के दो-दो लाख प्रमाण हैं।

256000+240000+224000+(200000×17)=4120000 हुए।

पारिषद देव

चमर इन्द्र के अभ्यन्तर पारिषद – 28000
वैरोचन के अभ्यन्तर पारिषद – 26000
भूतानंद के अभ्यन्तर पारिषद – 6000
शेष 17 के चार-चार हजार हैं। 17×4000=68000
28000+26000+6000+68000=128000

चमर इन्द्र के मध्यम पारिषद – 30000
वैरोचन के मध्यम पारिषद – 28000
भूतानंद के मध्यम पारिषद – 8000
शेष 17 के आठ-आठ हजार (6000×17)
30000+28000+8000+(6000×17)=168000

चमर इन्द्र के बाह्य पारिषद – 32000
वैरोचन इन्द्र के बाह्य पारिषद – 30000
भूतानंद इन्द्र के बाह्य पारिषद – 10000
शेष 17 के छः-छः हजार (8000×17)=136000
32000+30000+10000+136000=208000

बीसों इन्द्रों के अभ्यन्तर पारिषद – 128000
बीसों इन्द्रों के मध्यम पारिषद – 168000
बीसों इन्द्रों के बाह्य पारिषद – 208000

अभ्यन्तर परिषद् का नाम 'जतु', मध्यम परिषद् का नाम 'चंद्रा' एवं बाह्य परिषद् का नाम 'समिता' है।

प्रत्येक इंद्रों के 7-7 अनीक होती हैं। इन सात अनीकों में से प्रत्येक अनीक सात-सात कक्षाओं से युक्त होती हैं। उनमें से प्रथम कक्षा का प्रमाण

अपने-अपने सामानिक देवों के बराबर तथा इसके आगे अंतिम कक्षा तक उत्तरोत्तर प्रथम कक्षा से दूना-दूना प्रमाण होता गया है।

असुरकुमारों में महिष, घोड़ा, हाथी, रथ, पादचारी, गंधर्व और नर्तकी ये सात अनीक होती हैं। इनमें से आदि के 6 अनीकों में 6 प्रधान देव एवं अंतिम अनीक में प्रधान देवी होती है।

नागकुमारों में प्रथम अनीक नाग है बाकी 6 अनीक घोड़ा आदि उपर्युक्त ही हैं तथैव आगे भी सुपर्णकुमारों में गरुड़, द्वीपकुमारों में गजेन्द्र, उदधि कुमारों में मगर, स्तनितकुमारो में ऊँट, विद्युत्कुमारों में गेंडा, दिक्कुमारों में सिंह, अग्निकुमारों में शिविका और वायुकुमारों में अश्व ये प्रथम अनीक हैं। बाकी 6 अनीक वे ही घोड़ा आदि ही हैं।

चमरेन्द्र के इक्यासी लाख अट्ठाईस हजार महिष सेना तथा पृथक्-पृथक् तुरंग आदि भी इतने ही होते हैं।

8128000×7=56896000।

वैरोचन के 7620000 महिष सेना है शेष इतने ही हैं 7620000×7=53340000।

भूतानंद के 7112000 नाग और पृथक्-पृथक् घोड़ा आदि भी इतने ही हैं। 7112000×7=49784000।

शेष 17 इंद्रों में से प्रत्येक प्रथम अनीक का प्रमाण 6350000 है एवं 7 अनीकों का प्रमाण 44450000 है।

सम्पूर्ण 20 इंद्रों में जितने भी प्रकीर्णक आदि देव हैं काल के वश से उनके प्रमाण का उपदेश उपलब्ध नहीं है।

इन्द्रों की देवियों की संख्या

चमरेन्द्र के कृष्णा, रत्ना, सुमेघा, सुका और सुकाता ये पाँच अग्रमहिषी-महादेवियाँ हैं। इन महादेवियों में प्रत्येक के 8000 परिवार देवियाँ है। इस प्रकार से परिवार देवियाँ 40000 प्रमाण हैं। 8000×5=40000।

ये पाँचों महादेवियाँ विक्रिया से अपने आठ-आठ हजार रूप बना सकती हैं। इस इंद्र के 16000 वल्लभा देवियाँ हैं।

वल्लभा 16000+सपरिवार महादेवी 40000=56000।

द्वितीय वैरोचन इंद्र के पद्मा, पद्मश्री, कनकश्री, कनकमाला और महापद्मा ये 5 अग्रमहिषियाँ हैं। इनकी विक्रिया, परिवार देवी आदि का प्रमाण पूर्ववत् होने से इस इंद्र के भी 56000 देवियाँ हैं।

इसी प्रकार से भूतानंद और धरणानंद के पचास-पचास हजार देवांगनायें हैं।

वेणुदेव, वेणुधारी इंद्रो के 44000 हैं। शेष इंद्रों की 32-32 हजार देवांगनायें हैं।

इन इन्द्रों के पारिषद् आदि देवों की देवांगनाओं का प्रमाण तिलोयपण्णत्ति से जान लेना चाहिए। सबसे निकृष्ट देवों के 32 देवियाँ अवश्य होती हैं।

उपर्युक्त कहे गये प्रतीन्द्र, सामानिक आदि देव इंद्रों के प्रधान परिवार स्वरूप हैं। इनके अतिरिक्त अन्य और भी अप्रधान परिवाररूप देव होते हैं जो कि असंख्यात कहे गये हैं।

मानसिक आहार का वर्णन

इंद्र और प्रतीन्द्र आदि देव तथा इनकी देवियों का अति स्निग्ध, अनुपम, अमृतमय आहार होता है। चमर और वैरोचन इन दो इंद्रों के 1000 वर्ष के बाद आहार ग्रहण होता है। इसके आगे भूतानंद आदि छह इंद्रों के साढ़े बारह दिनों में आहार होता है। जलप्रभ आदि छह इंद्रों के 12 दिन में और अमितगति आदि छह इंद्रों के साढ़े सात दिन में आहार ग्रहण होता है। दस हजार वर्ष की जघन्य आयु वाले देवों का आहार दो दिन में, पल्योपम की आयु वालों के पाँच दिन में भोजन का अवसर आता है। इन देवों के मन में भोजन की इच्छा होते ही उनके कंठ से अमृत झरता है और तृप्ति हो जाती है इसी का नाम मानसिक आहार है।

देवों के उच्छ्वास का वर्णन

चमर और वैरोचन इंद्र 15 दिन में उच्छ्वास लेते हैं। भूतानंद आदि 6 इंद्र 12-1/2 मुहूर्त में, जलप्रभ आदि 6 इंद्र 6-1/2 मुहूर्त में उच्छ्वास लेते हैं।

जो देव 10 हजार वर्ष की आयु वाले हैं। उनके 7 श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल के बाद एवं पल्योपम प्रमाण आयु धारक देवों के पाँच मुहूर्त के बाद श्वासोच्छ्वास होता है।

देवों के शरीर के वर्ण

असुरकुमार के शरीर का वर्ण काला, नागकुमार के शरीर का वर्ण अधिक काला, गरुड़ और द्वीपकुमार का काला, उदधिकुमार और स्तनितकुमार का अधिक काला, विद्युत्कुमार का बिजली के सदृश, दिक्कुमार का काला वर्ण, अग्निकुमार का अग्नि की कांति के सदृश एवं वायुकुमार देव का नील कमल के सदृश वर्ण है।

इंद्रों का वैभव

ये इंद्र लोग भक्ति से पंचकल्याणकों के निमित्त ढाई द्वीप में एवं जिनेंद्र भगवान की पूजन के निमित्त नंदीश्वर द्वीप आदि पवित्र स्थानों में जाते हैं शीलादि से संयुक्त किन्हीं मुनिवर आदि की पूजन या परीक्षा के निमित्त एवं क्रीड़ा के लिए यथेच्छ स्थान पर आते-जाते हैं।

ये असुरकुमार आदि देव स्वयं अन्य किसी की सहायता से रहित ईशान स्वर्ग तक जा सकते हैं तथा अन्य देवों की सहायता से अच्युत स्वर्ग तक भी जाते हैं। इन देवों के शरीर निर्मल कांति के धारक सुगंधित उच्छ्वास से सहित, अनुपम रूप वाले तथा समचतुरस्र संस्थान से युक्त हैं। देवों के समान इनकी देवियाँ भी वैसे ही गुणों से युक्त होती हैं।

इन देव-देवियों के रोग, वृद्धावस्था आदि नहीं हैं, अनुपम बल-वीर्य है। इनका अकाल मरण भी नहीं होता है। इनके शरीर में मल-मूत्र हड्डी, माँस, मेदा, खून, मज्जा, वसा, शुक्र आदि धातुएँ नहीं हैं। ये देवगण काय प्रवीचार से युक्त हैं अर्थात् वेद की उदीरणा होने पर मनुष्यों के समान काम सुख का अनुभव करते हैं येइंद्र प्रतीन्द्र विविध प्रकार की छत्रादि विभूतियों को धारण करते हैं।

प्रतीन्द्र आदि देवों के सिंहासन, छत्र, चमर अपने-अपने इंद्रों की अपेक्षा छोटे रहते हैं। सामानिक और त्रायस्त्रिंश नामक देवों में विक्रिया, परिवार, ऋद्धि और आयु अपने-अपने इंद्रों के समान हैं। इंद्र उन सामानिक देवों की अपेक्षा केवल आज्ञा, छत्र, सिंहासन और चामरों से अधिक वैभव युक्त होते हैं।

इन असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों में **ओलग शालाओं** के आगे विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित चैत्यवृक्ष होते हैं। पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदंब, प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम ये 10 चैत्यवृक्ष क्रम से उन असुरादिक कुलों के चिन्ह रूप हैं।

प्रत्येक चैत्यवृक्ष के मूलभाग के चारों ओर **पल्यंकासन** से स्थित परम रमणीय पाँच-पाँच जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। उन सभी प्रतिमाओं के आगे रत्नमय 20 मानस्तंभ हैं। एक-एक मानस्तंभ के ऊपर चारों दिशाओं में सिंहासन की शोभा से युक्त 28 जिन प्रतिमाएँ हैं। इन प्रतिमाओं के निकट छत्र, चामर आदि विभूतियाँ शोभायमान होती हैं।

चमरइंद्र सौधर्म इंद्र से ईर्ष्या करता है। वैरोचन ईशान से, वेणु भूतानंद से और वेणुधारी धरणानंद से ईर्ष्या करते हैं। नाना प्रकार की विभूतियों को देखकर मात्सर्य से या स्वभाव से ही जलते रहते हैं।

देवों की आयु का वर्णन

चमर, वैरोचन की आयु – 1 सागरोपम
भूतानंद, धरणानंद की आयु – 3 पल्योपम
वेणु, वेणुधारी की आयु – 2-1/2 पल्योपम
पूर्ण, वसिष्ठ की आयु – 2 पल्योपम
जलप्रभ आदि शेष 12 इंद्रों की आयु – 1 पल्योपम

देवियों की आयु

चमरइंद्र की देवियों की आयु – 2-1/2 पल्योपम
वैरोचन की देवियों की आयु – 3 पल्योपम
भूतानंद की देवियों की आयु – 1/8 पल्योपम
धरणानंद की देवियों की आयु – कुछ अधिक 1/8 पल्योपम
वेणु की देवियों की आयु – 3 पूर्व कोटि
वेणुधारी देवियों की आयु – कुछ अधिक 3 पूर्वकोटि

अवशिष्ट दक्षिण इंद्रों में से प्रत्येक इंद्र की देवियों की आयु 3 करोड़ वर्ष और उत्तर इंद्रों में से प्रत्येक इंद्र की देवियों की आयु कुछ अधिक 3 करोड़ वर्ष है। असुर आदि 10 प्रकार के देवों में निकृष्ट देवों की जघन्य आयु का प्रमाण 10 हजार वर्ष मात्र है।

देवों के शरीर की अवगाहना

असुरकुमारों के शरीर की ऊँचाई – 25 धनुष

भवनवासी देव

क्र.सं.	नाम	मुकुट चिन्ह	भवन	इंद्र	उत्कृष्ट आयु	उत्सेध	उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र	उत्कृष्ट अवधि काल
1.	असुर कुमार	चूड़ामणि	64 लाख	2	1 सागर	25 धनुष	असं. कोटि योजन	असंख्यात वर्ष
2.	नागकुमार	सर्प	84 लाख	2	3 पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
3.	सुपर्णकुमार	गरुड़	72 लाख	2	ढ़ाई पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
4.	द्वीप कुमार	हाथी	76 लाख	2	2 पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
5.	उदधि कुमार	मगर	76 लाख	2	डेढ़ पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
6.	स्तनित कुमार	स्वस्तिक	76 लाख	2	डेढ़ पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
7.	विद्युत्कुमार	वज्र	76 लाख	2	डेढ़ पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
8.	दिक्कुमार	सिंह	76 लाख	2	डेढ़ पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
9.	अग्नि कुमार	कलश	76 लाख	2	डेढ़ पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन
10.	वायु कुमार	तुरग (घोड़ा)	96 लाख	2	डेढ़ पल्य	10 धनुष	असं. हजार यो.	असुरों से सं. गुणाहीन

शेष देवों के शरीर की ऊँचाई – 10 धनुष

यह ऊँचाई का प्रमाण मूल शरीर का है। विक्रिया से निर्मित शरीरों की ऊँचाई अनेक प्रकार की है।

देवों का अवधिज्ञान एवं विक्रिया

अपने-अपने भवन में स्थित भवनवासी देवों का अवधिज्ञान ऊर्ध्व दिशा में उत्कृष्टरूप से मेरु पर्वत के शिखर पर्वत को स्पर्श करता है एवं अपने-अपने भवनों के नीचे-नीचे, थोड़े-थोड़े क्षेत्र में प्रवृत्ति करता है। वही अवधिज्ञान तिरछे क्षेत्र की अपेक्षा अधिक क्षेत्र को जानता है। ये असुरकुमार आदि 10 प्रकार के भवनवासी देव अनेक रूपों की विक्रिया करते हुए अपने-अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र को पूरित करते हैं।

भवनवासी देवों में जन्म लेने का कारण

जो मनुष्य शंकादि दोषों से युक्त हैं, क्लेशभाव और मिथ्यात्व भाव से युक्त चारित्र को धारण करते हैं, कलहप्रिय, अविनयी, जिनसूत्र से बहिर्भूत, तीर्थंकर और संघ की आसादना करने वाले, कुमार्गगामी एवं कुतप करने वाले तापसी आदि इन भवनवासी देवों में जन्म लेते हैं।

भवनवासी देवों में सम्यक्त्व के कारण

सम्यक्त्व सहित जीव मरकर भवनवासी देवों में उत्पन्न नहीं हो सकता है। कदाचित् जातिस्मरण, देव ऋद्धि दर्शन, जिनबिम्ब दर्शन और धर्म श्रवण के निमित्तों से ये देव सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर लेते हैं। इन भवनवासी देवों से निकल कर जीव कर्मभूमि में मनुष्यगति अथवा तिर्यंचगति को प्राप्त करते हैं किन्तु ये शलाका पुरुष नहीं हो सकते हैं।

देवों के जन्म स्थान

इन देवों के भवनों के भीतर उत्तम, कोमल उपपाद शाला है। वहाँ ये देव देवगति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं, अंतर्मुहूर्त में छहों पर्याप्तियों को पूर्ण कर 16 वर्ष के युवक के समान शरीर को प्राप्त कर लेते हैं। इन देवों के शरीर में मल, मूत्र, चर्म, हड्डी, माँस आदि नहीं हैं, ऐसा दिव्य वैक्रियक शरीर होता है। इसीलिए इन देवों के रोग आदि उत्पन्न नहीं होते हैं।

देव भवनों में जन्म लेते ही अनुद्घाटित – बन्द दोनों ही किवाड़ खुल जाते हैं, आनंद भेरी का शब्द होने लगता है। इस भेरी के शब्द को सुनकर परिवार के देव देवियाँ हर्ष से जय-जयकार करते हुए आते हैं। जय, घंटा, पटह आदि वाद्य, संगीत, नाट्य आदि से चतुर मागधदेव मंगलगीत गाते हैं। इस दृश्य को देखकर नवजात देव आश्चर्यचकित हो सोचता है कि तत्क्षण उसे अवधिज्ञान नेत्र प्रकट हो जाता है। इस अवधि का नाम विभंगावधि है। जब सम्यक्त्व प्रगट हो जाता है तब ये अवधि सुअवधि कहलाती है।

ये देवगण पूर्व के पुण्य का चिंतवन करते हुए यह भी सोचते हैं कि मैंने सम्यक्त्व शून्य धर्म धारण करके यह निम्न देव योनि पाई है इसके पश्चात् वे देव अभिषेक योग्य द्रव्यों को लेकर जिन भवनों में स्थित जिन प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।

यहाँ सम्यग्दृष्टी देव "समस्त कर्मों के क्षय में एक अद्वितीय कारण जिनपूजा है" ऐसा समझ कर बड़ी भाव-भक्ति से पूजा करते हैं एवं मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों की प्रेरणा से इन्हें कुलदेवता मानकर पूजा करते हैं। पश्चात् अपने-अपने भवन में आकर ये देव सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। ये देवगण दिव्य रूप लावण्य से युक्त, अनेक प्रकार की विक्रियाओं से सहित स्वभाव से ही प्रसन्न मुखवाली देवियों के साथ क्रीड़ा करते हैं।

ये देव स्पर्श, रस, रूप और सुंदर शब्द से प्राप्त हुए सुखों का अनुभव करते हुए क्षणमात्र भी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते हैं। द्वीप, कुलाचल, भोगभूमि, नंदनवन आदि उत्तम-उत्तम स्थानों में क्रीड़ा किया करते हैं। यदि ये देव सम्यक्त्व से सहित मरण करते हैं तो उत्तम मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर लेते हैं। यदि मिथ्यात्व के प्रभाव से जीवन भर विषय भोगों में आनंद मानते हुए मरण के 6 महिना पहले अपने मरण काल को जान लेते हैं तो विलाप करते हुए संक्लेश परिणाम से मरणकर एकेन्द्रिय पर्याय में पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक जीव हो जाते हैं। उस एकेन्द्रिय पर्याय से निकल कर पुनः त्रस पर्याय पाना अत्यंत ही कठिन है। इस विषयासक्ति का यह दुष्परिणाम है कि इन देवों को भी एकेन्द्रिय पर्याय में गिरा देता है। ऐसा समझकर मिथ्यात्व को छोड़ देना चाहिए।

भावन

इंद्र नाम	भवन	प्रतीन्द्र	सामानिक	त्रायस्त्रिंश	पारिषद अभ्यन्तर 1
असुर कुमार चमर दक्षिणेन्द्र	34 लाख	1	64 हजार	33	28 हजार
असुर कुमार वैरोचन उत्तरेन्द्र	30 लाख	1	60 हजार	33	26 हजार
नाग कुमार भूतानन्द्र दक्षिणेन्द्र	44 लाख	1	56 हजार	33	6 हजार
नाग कुमार धरणानंद उत्तरेन्द्र	40 लाख	1	50000	33	4000
सुपर्ण कुमार वेणु दक्षिणेन्द्र	38 लाख	1	50000	33	4000
सुपर्ण कुमार वेणुधारी उत्तरेन्द्र	34 लाख	1	50000	33	4000
द्वीप कुमार पूर्ण दक्षिणेन्द्र	40 लाख	1	50000	33	4000
द्वीप कुमार वशिष्ट उत्तरेन्द्र	36 लाख	1	50000	33	4000
उदधि कुमार जलप्रभ दक्षिणेन्द्र	40 लाख	1	50000	33	4000
उदधि कुमार जलकान्त उत्तरेन्द्र	36 लाख	1	50000	33	4000
स्तनित कुमार घोष दक्षिणेन्द्र	40 लाख	1	50000	33	4000
स्तनित कुमार महाघोष उत्तरेन्द्र	36 लाख	1	50000	33	4000
विद्युत् कुमार हरिषेण दक्षिणेन्द्र	40 लाख	1	50000	33	4000
विद्युत् कुमार हरिकांत उत्तरेन्द्र	36 लाख	1	50000	33	4000
दिक् कुमार अमितगति दक्षिणेंद्र	40 लाख	1	50000	33	4000
दिक् कुमार अमितवाहन उत्तरेंद्र	36 लाख	1	50000	33	4000
अग्नि कुमार अग्निशिखी दक्षिणेंद्र	40 लाख	1	50000	33	4000
अग्नि कुमार अग्नि वाहन उत्तरेंद्र	36 लाख	1	50000	33	4000
वायु कुमार वेलम्ब दक्षिणेंद्र	50 लाख	1	50000	33	4000
वायु कुमार प्रभंजन उत्तरेन्द्र	46 लाख	1	50000	33	4000

इन्द्र

पारिषद मध्य	पारिषद बाह्य	सात अनीक	तनुरक्ष	लोक पाल	शेष प्रकीर्णक आदि 3	देवियाँ
					संख्या के	
30 हजार	32 हजार	56896000	256000	4	उपदेश	
					का अभाव	56000
28 हजार	30 हजार	53340000	240000	4	"	"
8 हजार	10 हजार	49784000	224000	4	"	50000
6 हजार	8 हजार	44450000	200000	4	"	"
"	"	"	"	"	"	44000
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	30000
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"	"

व्यंतर देव

व्यन्तर देवों के निवासस्थान

रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में 7 प्रकार के व्यंतर देवों के निवास स्थान हैं एवं पंकप्रभा में राक्षस जाति के व्यंतरों का निवास स्थान है। इन व्यंतर देवों के भवन, भवनपुर और आवास ऐसे 3 प्रकार के भवन माने गये हैं।

इनमें से रत्नप्रभा पृथ्वी में भवन, द्वीपसमुद्रों में भवनपुर और पर्वत, सरोवर आदि के ऊपर आवास होते हैं। उत्कृष्ट भवनों में से प्रत्येक का विस्तार 12000 योजन और मोटाई 300 योजन प्रमाण है। जघन्य भवनों में से प्रत्येक के विस्तार का प्रमाण 25 योजन और मोटाई 3/4 योजन है।

इन भवनों के बिल्कुल मध्य भाग में वेदी, 4 वन और तोरण द्वारों से रमणीय एवं अपने भवनों की मोटाई के तीसरे भाग प्रमाण कूट होते हैं। इन कूटों के उपरिम भाग पर विविध प्रकार की रचना से संयुक्त सुवर्ण-चाँदी और रत्नमयी जिनेन्द्र प्रासाद हैं। ये प्रत्येक जिनेन्द्र भवन, झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चंवर, वींजना, छत्र और ठोना इन एक सौ आठ एक सौ आठ मंगल द्रव्यों से सहित हैं। इन भवनों में सिंहासन आदि प्रातिहार्यों से सहित और हाथ में चामरों को लिए हुए नागयक्ष देव युगलों से संयुक्त अकृत्रिम जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। एवं वहाँ पर नित्य ही दुंदुभि, मृदंग, मर्दल, जयघण्टा, भेरी, शंख, झांझ, वीणा आदि वादित्रों के सुंदर शब्द होते रहते हैं।

सम्यग्दृष्टि देव कर्म क्षय के निमित्त गाढ़ भक्ति से विविध द्रव्यों के द्वारा उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं। अन्य देवों के उपदेश वश मिथ्यादृष्टि देव भी ''ये कुल देवता हैं'' ऐसा समझ कर उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं। इन कूटों के चारों तरफ 7-8 आदि तलों से युक्त विचित्र आकृतियों से सहित व्यंतर देवों के प्रासाद हैं। ये प्रासाद लटकती हुई रत्नमालाओं से युक्त, उत्तम तोरणों से युक्त द्वारों वाले, निर्मल, विचित्र, मणिमय शयनों एवं आसनों के समूह से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार ये प्रासाद 30,000 प्रमाण हैं। इसका सम्पूर्ण वर्णन भवनवासी देवों के भवनों के समान है।

व्यंतर देवों के भवन आदिकों का विस्तार आदि

व्यंतर देवों के उत्कृष्ट भवनों का विस्तार	–	12000 योजन
व्यंतर देवों के उत्कृष्ट भवनों की मोटाई	–	300 योजन
व्यंतर देवों के उत्कृष्ट भवनपुरों का विस्तार	–	5100000 योजन

व्यंतर देवों के उत्कृष्ट भवन आवासों का विस्तार – 122000 योजन
व्यंतर देवों के जघन्य भवनों का विस्तार – 25 योजन
व्यंतर देवों के जघन्य भवनों की मोटाई – 3/4 योजन
व्यंतर देवों के जघन्य भवनपुरों का विस्तार – 1 योजन
व्यंतर देवों के जघन्य आवासों का विस्तार – 3 कोस

कूट, जिनेन्द्र भवन, देवप्रासाद, वेदिका, वन आदि रचनाएँ भवनों के सदृश ही भवनपुरों और आवासों में भी मानी गई हैं।

व्यंतर देवों के भेद

किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार से ये व्यंतर देव आठ प्रकार के होते हैं।

भूतों के चौदह हजार प्रमाण और राक्षसों के 16 हजार प्रमाण भवन हैं। शेष व्यंतरों के भवन नहीं हैं।

व्यंतर देवों के चिन्ह विशेष

किन्नर किंपुरुष आदि व्यंतर देवों संबंधी तीनों प्रकार के (भवन, भवनपुर, आवास) भवनों के सामने एक-एक चैत्य वृक्ष है। यथा-

किन्नरों के भवनों के सामने – अशोक वृक्ष
किंपुरुषों के भवनों के सामने – चंपक वृक्ष
महोरग के भवनों के सामने – नागद्रुम वृक्ष
गन्धर्व के भवनों के सामने – तुंबरू वृक्ष
यक्ष के भवनों के सामने – न्यग्रोध-वट वृक्ष
राक्षस के भवनों के सामने – कंटक वृक्ष
भूत के भवनों के सामने – तुलसी वृक्ष
पिशाच के भवनों के सामने – कदंब वृक्ष

ये सब चैत्यवृक्ष भवनवासी देवों के चैत्यवृक्षों के सदृश अनादि-निधन हैं, इनके मूल में चारों ओर चार तोरणों से शोभायमान चार-चार जिनेन्द्र प्रतिमायें विराजमान हैं। पल्यंकासन से स्थित, प्रातिहार्यों से सहित दर्शन मात्र से ही पाप समूह को दूर करने वाली ये जिनेन्द्र प्रतिमायें भव्यजीवों को मुक्ति प्रदान करने वाली हैं।

व्यंतर देवों के अंतर्गत कुलों के भेदों का वर्णन

इन किन्नर आदि व्यंतरों में दस, बारह आदि भेद पाये जाते हैं। इनमें दो-दो इंद्र और इंद्रों के दो-दो अग्रदेवियाँ मानी गई हैं। ये देवियाँ 2-2 हजार वल्लभिकाओं से युक्त होती हैं।

यथा –

किन्नरों के – 10 भेद
किंपुरुषों के – 10 भेद
महोरग के – 10 भेद
गन्धर्व के – 10 भेद
यक्ष के – 12 भेद
राक्षस के – 7 भेद
भूत के – 7 भेद
पिशाच के – 14 भेद

किन्नर के 10 भेद

किंपुरुष, किन्नर, हृदयंगम, रूपपाली, किन्नर-किन्नर, अनिंदित, मनोरम, किन्नरोत्तम, रतिप्रिय और ज्येष्ठ ये 10 प्रकार के किन्नर जाति के देव होते हैं। इनमें से किंपुरुष और किन्नर ये 2 इंद्र हैं-

किन्नर के 2 इंद्र – किंपुरुष और किन्नर।
किंपुरुष के 2 अग्रदेवियाँ – अवतंसा, केतुमती।
किन्नर के 2 अग्रदेवियाँ – रतिषेणा, रतिप्रिया।

किंपुरुष के 10 भेद-पुरुष, पुरुषोत्तम, सत्पुरुष, महापुरुष, पुरुष-प्रभ, अतिपुरुष, मरू, मरूदेव, मरूप्रभ और यशस्वान्।

किंपुरुष के 2 इंद्र – सत्पुरुष, महापुरुष।
सत्पुरुष इंद्र की 2 देवियाँ – रोहिणी, नवमी।
महापुरुष इंद्र की 2 देवियाँ – ह्री, पुष्पवती।

महोरग जाति के 10 भेद-भुजंग, भुजंगशाली, महाकाय, अतिकाय, स्कंधशाली, मनोहर, अशनिजव, महेश्वर, गम्भीर और प्रियदर्शन।

महोरगों में 2 इंद्र – महाकाय, अतिकाय।
महाकाय के 2 देवियाँ – भोगा, भोगवती।
अतिकाय के 2 देवियाँ – अनिंदिता, पुष्पगंधी।

गंधर्वजाति के देवों के 10 भेद

हाहा, हूहू, नारद, तुंबरू, वासव, कदम्ब, महास्वर, गीतरति, गीतरस और वज्रमान्।

इनमें इंद्र – गीतरति और गीतरस।
गीतरति की दो अग्रदेवियाँ – सरस्वती, स्वरसेना।
गीतरस की दो अग्रदेवियाँ – नंदिनी,प्रियदर्शना।

यक्षों के 12 भेद

मणिभद्र, पूर्णभद्र, शैलभद्र, मनोभद्र, भद्रक, सुभद्र, सर्वभद्र, मानुष, धनपाल, स्वरूपयक्ष, यक्षोत्तम और मनोहरण ये 12 भेद यक्षों के हैं।

इनमें इंद्र – मणिभद्र, पूर्णभद्र।
मणिभद्र की 2 देवियाँ – कुंदा, बहुपुत्रा।
पूर्णभद्र की 2 देवियाँ – तारा, उत्तमा।

राक्षसों के 7 भेद

भीम, महाभीम, विनायक, उदक, राक्षस, राक्षस-राक्षस और ब्रह्मराक्षस।

इनके 2 इंद्र – भीम, महाभीम।
भीम की देवियाँ – पद्मा, वसुमित्रा।
महाभीम की देवियाँ – रत्नाढ्या, कंचनप्रभा।

भूतों के 7 भेद

सुरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, प्रतिभूत, महाभूत, प्रतिच्छन्न और आकाशभूत।

इनके इंद्र – सुरूप, प्रतिरूप।
सुरूप की 2 देवियाँ – रूपवती, बहुरूपा।
प्रतिरूप की 2 देवियाँ – सुमुखी, सुसीमा।

पिशाचों के 14 भेद

कूष्मांड, यक्ष, राक्षस, संमोह, तारक, अशुचि, काल, महाकाल, शुचि, सतालक, देह, महादेह, तूष्णीक और प्रवचन।

इनमें 2 इंद्र – काल, महाकाल।
काल की 2 अग्रदेवियाँ – कमला, कमलप्रभा।
महाकाल की 2 अग्रदेवियाँ – उत्पला, सुदर्शना।

इन इंद्रों की आयु 1 पल्य एवं इनकी अग्रदेवियों की आयु अर्धपल्य है। इन अग्रदेवियों में से प्रत्येक के 1000 प्रमाण परिवार देवियाँ होती हैं। इस प्रकार से आठ प्रकार के व्यंतर देवों में प्रत्येक के 2-2 इंद्र होकर 16 इंद्र हो जाते हैं इन 16 इंद्रों में प्रत्येक 2-2 रूपवती गणिका महत्तरी होती हैं। यथा-

किन्नर { किंपुरुष की गणिका – मधुरा, मधुरालापा। / किन्नर की गणिका – सुस्वरा, मृदुभाषिणी।
किंपुरुष { सत्पुरुष – पुरुषप्रिया, पुरुषकांता। / महापुरुष – सौम्या, पुरुषदर्शिनी।
महोरग { महाकाय – भोगा, भोगवती। / अतिकाय – भुजंगा, भुजंगप्रिया।
गंधर्व { गीतरस – सुस्वरा, अनिंदिता। / गीतरति – सुघोषा, विमला।
यक्ष { मणिभद्र – भद्रा, सुभद्रा। / पूर्णभद्र – मालिनी, पद्ममालिनी।
राक्षस { भीम – शर्वरी, सर्वसेना। / महाभीम – रूद्रा, रूद्रवती।
भूत { सुरूप – भूता, भूतकांता। / प्रतिरूप – भूतदत्ता, महाभुजा।
पिशाच { काल – अंबा, कराला। / महाकाल – सुलसा, सुदर्शना।

इन इन्द्रों की ये गणिका महत्तरियाँ हैं। इन गणिकाओं की आयु अर्धपल्य प्रमाण है।

व्यंतर देवों के शरीर के वर्ण

व्यंतर देव		देह का वर्ण
किन्नर	–	प्रियंगु
किंपुरुष	–	सुवर्ण सदृश
महोरग	–	कालश्यामल
गंधर्व	–	शुद्धसुवर्ण
यक्ष	–	कालश्यामल
राक्षस	–	शुद्धश्याम
भूत	–	कालश्यामल
पिशाच	–	कज्जल के सदृश

ये सभी किन्नर आदि देव कृष्ण आदि वर्ण के होते हुए भी सुंदर, देखने में सौम्य, सुभग, विलास से संयुक्त, मणिमय भूषणों से अलंकृत और महान तेज के धारक होते हैं।

दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र

इन इंद्रों में जिनका नाम पहले उच्चारण किया गया है वे 8 दक्षिणेन्द्र हैं एवं जिनका नाम बाद में है वे 8 उत्तरेन्द्र कहलाते हैं।

इन्द्रों का वैभव

इन व्यंतर देवों के नगर अंजनक, वज्रधातुक,सुवर्ण, मनःशिलक, वज्ररजत, हिंगुलक और हरिताल द्वीप में स्थित हैं। इन्द्रों के समभाग में पाँच-पाँच नगर होते हैं। इनमें से अपने नाम से अंकित नगर मध्य में, एवं प्रभ, कांत, आवर्त और मध्य इन नामों से अंकित नगर पूर्व आदि दिशाओं में होते हैं। जैसे किन्नर, किन्नरप्रभ, किन्नरकांत, किन्नरावर्त और किन्नरमध्य ये पाँच नगर के नाम हैं। इसमें किन्नर नगर मध्य में है शेष 4 नगर पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से हैं। इन द्वीपों में दक्षिण इंद्र दक्षिण भाग में एवं उत्तर इंद्र उत्तर भाग में निवास करते हैं।

समचौकोण से स्थित इन पुरों के सुवर्णमय कोट हैं। इन नगरों के बाहर पूर्व आदि दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में अशोक, सप्तच्छद, चम्पक तथा आम्रवृक्षों के वन समूह स्थित हैं। ये वन समूह एक लाख योजन लंबे और

पचास हजार योजन विस्तृत अनेक प्रकार की विभूतियों से सुशोभित हैं। इन नगरों में सुवर्ण, चाँदी एवं रत्नों के प्रासाद हैं। इन नगरों में अपने परिवार से संयुक्त इंद्र बहुत प्रकार की विभूतियों से क्रीड़ा करते रहते हैं।

व्यंतर देवों के परिवार देव

इन 16 इंद्रों में से प्रत्येक के प्रतीन्द्र, सामानिक, आत्मरक्ष, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक और आभियोग्य इस प्रकार से परिवारदेव होते हैं। मतलब देवों के जो इंद्र, सामानिक आदि दस भेद बताये गये हैं उसमें व्यंतरवासियों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल भेद नहीं होते हैं। अतः यहाँ आठ भेद कहे गये हैं। प्रत्येक इंद्र के एक-एक प्रतीन्द्र होते हैं।

प्रत्येक इंद्र के चार-चार हजार सामानिक देव होते हैं।

प्रत्येक इंद्र के आत्मरक्षक 16-16 हजार हैं।

प्रत्येक इंद्र के अभ्यंतर पारिषद देव 8000।

प्रत्येक इंद्र के मध्य पारिषद देव 10000।

प्रत्येक इंद्र के बाह्य पारिषद देव 12000।

हाथी, घोड़ा, पदाति, गन्धर्व, नर्तक, रथ और बैल इस प्रकार प्रत्येक इंद्रों की ये 7 सेनाएँ होती हैं। हाथी, घोड़े आदि की पृथक्-पृथक् 7 कक्षाएँ स्थित हैं।

इनमें से प्रथम कक्षा का प्रमाण 28000 है। द्वितीयादि कक्षाओं में हाथी आदि दूने-दूने हैं। उनमें से प्रत्येक इंद्र के हाथियों का प्रमाण 35,56000 है।

प्रत्येक इंद्र की 7 अनीकों का प्रमाण दो करोड़ 48 लाख 92 हजार है।

इन सात अनीकदेवों के महत्तर देवों के नाम क्रमशः सुज्येष्ठ, सुग्रीव, विमल, मरूदेव, श्रीदाम, दामश्री और विशालाक्ष हैं।

इसी प्रकार से इन इंद्रों के प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक जाति के देव भी होते हैं। इस प्रकार के परिवार से संयुक्त सुखों का अनुभव करने वाले व्यंतर देवेन्द्र अपने-अपने पुरों में बहुत प्रकार की क्रीड़ाओं को करते हुए आनंद में मग्न रहते हैं।

अपने-अपने इंद्रों की नगरियों के दोनों पार्श्व भागों में उत्तम वेदी आदि से संयुक्त गणिका महत्तरियों के नगर होते हैं। उन पुरियों में से प्रत्येक का विस्तार चौरासी हजार योजन प्रमाण है और इतनी ही लम्बाई है।

व्यंतर देवों के विशेष स्थान

भवनवासी देवों से ऊपर व्यंतर देव, उनसे ऊपर नीचोपपातिक देव, उनसे ऊपर दिग्वासी देव स्थित हैं। आगे-आगे जाकर आकाशोत्पन्न देव हैं। उनके ऊपर ज्योतिर्वासी देव हैं पुनः उनसे ऊपर कल्पवासी, कल्पातीत देव स्थित हैं।

यथा –

चित्रापृथ्वी से एक हाथ ऊपर जाकर नीचोपपातिक देव हैं।
इससे 10000 हाथ की ऊँचाई पर दिग्वासी देव हैं।
इससे 10000 हाथ की ऊँचाई पर अंतरनिवासी देव हैं।
इससे 10000 हाथ की ऊँचाई पर कूष्मांडदेव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर उत्पन्न देव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर अनुत्पन्न देव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर प्रमाणक देव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर गंध देव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर महागंध देव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर भुजंगदेव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर प्रीतिक देव हैं।
इससे 20000 हाथ की ऊँचाई पर आकाशोत्पन्न देव हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी 180000 योजन मोटी है। उसके तीन भाग हैं। खरभाग, पंकभाग, अब्बहुल भाग। खर पृथ्वी 16000 योजन मोटी है। पंक पृथ्वी 84000 योजन मोटी है और अब्बहुल पृथ्वी 80000 योजन है। खर पृथ्वी के ऊपर से नीचे एक-एक हजार योजन पृथ्वी छोड़कर मध्य के 14000 योजन में किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, भूत और पिशाच इन सात प्रकार के व्यंतरों के एवं नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप और दिक्कुमार जाति के भवनवासी देवों के निवास-स्थान-भवन हैं। पंक भाग में भवनवासी के असुरकुमार और व्यंतर के राक्षस जाति के देवों के भवन हैं। नीचे अब्बहुल भागादि में नरक बिल हैं।

भवनवासियों के 7,72,00000 भवन हैं। व्यंतर देवों के असंख्यात भवन हैं। व्यंतर देवों के भवन के तीन भेद हैं – भवन, भवनपुर और

आवास। खर भाग, पंकभाग में पृथ्वी में व्यंतरों के भवन हैं। असंख्यातों द्वीप-समुद्रों के ऊपर भवनपुर हैं और सरोवर, पर्वत, नदी आदिकों के ऊपर आवास होते हैं।

भवनवासी देवों से ऊपर व्यंतर देव, उनसे ऊपर नीचोपपातिक देव, उनसे ऊपर दिग्वासी देव आदि से लेकर अंत में अनुत्तर देव एवं उनसे ऊपर सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं।

चित्रा पृथ्वी के एक हाथ ऊपर जाकर नीचोपपातिक देव स्थित हैं।
उसके ऊपर 10000 हाथ जाकर दिग्वासी देव रहते हैं।
उसके ऊपर 10000 हाथ जाकर अंतर निवासी देव हैं।
उसके ऊपर 10000 हाथ जाकर कूष्माण्ड देव रहते हैं।
इनकी आयु का प्रमाण 10000 वर्ष आदि है। उसका स्पष्टीकरण-

पृथ्वी से ऊपर	देवों की जाति	आयु
चित्रा पृथ्वी से 1	हाथ ऊपर नीचोपपातिक	10000 वर्ष
उससे - 10000	हाथ ऊपर दिग्वासी	20000 वर्ष
उससे - 10000	हाथ ऊपर अंतरनिवासी	30000 वर्ष
उससे - 10000	हाथ ऊपर कूष्मांडदेव	40000 वर्ष
उससे - 20000	हाथ ऊपर उत्पन्न	50000 वर्ष
उससे - 20000	हाथ ऊपर अनुत्पन्न	60000 वर्ष
उससे - 20000	हाथ ऊपर प्रमाणक	70000 वर्ष
उससे - 20000	हाथ ऊपर गंध	80000 वर्ष
उससे - 20000	हाथ ऊपर महागंध	84000 वर्ष
उससे - 20000	हाथ ऊपर भुजंग	1/8 पल्य प्रमाण
उससे - 20000	हाथ ऊपर प्रीतिक	1/4 पल्य
उससे - 20000	हाथ ऊपर आकाशोत्पन्न देव	1/2 पल्य
उनसे बहुत ऊपर अर्थात् चित्रा पृथ्वी से 790 योजन ऊपर	ज्योतिषी देव रहते हैं	
चित्रा पृथ्वी से 800 योजन-	सूर्यदेव	1 पल्य 1000 वर्ष
इस पृथ्वी से 80 योजन ऊपर	चंद्रदेव	1 पल्य 100000 वर्ष

वैमानिक के दो भेद हैं – कल्प, कल्पातीत।

चित्रा पृथ्वी से 99040 योजन ऊपर मध्यलोक से 6 राजू के ऊपर कुछ (1 लाख 40 योजन मध्यलोक में आ गया) कम 7 राजू के ऊपर सौधर्म आदि 12 कल्प हैं। अहमिंद्र आदि कल्पातीत देव हैं। सिद्धशिला है जिस पर अनंतानंत सिद्ध विराजमान हैं।

व्यंतर देवों का आहार

किन्नर आदि देव एवं देवियाँ दिव्य, अमृतमय आहार का मन से ही उपभोग करते हैं। उनके कवलाहार नहीं है अतः देवों के आहार का नाम मानसिक आहार है।

पल्यप्रमाण आयु से युक्त देवों के आहार का काल 5 दिन एवं दस हजार वर्ष की आयु वाले देवों का आहार 2 दिन बाद होता है, ऐसा जानना चाहिए।

देवों के उच्छ्वास का वर्णन

इन देवों में जो पल्यप्रमाण आयु से युक्त हैं वे पाँच मुहूर्तों में एवं जो दस हजार वर्ष की आयु से युक्त हैं वे सात उच्छ्वास काल प्रमाण के अनंतर उच्छ्वास लेते हैं।

देवों के अवधिज्ञान का विषय

जघन्य आयु – 10000 वर्ष प्रमाण आयु वालों की जघन्य अवधि का विषय 5 कोस है एवं उत्कृष्ट अवधि का विषय 50 कोस है।

पल्योपम प्रमाण आयु वाले व्यंतर देवों की अवधि का विषय नीचे व ऊपर एक लाख योजन प्रमाण है।

व्यंतर देवों की शक्ति एवं विक्रिया का वर्णन

दस हजार वर्ष प्रमाण आयु का धारक प्रत्येक व्यंतर देव 100 मनुष्यों को मारने व पालने के लिए समर्थ है एवं 150 धनुष प्रमाण विस्तार व मोटाई से युक्त क्षेत्र को अपनी शक्ति से उखाड़ कर अन्यत्र फेंकने की सामर्थ्य रखता है।

एक पल्य प्रमाण आयु का धारक व्यंतरदेव अपनी भुजाओं से छह खण्डों को उलट सकता है व उसमें स्थित लोगों को मारने व पालने में भी समर्थ है।

दस हजार वर्ष की आयु का धारक व्यंतरदेव उत्कृष्ट रूप से 100 रूपों की और जघन्य रूप से 7 रूपों की विक्रिया कर लेता है और मध्यम रूप से

100 से नीचे-नीचे विविध प्रकार की विक्रिया करता है। बाकी के व्यंतरवासी देवों में से प्रत्येक देव अपने-अपने अवधिज्ञानों का जितना क्षेत्र है उतने मात्र क्षेत्र को विक्रिया बल से पूर्ण कर सकते हैं।

संख्यात वर्ष प्रमाण आयु के धारक व्यंतर देव एक समय में संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष की आयु से युक्त देव असंख्यात योजन तक जा सकते हैं।

देवों के शरीर की अवगाहना

किन्नर आदि आठों व्यंतर देवों में से प्रत्येक की ऊँचाई 10 धनुष प्रमाण है। इन देवों के भी जन्म लेने के स्थानों का नाम उपपाद शय्या है जिस पर जन्म लेकर पुण्य प्रभाव से 16 वर्ष के युवक के समान हो जाते हैं। अंतर्मुहूर्त में ही शरीर और पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं।

व्यंतर देवों में जन्म लेने के कारण

जो कुमार्ग में स्थित हैं, दूषित आचरण करने वाले हैं, सम्पत्ति में अत्यंत रूप से आसक्त हैं, बिना इच्छा के विषयों से विरक्त हैं, अकाम निर्जरा करने वाले हैं, अग्नि आदि के द्वारा मरण को प्राप्त करते हैं, संयम लेकर उसे मलिन करते हैं या विनाश करते हैं, सम्यक्त्व से शून्य हैं, पंचाग्नि तप आदि करके मंद कषायी हैं, ऐसे कर्मभूमियाँ मनुष्य या तिर्यंच इन व्यंतर देवों की पर्याय में जन्म लेते हैं। भोग भूमिया जीव भी मरकर भावन, व्यंतर और ज्योतिष्क देवों में जन्म लेते हैं।

इस देव पर्याय से च्युत होकर सम्यक्त्व से सहित देव उत्तम मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं। जो सम्यक्त्व से शून्य ही मरण करते हैं वे देव कर्मभूमि के मनुष्य या पंचेन्द्रिय, सैनी, पर्याप्तक तिर्यंचों में जन्म लेते हैं। कदाचित् विषयों की अत्यासक्ति के कारण मरने के 6 महीने पहले से विलाप और संताप करते हुए मरकर एकेन्द्रिय पर्याय में पृथ्वीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव भी हो जाते हैं।

इन देवों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण

कदाचित् ये देव जातिस्मरण, देव ऋद्धि दर्शन, जिनबिम्ब दर्शन और धर्म श्रवण के निमित्तों से सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

जातिस्मरण–कदाचित् इन देवों में से किसी को जातिस्मरण हो कर कई-कई भवों के पाप-पुण्य, कृत्य स्मृति में आ जाते हैं। तब ये पाप-भीरू होकर पापों की एवं मिथ्यात्व की आलोचना करते हुए सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते हैं।

देव ऋद्धि दर्शन–कदाचित् कोई देव अपने से महान विभूतियों को अन्यदेवों के पास देखकर अवधिज्ञान से अपने और उसके पाप-पुण्य का तोल लगाने लगते हैं और सोचते हैं कि मैंने मंद पुण्य किया है जिससे कि सौधर्म आदि के वैभव से शून्य रहा हूँ इत्यादि सोचते हुए एवं कर्म को मंद करते हुए सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

जिनबिम्ब दर्शन–कदाचित् ये देव जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणकों के महोत्सव में आते हैं और किन्हीं अतिशयशाली जिन महिमा को देखते हैं अथवा अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन करते हैं। तब इन्हें सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो जाती है।

धर्मश्रवण–कदाचित् मध्यलोक में मुनियों से धर्म श्रवण करते हैं, कदाचित् देवों की सभा में ही धर्म श्रवण करते हैं जिसके फलस्वरूप सम्यक्त्व निधि को प्रगट कर लेते हैं। पुनः सम्यक्त्व के प्रभाव से मरण काल में संताप और संक्लेश न करते हुए शांति भाव से देव पर्याय से च्युत होकर मनुष्य भव प्राप्त कर लेते हैं एवं सम्यक्त्व के फलस्वरूप सम्यक्चारित्र को ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

व्यंतर देवों का विशेष वर्णन

औपपातिक, अध्युषित और अभियोग्य इस प्रकार से व्यंतर देव तीन प्रकार के होते हैं। भवन, भवनपुर और आवास ये तीन प्रकार के स्थान व्यंतर देवों के माने गये हैं।

मेरू प्रमाण ऊँचे मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक में व्यंतर देवों का निवास है। इन व्यंतरों में से किन्हीं के भवन हैं, किन्हीं के भवन और भवनपुर दोनों हैं एवं किन्हीं के तीनों ही स्थान होते हैं। ये सभी आवास प्राकार से परिवेष्टित बतलाये गये हैं। सब भवनों के चारों ओर वेदिकाएँ मानी गई हैं जो कि परकोटे के सदृश हैं। ये परकोटे महाभवनों के दो कोस ऊँचे तथा अन्य भवनों के 100 हाथ ऊँचे हैं।

महाभवनों का विस्तार 12200 योजन है एवं मोटाई 300 योजन है। अल्पभवनों का विस्तार 3 कोस एवं मोटाई भी 3 कोस है। उत्कृष्ट भवन में 100 योजन चौड़ाई वाला एवं जघन्य भवनों में एक कोस मात्र मोटाई वाला कूट है।

समुद्र में स्थित द्वीपों में भवनपुर होते हैं और तालाब, पर्वत एवं वृक्षों के आश्रित आवास होते हैं। पुरों में कितने ही गोल, त्रिकोण तथा चतुष्कोण भी होते हैं। इनमें क्षुद्रपुर एक योजन विस्तीर्ण तथा महापुर एक लाख योजन विस्तीर्ण होते हैं। ये पुर असंख्यात द्वीप-समुद्रों में स्थित हैं। ये रत्नमयी पुर रमणीय, बहुत प्रकार के आकार वाले हैं। इस प्रकार व्यंतर देवों के स्थान असंख्यात होने से उनमें स्थित जिन मंदिर भी असंख्यात प्रमाण हैं। उन सभी जिनमंदिरों में एक सौ आठ-एक सौ आठ प्रमाण जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं और बाकी सभी व्यवस्था भवनवासी देवों के जिनमंदिरों के सदृश ही हैं। ये व्यंतर देव क्रीड़ा प्रिय होने से इस मध्य लोक में यत्र-तत्र शून्य स्थान, वृक्षों की कोटर, श्मसान भूमि आदि में भी विचरण करते रहते हैं। कदाचित्-क्वचित् किसी से पूर्व जन्म का बैर विरोध होने से उसे कष्ट भी दिया करते हैं, किसी पर प्रसन्न होकर उसकी सहायता भी करते हैं। जब सम्यक्दर्शन को ग्रहण कर लेते हैं तब पापभीरू बनकर धर्मकार्यों में ही रूचि लेते हैं ऐसा समझना चाहिए।

भवनवासी देवों में जिनगृह सप्त करोड़ बहत्तर लाख।
भवविजयी की प्रतिमा उनमें नमन करूँ हो दुःख विनाश।।
व्यंतर देवों के गृह में संख्या विरहित जिनराज भवन।
मीनपताका विजयी जिनकी प्रतिमा अनुपम करूँ नमन।।

मध्य लोक

मध्य लोक

लोकाकाश के मध्य में एक राजू चौड़ा एवं एक लाख चालीस योजन ऊँचा मध्यलोक है – इसे तिर्यकलोक भी कहते हैं। इस तिर्यकलोक में जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र से प्रारंभ करके असंख्यातों द्वीप-समुद्र हैं जो कि गोलाकार – थाली के आकार वाले हैं एवं एक दूसरे को वेष्टित किये हुए हैं।

सबसे पहले बीचों-बीच में एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप को वेष्टित करके चारों तरफ 2 लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। इसी तरह आगे-आगे द्वीप और समुद्र के क्रम से एक राजू प्रमाण तक असंख्यातों द्वीप-समुद्रों में अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र है।

एक लाख योजन व्यास वाले जम्बूद्वीप की परिधि का प्रमाण 3 लाख 16 हजार 227 योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष एवं कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल मात्र है। अर्थात् 316227 योजन, 3 कोस, 128 धनुष, साधिक 13-1/2 अंगुल एवं क्षेत्रफल 790 करोड़, 56 लाख, 94 हजार, 150 योजन है।

जम्बूद्वीप के परकोटे का वर्णन

इस जम्बूद्वीप को चारों तरफ से वेष्टित करके परकोटे के समान आठ योजन ऊँची जगती कहलाती है। इस जगती का विस्तार (मोटाई) मूल में 12 योजन, मध्य में आठ और शिखर पर 4 योजन है। यह जगती मध्य में बहुत प्रकार के रत्नों से निर्मित और शिखर वैडूर्य मणियों से परिपूर्ण है।

इस जगती के मूल प्रदेश में पूर्व-पश्चिम की ओर सात-सात गुफायें हैं जो उत्कृष्ट तोरणों से रमणीय, अनादिनिधन एवं अत्यंत विचित्र हैं। इन 14 गुफाओं से ही आगे कही जाने वाली 14 नदियाँ लवण समुद्र में प्रवेश करती हैं। इस जगती के चार योजन प्रमाण वाले ऊपरले भाग पर ठीक बीच में दिव्य सुवर्णमय वेदिका है। यह दो कोस ऊँची, पाँच सौ धनुष प्रमाण चौड़ी है। जगती का ऊपर का विस्तार 4 योजन कहा गया है। 1 योजन में 4 कोस और 1 कोस में 2000 धनुष होने से जगती का विस्तार 32000 धनुष हुआ। इसमें से वेदी के विस्तार को घटा कर दो का भाग देने से वेदिका के दोनों पार्श्व भागों में जगती का प्रमाण निकल आता है।

$$\frac{32000-500}{2} = 15750 \text{ धनुष}$$

इस प्रकार से वेदी के दोनों पार्श्व भागों में 15750 धनुष प्रमाण विस्तृत जगती पर उत्तम वापियों से संयुक्त, विचित्रमणिमय गृहों से परिपूर्ण रमणीय, उपवनों के समूह हैं। इनमें उत्कृष्ट बावड़ियों का विस्तार दो सौ धनुष, मध्यम का एक सौ पचास धनुष और जघन्य का सौ धनुष प्रमाण है। तीनों ही तरह की बावड़ियाँ अपने-अपने विस्तार के दसवें भाग गहरी, कैरव – श्वेत कमल, लालकमल, एवं नील कमलों की सुगंधि से व्याप्त हैं।

वेदी के अभ्यन्तर भाग में प्राकार से वेष्टित, उत्तर गोपुरद्वार व तोरणों से रमणीय ऐसे महोरग जाति के व्यंतर देवों के भवन स्थित हैं। इन देवों के नगरों में विविध प्रकार की रचनाओं से युक्त, उत्तमोत्तम रत्नों से निर्मित, अभ्यन्तर भाग में चैत्यतरूओं से सहित, चारों ओर प्रदीप्त रत्न दीपकों से सुशोभित, धूपघटों से युक्त, वज्रमय कपाट, वेदी एवं गोपुर द्वारों से सहित, रमणीय प्रासाद हैं। इनमें से उत्कृष्ट प्रासाद – महल दो सौ पचीस धनुष ऊँचे, तीन सौ धनुष लम्बे और एक सौ पचास धनुष चौड़े हैं। जघन्य प्रासादों की ऊँचाई 75 धनुष, लम्बाई 100 धनुष और चौड़ाई 50 धनुष प्रमाण है।

उत्कृष्ट महलों के द्वारों की ऊँचाई 36 धनुष एवं चौड़ाई 18 धनुष है तथा जघन्य महलों के द्वारों की ऊँचाई 12 धनुष व चौड़ाई 6 धनुष है।

इन व्यंतरों के नगरों में सामान्यगृह, चित्रगृह, कदलीगृह, गर्भगृह, लतागृह, नादगृह और आसनगृह ये रम्य आकार वाले गृह विशेष होते हैं। मंडनशाला, मैथुनशाला, ओलगशाला, वंदनशाला, अभिषेकशाला और नृत्यशाला ऐसी रत्नों से निर्मित शालाएँ होती हैं। इन रमणीय प्रासादों में हाथी, सिंह, शुक, मयूर, मगर, व्याल, गरुड़ और हंस के आकार वाले आसन रखे हुए हैं। महलों में उत्तम रत्नों से निर्मित, मृदुल स्पर्श वाले और दोनों पार्श्व भाग में स्थित तकियों से युक्त सुंदर शय्याएँ शोभायमान हैं। सुवर्ण के समान निर्लेप, निर्मल कान्ति के धारक सुगंधमय निःश्वास से युक्त उत्तमोत्तम विविध प्रकार के भूषणों को धारण करने वाले, सिर पर सूर्य मण्डल के समान मुकुट के धारक, रोग एवं वृद्धावस्था से रहित, प्रत्येक दस

धनुष की अवगाहना वाले व्यंतर देव उन नगरों में स्वच्छंद क्रीड़ा करते रहते हैं। व्यंतर देवों के सभी भवनों में भव्य जिनमंदिर शोभायमान रहते हैं। ऐसे ये अकृत्रिम व्यंतर नगर हैं।

जम्बूद्वीप के मुख्य चार द्वारों का वर्णन

जम्बूद्वीप की चारों दिशाओं में विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित इन नामों से प्रसिद्ध चार द्वार हैं।

पूर्व दिशा में विजय द्वार, दक्षिण में वैजयंत, पश्चिम में जयंत और उत्तर दिशा में अपराजित द्वार हैं। इन प्रत्येक द्वारों की ऊँचाई आठ योजन एवं चौड़ाई 4 योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट वज्रमय कपाटों से युक्त चित्र-विचित्र रत्नों की मालाओं से सुंदर ये चारों द्वार व्यंतर देवों से सदैव रक्षित हैं। प्रत्येक द्वार के उपरिम भाग में सत्रह तलों से युक्त, अनेक उत्तम बरामदों से सुशोभित, प्रदीप्त रत्नदीपकों से सहित, अनेक प्रकार की उत्तम पुत्तलिकाओं से युक्त खम्भों वाले, फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से युक्त विविध प्रकार के दृश्यों से रमणीय, उत्तुंग रत्न शिखरों से संयुक्त चारों तरफ नाना प्रकार के स्पष्ट रूपों से युक्त, देवों व अप्सराओं से सेवित और पट्टांशुक आदि से शोभायमान द्वार प्रासाद हैं। गोपुर द्वारों पर सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादिक से रमणीय रत्नमय जिन प्रतिमाएँ शोभायमान होती हैं।

द्वारों के अधिपति व्यंतर देवों का वर्णन

इन द्वारों के अधिपति व्यंतर देव हैं। द्वारों के जो नाम हैं वे ही नाम रक्षा के निमित्त से इन देवों के भी हैं। इन देवों की आयु एक पल्य प्रमाण है एवं इनके शरीर की ऊँचाई दस धनुष प्रमाण है। ये दिव्य निर्मल मुकुट के धारक और हजारों देवियों से सहित हैं।

विजय देव के नगर का वर्णन

द्वार के ऊपर आकाश में बारह हजार योजन लम्बा और इससे आधे विस्तार वाला विजय देव का नगर है। उसमें चार गोपुरों से संयुक्त सुवर्णमयी तट वेदी है, जो मार्ग व अट्टालिकाओं से सुंदर और द्वारों के ऊपर स्थित जिनपुरों से रमणीय है। इस नगर में नाना प्रकार के रत्नों और सुवर्णों से

निर्मित, समचतुरस्र, दीर्घ और अनेक आकृतियों से शोभायमान, विचित्र प्रासाद हैं जो कि कुंदपुष्प, चंद्रमा एवं शंख के समान धवल, मरकत मणियों जैसे वर्ण वाले, सुवर्ण के सदृश, उत्तम पद्मराग मणियों के समान व बहुत से अन्य विचित्र वर्णों वाले हैं। इनमें ओलगशाला, मंत्रशाला, भूषणशाला, अभिषेकशाला, उत्पत्तिशाला, मैथुनशाला आदि रत्नमयी विशाल शालाएँ शोभायमान हैं। वे सब भवन वनसमूहों से सुशोभित, रमणीय प्रदीप्त रत्नदीपकों से युक्त, श्रेष्ठ धूप घटों से संयुक्त सात, आठ, नौ, दस इत्यादि विचित्र खण्डों से विभूषित, विशाल फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से सहित और अकृत्रिम होते हुए अच्छी तरह शोभायमान हैं।

ये भवन नाना प्रकार के स्पर्श, रस, वर्ण, उत्तम ध्वनि एवं गंध से सदृशता को प्राप्त उज्ज्वल एवं विचित्र बहुत प्रकार के शयन तथा आसनों के समूह से परिपूर्ण हैं। इस नगर में बहुत प्रकार के परिवार से परिपूर्ण विजय देव अपनी देवियों से युक्त होकर सर्वदा उपचार सुखों को भोगता है।

इसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के द्वारों के उपरिम भाग पर आकाश में जिन भवनों से युक्त उन्हीं-उन्हीं देवों के रमणीय उत्तम नगर हैं।

जगती के अभ्यन्तर भाग में पृथ्वी तल पर दो कोस विस्तार से युक्त और उत्तम वृक्षों के समूह से परिपूर्ण वन समूह शोभायमान हैं। ये वनसमूह शीतल छाया से युक्त, उत्तम सुगंधित पुष्पों से परिपूर्ण दिव्य सुगंध से सुगंधित देव एवं विद्याधर युगलों के चित्त को हरने वाले हैं।

सुवर्ण एवं उत्तमोत्तम रत्नों के समूह से निर्मित उस उद्यान की दिव्य वेदिका (परकोटा) दो कोस ऊँची एवं पाँच सौ धनुष प्रमाण चौड़ी है। यहाँ तक जम्बूद्वीप के परकोटे का वर्णन समाप्त हुआ।

छह कुलाचल और सात क्षेत्र

जम्बूद्वीप में छह पर्वत हैं जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बे हैं। इन पर्वतों से इस जम्बूद्वीप में 7 क्षेत्र हो गए हैं।

पर्वतों के नाम–हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी।

पर्वतों से विभाजित 7 क्षेत्रों के नाम – भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत एवं ऐरावत। इनमें दक्षिण दिशा से प्रारंभ करके भरत

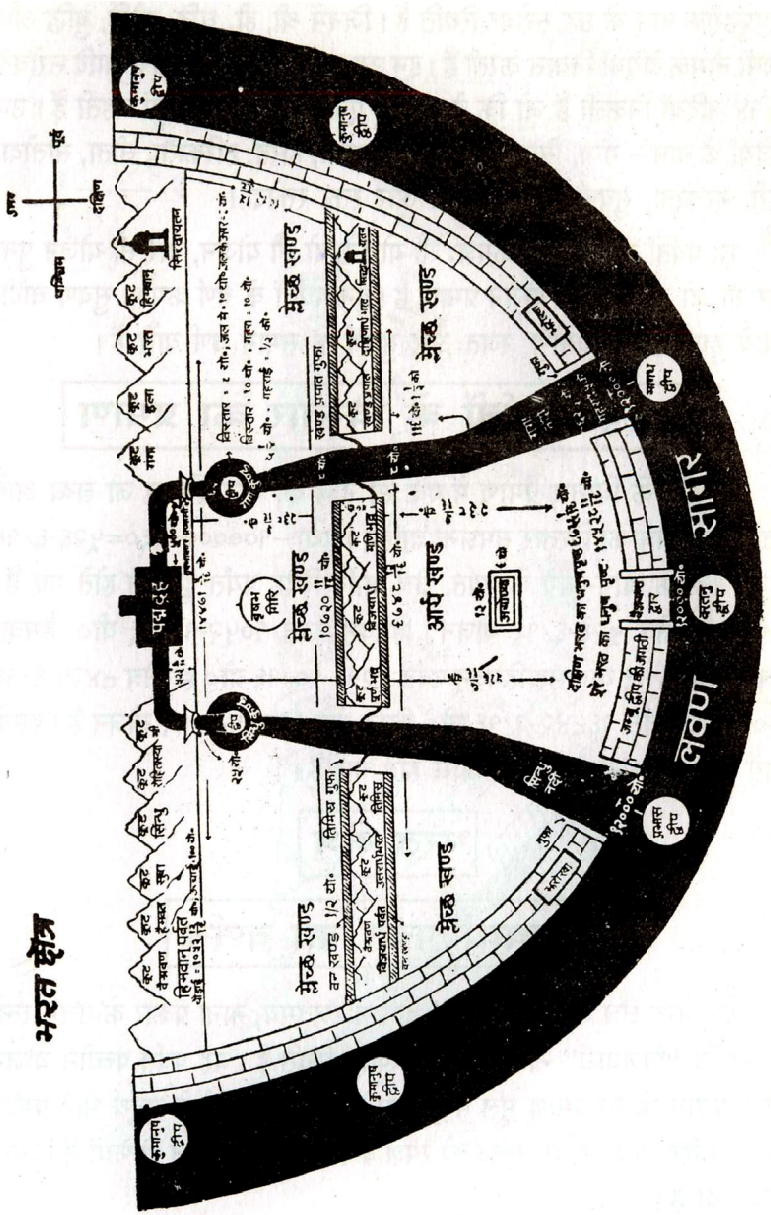

क्षेत्र – हिमवन् पर्वत, हैमवत क्षेत्र – महाहिमवन् पर्वत आदि क्रम से हैं।

ये छहों पर्वत मूल में व ऊपर समान विस्तार वाले हैं। और पूर्व-पश्चिम में समुद्रों से संलग्न हैं। इन पर्वतों पर क्रमशः, पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, पुंडरीक, महापुंडरीक नाम के छह सरोवर स्थित हैं। जिनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियाँ निवास करती हैं। इन छह पर्वतों के पद्म, महापद्म आदि सरोवरों से 14 नदियाँ निकली हैं जो कि वे क्रमशः एक-एक क्षेत्र में दो-दो बहती हैं। उन नदियों के नाम – गंगा-सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकांता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकांता, सुवर्णकूला रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा।

छः पर्वतों की ऊँचाई – क्रमशः सौ योजन, दो सौ योजन, चार सौ योजन पुनः चार सौ, दो सौ और सौ योजन प्रमाण है। इन पर्वतों के वर्ण क्रमशः सुवर्ण, चाँदी, तपाये हुए स्वर्ण, वैडूर्यमणि, रजत और सुवर्ण के समान वर्ण वाले हैं।

क्षेत्र एवं पर्वतों के विस्तार का प्रमाण

जम्बूद्वीप के विस्तार प्रमाण में एक सौ नब्बे का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना भरत क्षेत्र का विस्तार समझना चाहिए। यथा – 100000÷190=526 – 6/19 योजन। इसके आगे-आगे के पर्वत, क्षेत्र आदि विदेह पर्यंत दूने-दूने होते गए हैं। जैसे – भरत क्षेत्र 526 – 6/19 योजन। हिमवन् पर्वत 1052 – 12/19 योजन, हैमवत क्षेत्र 2105 – 5/19 योजन, महाहिमवन् पर्वत 4210 – 10/19 योजन, हरिक्षेत्र 8421 – 1/19 योजन, निषध पर्वत 16842 – 2/19 योजन, विदेह क्षेत्र 33684 – 4/19 योजन है। इसके आगे के पर्वत और क्षेत्र आधे-आधे होते गए हैं।

भरत क्षेत्र

विजयार्ध पर्वत का वर्णन

इस भरत क्षेत्र के बिल्कुल मध्य भाग में रजतमय, नाना प्रकार के उत्तम रत्नों से रमणीय "विजयार्ध" नाम का उन्नत पर्वत स्थित है। यह पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा, पचास योजन प्रमाण मूल में विस्तार से युक्त, ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण नींव से सहित, पूर्व-पश्चिम समुद्र को स्पर्श करने वाला

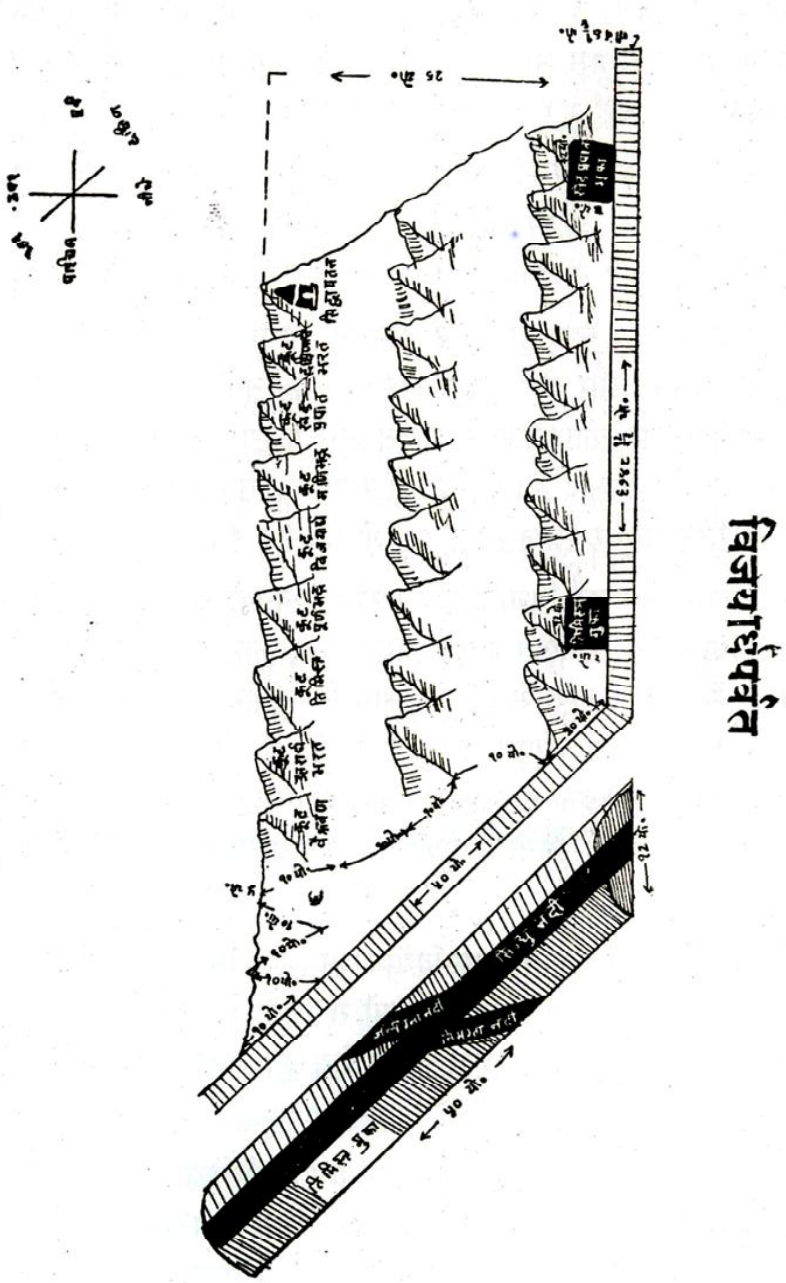

और तीन श्रेणियों में विभक्त कहा गया है।

विजयार्ध की ऊँचाई 25 योजन, मूल विस्तार 50 योजन, एवं नींव 6-1/4 योजन। दस योजन ऊपर जाकर इस पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में दस योजन विस्तार से युक्त विद्याधरों की एक-एक श्रेणी है। विजयार्ध के आयाम – लम्बाई प्रमाण विद्याधरों की श्रेणियाँ हैं तथा नाना प्रकार के तोरणों से शोभायमान दोनों तरफ एक-एक वेदी (ऊँची दीवाल सदृश) है। इस विजयार्ध पर पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर दक्षिण दिशा की श्रेणी में पचास और उत्तर श्रेणी में साठ नगर स्थित हैं। ये एक-एक नगर हिन्दुस्तान से भी कई गुने बड़े समझना चाहिए।

उन नगरों के नाम—किंनामित, किन्नरगीत, बहुकेतु, पुंडरीक, सिंहध्वज, श्वेतकेतु, गरुड़ध्वज, श्रीप्रभ आदि सुंदर-सुंदर नाम वाले 110 नगर हैं। जो कि विजयार्ध की लम्बाई में पक्ति से स्थित हैं।

विद्याधरों के ये श्रेष्ठ नगर अनादिनिधन, स्वभावसिद्ध अनेक प्रकार रत्नमय तथा गोपुर, प्रासाद और तोरणादि से सहित हैं। इन नगरों में उद्यान वनों से संयुक्त, पुष्करिणी, कूप एवं वापिकाओं से सहित और फहराती हुई ध्वजा, पताकाओं से सुशोभित रत्नमय प्रासाद हैं। इन पुरों में रमणीय उत्तम रत्न और सुवर्णमय नाना प्रकार के जिन मंदिर स्थान-स्थान पर शोभायमान हैं।

इन नगरों के बाहरी विशाल प्रदेश प्रफुल्लित कमल वनों वाले और वापी समूहों से युक्त उद्यान वनों से मंडित हैं। कल्हार, कमल, कुवलय और कुमुदों से उज्ज्वल जलप्रवाह से परिपूर्ण बहुत से दिव्य तालाब हैं। जुवार, तुवर, तिल, जौ, गेहूं और उड़द इत्यादि धान्यों से परिपूर्ण खेत शोभित होते हैं। ये नगर बहुत से दिव्य ग्रामों से सहित, दिव्य महा पट्टनों से रमणीय कर्वट, द्रोणमुख, संवाह और मटंबों से परिपूर्ण पद्म-रागादिक रत्नों की खानों से सुशोभित धन-धान्य की वृद्धि से रमणीय दिव्य मनुष्यों से परिपूर्ण हैं।

इन नगरों में रहने वाले उत्तम विद्याधर मनुष्य कामदेव के समान बहुत प्रकार की विद्याओं से संयुक्त हमेशा ही छह कर्मों से सहित होते हैं। इन विद्याधरों की स्त्रियाँ अप्सराओं के सदृश, दिव्य लावण्य से रमणीय और बहुत प्रकार की विद्याओं से समृद्ध हैं।

यहाँ के मनुष्य अनेक प्रकार की कुलविद्या, जातिविद्या, और साधित विद्याओं के प्रसाद से हमेशा ही अनेक प्रकार के सुख का अनुभव करते रहते हैं। ये सभी विद्याधर नगर, अनेक उद्यानों से विभूषित जिन भवनों से युक्त हैं। इनका सम्पूर्णतया वर्णन के लिए कौन समर्थ हो सकता है।

इन विद्याधरों के आगे दस योजन ऊपर जाकर विजयार्ध पर्वत के दोनों ही पार्श्व भागों में दस योजन विस्तार वाली आभियोग्य देवों की श्रेणियाँ हैं। ये श्रेणियाँ उत्कृष्ट कल्पवृक्षों से रमणीय, सुवर्णमय वेदिका (ऊँची दीवार के परकोटे सदृश) से सहित, उत्कृष्ट गोपुरों से सुंदर, फलित उपवनों से परिपूर्ण, प्रचुर वापी एवं तालाबों से सहित, उत्तम अप्सराओं की क्रीड़ाओं से युक्त, बहुत से मणिमय भवनों से परिपूर्ण, परिखा एवं प्राकार से वेष्टित हैं। इन दक्षिण-उत्तर श्रेणियों में उत्तम दिव्य रूप के धारी सौधर्म इंद्र के वाहन जाति के व्यंतर देव रहते हैं।

इन आभियोग्य पुरों से पाँच योजन ऊपर जाकर दस योजन विस्तार वाला विजयार्ध पर्वत का उत्तम शिखर है।

यह शिखर इंद्र धनुष के सदृश, विशाल व उत्तम वेदिकाओं (परकोटे सदृश दीवालों) से वेष्टित, बहुत तोरण द्वारों से संयुक्त और विचित्र रत्नों से रमणीय है। वहाँ पर स्फुरायमान उत्तम रत्नों के किरण समूहों से युक्त समभूमि भाग में सुवर्ण और मणियों से मंडित दिव्य नौ कूट स्थित हैं। इन कूटों में पूर्व दिशा के क्रम से सबसे प्रथम सिद्धकूट, पुनः भरतकूट, खण्डप्रपात, माणिभद्र, विजयार्धकुमार, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुह, उत्तर भरत-कूट, और पश्चिम दिशा के अंत में वैश्रवण कूट है। इन कूटों की ऊँचाई सवा छह योजन और मूल में विस्तार भी सवा छह योजन है। मध्य में कूटों का विस्तार 4 योजन 1/4 कोस तथा शिखर के पास में विस्तार 3 योजन 1/2 कोस प्रमाण है।

सिद्धकूट पर स्थित जिन मंदिर

प्रथम सिद्धकूट पर विचित्र ध्वजा समूहों से शोभायमान जिनेन्द्र भवन तथा उत्तम सुवर्ण और रत्नों से निर्मित तोरणों से युक्त विमान भी स्थित हैं। इस जिन भवन की लम्बाई एक कोस, चौड़ाई आधा कोस और ऊँचाई पौन कोस प्रमाण है। यह जिन भवन सुवर्णमय तीन प्राकारों से वेष्टित, गोपुरों

से संयुक्त, उत्तम वज्र, नील, विद्रुम, मरकत और वैडूर्यमणियों से निर्मित, लटकती हुई रत्नमालाओं से युक्त, नाना प्रकार के फूलों के उपहार से शोभायमान, गोशीर, मलय चंदन, कालागरु और धूप की गंध से व्याप्त, उत्कृष्ट वज्र कपाटों से युक्त, बहुत प्रकार के द्वारों से सुशोभित विशाल और उत्तम मानस्तम्भों से सहित एवं अनुपम हैं। झारी, कलश, दर्पण, चामर, घण्टा छत्रत्रय आदि मंगल द्रव्यों से, विचित्र उत्तम वस्त्रों से, नाग, पुंनाग, चंपक, अशोक और वकुल आदि वृक्षों से परिपूर्ण विविध प्रकार के उपवनों से शोभायमान है।स्वच्छ जल से परिपूर्ण कमल और नील कमलों से अलंकृत भूमि भागों से युक्त, मणिमय सोपान पंक्तियों से शोभायमान ऐसी पुष्करिणियों से यह जिनभवन रमणीय दिखता है। इस जिन भवन में अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण, सिंहासन आदि से सहित, हाथ में चामरों को लिए हुए नागयक्षों के युगलों से युक्त, ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, छत्र, चामर और सुप्रतिष्ठ (ठोना) इन आठ मंगल द्रव्यों में से प्रत्येक वहाँ एक सौ आठ-एक सौ आठ हैं।

जो स्मरण मात्र से ही भव्य जीवों के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करती हैं और शाश्वत ऋद्धियों से युक्त हैं, ऐसी इन जिन प्रतिमाओं का जितना भी वर्णन किया जावे थोड़ा ही है। इन मंदिरों में स्थित सुंदर जिन मूर्तियों का जो भव्य जीव निर्मल चित्त होकर भक्ति से ध्यान करते हैं वे अपने भावों के अनुसार नाना प्रकार के अभ्युदयों को प्राप्त कर अनंत सुखस्वरूप मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं।

भरतादि आठ कूटों पर व्यंतर देवों के उत्तम रत्न और सुवर्ण से निर्मित वेदी एवं गोपुर द्वारों से शोभित, उद्यानों से युक्त, मणिमय शय्या और आसनों से परिपूर्ण, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित और अनेक वर्ण वाले देवों के भवन हैं। ये व्यंतर देवों के प्रासाद बहुत से देव-देवियों से सहित हैं। ये एक कोस लम्बे, आधा कोस चौड़े तथा पौने कोस ऊँचे प्रमाण वाले हैं।

भरत कूट पर	–	भरत नामक देव
खंडप्रपात पर	–	नृत्यमाल देव

माणिभद्र पर	–	माणिभद्र देव
विजयार्ध कूट पर	–	विजयार्ध कुमार देव
पूर्णभद्र कूट पर	–	पूर्णभद्र देव
तिमिश्र कूट पर	–	कृतमाल देव
उत्तर भरत कूट पर	–	भरत देव
वैश्रवण कूट पर	–	वैश्रवण देव

क्रमशः इन आठ कूटों पर उनके अधिपति देवों का निवास है। ये सभी देव दस धनुष ऊँची अवगाहना वाले हैं और एक पल्य प्रमाण आयु से युक्त हैं।

इस विजयार्ध पर्वत के भूमि तल पर दोनों पार्श्व भागों में दो कोस विस्तीर्ण और पर्वत के बराबर लंबे वनखण्ड हैं। इन वनों की वेदिकायें– दीवालें दो कोस ऊँची और पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तार वाली हैं एवं तोरण द्वारों से सहित हैं। ये वेदिकायें मार्ग एवं अट्टालिकाओं से सुंदर नाना प्रकार के लाखों यंत्रों से व्याप्त, विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से खचित और अनुपम शोभा को धारण करने वाली हैं। इन सब उपवनों में प्राकार और गोपुरों से युक्त तथा जिन भवनों से भूषित, व्यंतर देवों के विशाल, उत्कृष्ट नगर हैं।

इस विजयार्ध पर्वत में पचास योजन लम्बी, आठ योजन ऊँची और बारह योजन विस्तार से युक्त दो गुफाएँ हैं। इनमें से पूर्व में तिमिश्र गुफा और पश्चिम में खण्डप्रपात गुफा है। ये दोनों गुफाएँ वज्रमय कपाटों से युक्त और अनादिनिधन हैं। दोनों ही गुफाओं में द्वारों के दिव्य युगल कपाटों में से प्रत्येक कपाट छह योजन विस्तीर्ण और आठ योजन ऊँचे हैं।

दक्षिण-उत्तर भरत क्षेत्र का प्रमाण

विजयार्ध पर्वत का मूल में विस्तार पचास योजन है। इसको भरत क्षेत्र के विस्तार में से कम करके शेष का आधा दक्षिण भरत एवं उत्तर भरत का विस्तार होता है। दक्षिण भरत का विस्तार दो सौ अड़तीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से तीन भाग प्रमाण है। इसी के सदृश विस्तार वाला उत्तर भरत है। यथा-

$(526-6/19-50)\div 2=238-3/19$ योजन

हिमवन् पर्वत का वर्णन

भरत क्षेत्र के विस्तार से दूने विस्तार वाला हिमवन् पर्वत है यह सौ योजन ऊँचा है एवं सुवर्णमयी है। हिमवन् पर्वत की ऊँचाई 100 यो., चौड़ाई 1052-12/19 यो., लम्बाई पूर्व-पश्चिम लवण समुद्र तक एवं वर्ण-सुवर्णमय है।

भूमितल पर हिमवन् पर्वत के सदृश लम्बी उसकी दो तट वेदियाँ हैं, ये वेदियाँ दो कोस ऊँची और पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तार से युक्त हैं। इस पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में अर्ध योजन प्रमाण विस्तार से युक्त वन खण्ड हैं तथा पूर्वोक्त वेदियों के समान बहुत तोरण द्वारों से संयुक्त वेदी हैं।

इस हिमवन् पर्वत के शिखर पर चारों तरफ पद्मराग मणिमय दिव्य वेदिका है। वन, भवन और वेदी आदि का सब वर्णन पूर्वोक्त ही है।

हिमवान् पर्वत के 11 कूटों का वर्णन

पर्वत पर पूर्व दिशा से लेकर क्रमशः सिद्धकूट, हिमवान् कूट, भरत, इला, गंगा, श्री, रोहितास्या, सिन्धु, सुरा, हैमवत, और वैश्रवण ये 11 कूट हैं।

इनमें से प्रत्येक कूट की ऊँचाई और मूल में विस्तार पच्चीस योजन है। ऊपर का विस्तार 12-1/2 योजन है। और मध्य में विस्तार 18 योजन 3 कोस है। ये 11 कूट समान गोल, वेदियों से रमणीय और व्यंतरों के भवनों से रमणीय हैं एवं पूर्व दिशा के सिद्धकूट पर जिनभवन है।

जिनभवन का वर्णन

इस जिन भवन की लम्बाई 50 योजन,चौड़ाई 25 योजन और ऊँचाई 37-1/2 योजन है। जिन भवन में तीन द्वार हैं। पूर्व मुख द्वार की ऊँचाई 8 योजन, विस्तार एवं प्रवेश 4 योजन है शेष दो द्वारों की ऊँचाई व चौड़ाई इससे आधी है। यथा–

पूर्व मुख द्वार	ऊँचाई 8 योजन	विस्तार 4 योजन
दक्षिण-उत्तर मुख द्वार	ऊँचाई 4 योजन	विस्तार 2 योजन।

जिन भवन में 1 देवच्छंद है, जिसकी लम्बाई 8 योजन, ऊँचाई 4 योजन एवं चौड़ाई 2 योजन है।

वहाँ पर सिंहासन आदि से सहित, हाथ में चामरों को लिए हुए नागयक्ष

युगल से संयुक्त एवं एक सौ आठ धनुष प्रमाण ऊँची उत्कृष्ट जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। देवच्छंद के भीतर जिनप्रतिमाओं के आजू-बाजू श्रीदेवी-श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ एवं आठ मंगल द्रव्य स्थित हैं। वहाँ पर सुंदर चंदोवे शोभायमान हैं जिसमें पुष्पमालाएँ लटकती रहती हैं एवं जो मयूर, कबूतर आदि के कण्ठ के सदृश तथा मरकत, मूँगा जैसे वर्ण वाले हैं। प्रत्येक जिन भवन के द्वार के आगे भेरी, मृदंग, मर्दल, जयघंटा, कांस्यताल, तिवली, पटुपटह, शंख, काहल और देव दुंदुभि बाजों के शब्दों से गम्भीर ऐसे दिव्य मुख मंडप हैं। इन मंडपों का विस्तार 25 योजन, लम्बाई 50 योजन एवं ऊँचाई 8 योजन प्रमाण है। इन मंडपों के आगे अभिषेक, गीत और अवलोकन के मंडप हैं। इन जिन भवनों में चार गोपुर, तीन प्राकार, वीथियों में मानस्तम्भ, नौ स्तूप, वनभूमि, ध्वज भूमि और चैत्यभूमि होती हैं। सब गोपुर द्वार पाँच वर्ण के रत्नों से निर्मित पुत्तलीयुक्त तोरणों से युक्त और अनेक प्रकार मत्तवारण-छज्जों से रमणीय हैं। ये गोपुर द्वार बहुत सी शालभंजिका–पुत्तलियों एवं मधुर शब्द करने वाले कोकिल, मयूर आदि पक्षियों से सहित लहराती हुई ध्वजा पताकाओं से संयुक्त हैं।

वहाँ के उद्यान वनों में इलायची, तमालवल्ली, लौंग, कंकोल, केला इत्यादि नाना वृक्ष शोभायमान हैं। इन बगीचों में कल्हार, कंदल, कमल, नीलकमल और कुमुद के फूलों से व्याप्त पुष्करिणी, वापी और उत्तम कूप हैं। चारों वनों के मध्य में स्थित तीन मेखला युक्त नंदादिक वापिकाएँ हैं, तीन पीठों से सहित, धर्मचक्र और चैत्य वृक्ष शोभित हैं।

शेष कूटों का वर्णन

हैमवत्, भरत, हिमवान् और वैश्रवण नाम के कूटों पर अपने-अपने कूटों के नाम वाले देव तथा शेष कूटों पर अपने-अपने कूटों के नाम वाली देवियाँ रहती हैं यथा–

सिद्धकूट	–	जिन भवन
हिमवान्	–	हिमवान् देव का भवन।
भरत	–	भरतदेव
हैमवत्	–	हैमवत देव

वैश्रवण	–	वैश्रवण देव
इला	–	इला देवी
गंगा	–	गंगा देवी
श्री कूट	–	श्री देवी
रोहितास्याकूट	–	रोहितास्या देवी
सिन्धु कूट	–	सिन्धु देवी
सुरा कूट	–	सुरा देवी

इन कूटों पर बहुत से परिवार देवों से सहित जो देव-देवियाँ स्थित हैं वे सौधर्म इंद्र के परिवार स्वरूप हैं। इन देव-देवियों के शरीर की अवगाहना दस धनुष प्रमाण है। इन व्यंतर देव-देवियों के भवन रत्नमय हैं। भवनों का विस्तार 31 योजन 1 कोस और ऊँचाई 62 योजन 2 कोस प्रमाण है।

दस कूटों के शिखरों पर प्राकार, बलभी–छज्जा, गोपुर और धवल निर्मल वेदिकाओं से व्याप्त देवों के नगर हैं। ये नगर लहराती हुई ध्वजा पताकाओं से सहित, गोपुर द्वारों से शोभित, विशाल एवं उत्तम वज्रमय कपाटों से युक्त, उपवन, पुष्करिणी एवं वापिकाओं से रमणीय हैं। इन नगरों में से कितने ही नगर तुषार, चंद्र किरण एवं हार के सदृश, कितने ही विकसित चंपक जैसे वर्ण वाले, कितने ही नील व रक्त कमल के सदृश वर्ण वाले हैं।

ये नगर वज्रमणि, इंद्रनीलमणि, मरकत मणि, कर्केतन और पद्मराग मणियों से परिपूर्ण तथा जिन भवनों से सनाथ हैं–सहित हैं।

पद्म सरोवर का वर्णन

इस हिमवान् पर्वत के मध्य में पूर्व-पश्चिम से एक हजार योजन लंबा पाँच सौ योजन चौड़ा एक सरोवर है जिसे पद्मद्रह कहते हैं। यह सरोवर दस योजन गहरा और चार तोरण द्वार एवं वेदिकाओं से संयुक्त है। इस सरोवर में एक योजन ऊँचाई व विस्तार वाला, जल से आधा योजन ऊँचा और एक कोस विस्तृत कर्णिका से युक्त कमल है यह कमल पृथ्वीकायिक है। इसके ऊपर रत्नमय भवन में श्री देवी का निवास है। श्री देवी के गृह के परिवार स्वरूप वहाँ एक लाख चालीस हजार एक सौ पंद्रह अन्य कमल हैं। इस पद्म सरोवर के ईशान कोण में "वैश्रवण" नामक कूट, आग्नये दिशा में "श्री

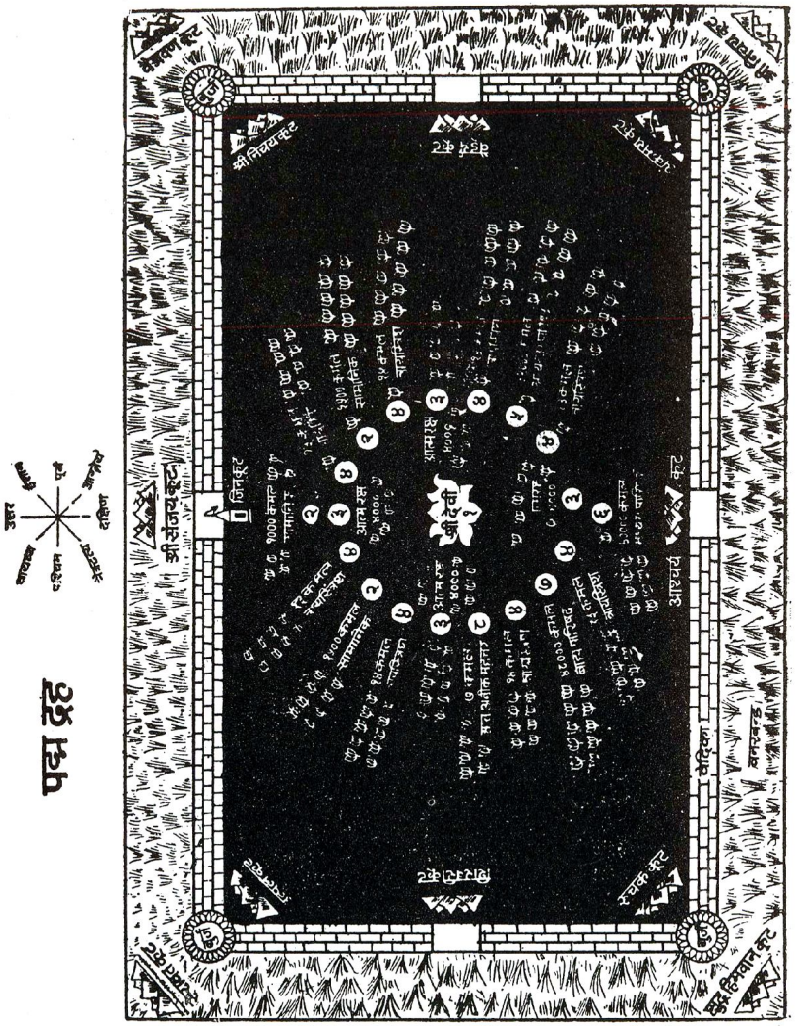

निचय कूट'' नैऋत भाग में ''क्षुद्र हिमवान्'' कूट और वायव्य कोण में ''ऐरावत' नाम का कूट है तथा इस सरोवर के उत्तर भाग में 'श्री संचय' नाम का कूट है। इन पाँच कूटों से हिमवान् पर्वत 'पंचशिखरी' इस नाम से संयुक्त है।

नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित ये सब कूट उपवन वेदियों से सहित और व्यंतरों के नगरों से रमणीय हैं। पद्म सरोवर के जल में उत्तर दिशा की ओर से प्रदक्षिणा के रूप में जिनकूट, श्री निचय, वैडूर्य, अंकमय, आश्चर्य, रुचक, शिखरी और उत्पल ये कूट उसके जल में तट वेदियों और वन वेदियों से सहित होते हुए व्यंतर नगरों से शोभायमान हैं।

इन कूटों में से प्रत्येक कूट की ऊँचाई 25 योजन है एवं ऊपर की चौड़ाई 12-1/2 योजन है। अर्थात् ये कूट 25 योजन ऊँचे, मूल में 25 योजन चौड़े, मध्य में 18-3/4 योजन चौड़े और ऊपर में 12-1/2 योजन चौड़े हैं।

कमल का वर्णन

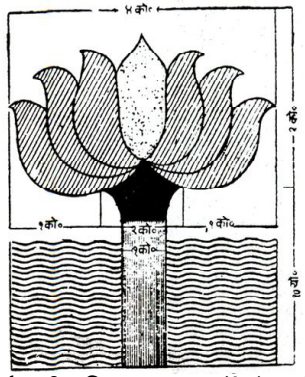

इस तालाब के मध्य में ब्यालीस कोस ऊँचा, एक कोस मोटा कमल का नाल है इसका मृणाल रजतमय है और तीन कोस मोटाई वाला है। इस कमल का कंद, अरिष्ट रत्नमय और नाल वैडूर्य मणि से निर्मित है। इसके ऊपर चार कोस ऊँचा किंचित् विकसित पद्म है। कर्णिका की ऊँचाई और लम्बाई दो-दो कोस मात्र है। इस कमल में 11 हजार दल हैं इस कर्णिका के ऊपर वैडूर्य मणिमय कपाटों से सहित और उत्तम स्फटिक मणि से निर्मित कूटागारों में श्रेष्ठ भवन है। इस भवन की लम्बाई 1कोस, विस्तार 1/2 कोस और ऊँचाई पौन कोस है।

इस भवन में श्री देवी निवास करती है इस देवी की आयु एक पल्योपम एवं शरीर दस धनुष ऊँचा है।

श्री देवी के सामानिक, आत्मरक्ष, तीनों प्रकार के पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक जाति के देव हैं। विविध प्रकार के अंजन और भूषणों से शोभित तथा सुप्रशस्त एवं विशालकाय वाले वे

सामानिक देव चार हजार प्रमाण हैं।

आत्मरक्ष देव चारों ही दिशाओं में चार-चार हजार होने से कुल 16000 हैं। अभ्यन्तर पारिषद देव 32000, मध्यम पारिषद 40000, एवं बाह्य पारिषद देव 48000 हैं। हाथी, घोड़ा, महारथ, बैल, गन्धर्व, नर्तक और दास इतनी सेनायें हैं। इनमें से प्रत्येक सात कक्षाओं से सहित हैं। प्रथम अनीक का प्रमाण सामानिक देवों के सदृश 4000 है। शेष छह सेनाओं में से प्रत्येक का प्रमाण दूना-दूना है। ये निर्मल शक्ति से संयुक्त देव हाथी आदि के शरीरों की विक्रिया करते हैं एवं माया, लोभ आदि से रहित होकर नित्य ही श्री देवी की सेवा करते हैं। उत्तम रूप व विनय से संयुक्त और बहुत प्रकार के उत्तम परिवार से सहित ऐसे एक सौ आठ प्रतीहार, मंत्री एवं दूत हैं। अन्य पद्मों पर स्थित बहुत से प्रकीर्णक देव हैं।

अर्थात्–

श्री देवी के सामानिक	4000
श्री देवी के आत्मरक्ष	16000
श्री देवी के अभ्यंतर पारिषद	32000
श्री देवी के मध्यम पारिषद	40000
श्री देवी के बाह्य पारिषद	48000

और भी अनीक, प्रकीर्णक आदि मिला करके इन देवों के कमल 140116 हैं। मूल श्री देवी के कमल के सामानिक देवों के कमल ईशान, उत्तर और वायव्य दिशा में है। आत्मरक्ष देव 4-4 हजार पूर्व आदि चार दिशाओं में हैं।

आग्नेय दिशा में अभ्यंतर पारिषद देवों के कमल हैं, दक्षिण दिशा में मध्यम पारिषद देवों के कमल हैं एवं बाह्य पारिषद देवों के कमल नैऋत दिशा में हैं।

सात अनीक देवों के सात कमल पद्मद्रह के पश्चिम प्रदेश में हैं। प्रतीहार आदि के 108 कमल मध्य कमल की दिशा-विदिशाओं में हैं। इन सभी कमलों पर सुंदर भवन बने हुए हैं। अतः इन भवनों (महानगरों) का प्रमाण भी 140116 है। इनके अतिरिक्त क्षुद्र भवनों की गणना करने के लिए कौन समर्थ है? पद्म सरोवरों में सभी उत्तम गृह पूर्वाभिमुख हैं और शेष क्षुद्र गृह यथा योग्य उनके सन्मुख स्थित हैं।

जिन मंदिरों का वर्णन

इन कमल पुष्पों पर जितने भवन कहे गए हैं उतने ही वहाँ पर विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित जिनगृह भी हैं। ये जिनभवन नाना प्रकार के तोरण द्वारों से सहित झारी, कलश, दर्पण, घंटा एवं ध्वजा आदिकों से परिपूर्ण हैं। इनमें उत्तम चामर, छत्र, सिंहासन, भामंडल, पुष्पवृष्टि आदि से संयुक्त जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

गंगा नदी का वर्णन

पद्म सरोवर की पूर्व दिशा से गंगा एवं पश्चिम दिशा से सिंधु नदी निकलती है।

उद्गम स्थान में गंगा नदी का विस्तार छह योजन एक कोस है इस नदी के निर्गमन स्थान में नौ योजन डेढ़ कोस ऊँचा दिव्य तोरण है।

इस तोरण द्वार का चामर, घंटा, किंकणी और सैकड़ों वंदनमालाओं से शोभित, झारी, कलश, दर्पण तथा पूजा द्रव्यों से रमणीय, रत्नमय स्तंभों पर नियोजित विचित्र और पुत्तलिकाओं से सुंदर वज्र, इंद्रनील, मरकत, कर्केतन एवं पद्मराग मणियों से युक्त, चंद्रकांत, सूर्यकांत प्रमुख मणियों की किरणों से अंधकार को नष्ट करने वाली जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये प्रतिमाएँ अकृत्रिम, अनुपम, छत्रत्रय आदि विभूतियों से सहित उत्तम रत्नमय, प्रकाशमान किरण समूहों से युक्त एवं विद्याधरों से पूजित हैं। इस तोरण पर सम भूभाग में विविध प्रकार के रत्न एवं सुवर्ण से निर्मित, वज्रमय कपाटों से सहित, चार तोरण व वेदिकाओं से संयुक्त प्रासाद हैं। इन भवनों में बहुत परिवार से युक्त निर्मल लावण्य रूप को प्राप्त दिक्कन्या देवियाँ निवास करती हैं।

पद्मद्रह से पूर्व दिशा में थोड़ी-सी दूर पर गंगा नदी के बीच में एक मणिमय कूट है। यहाँ मणिमय कूट विकसित कमल के आकार वाला रमणीय, वैडूर्यमणि नाल से युक्त है। इसके पत्ते अत्यंत लाल हैं और प्रत्येक पत्र का विस्तार 1/2 कोस मात्र है। पानी से ऊपर इस कूट की ऊँचाई एक कोस और विस्तार दो कोस है, यह सुवर्णमय पराग से संयुक्त है। इस कमलाकार कूट की रत्नमय कणिका एक कोस ऊँची और इतने ही विस्तार

से युक्त है। इसके ऊपर मणिमय दिव्य भवन स्थित हैं। इस भवन में 'बला' इस नाम से विख्यात, बहुत परिवार से युक्त व्यंतर देवी निवास करती है। इसकी आयु एक पल्य प्रमाण है।

इस प्रकार से यह गंगा नदी पद्म सरोवर से उसी पर्वत पर पाँच सौ योजन आगे जाकर और गंगा कूट तक न पहुँच कर उससे आधा योजन पहले ही दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। और 523-29/152 योजन प्रमाण पर्वत पर दक्षिण में आकर गंगा नदी पर्वत के तट पर स्थित जिह्विका को प्राप्त होती है। इस जिह्विका – नाली का विस्तार 6 योजन जल एक कोस, लम्बाई दो कोस और मोटाई भी दो कोस है। यह नाली वृषभाकार है। सींग, मुख, कान, जिह्वा और भृकुटी आदि से गाय के सदृश होने से इस नाली को गोमुख या वृषभाकार भी कहते हैं, यह रत्नमयी है। पर्वत के अंत में इस मणिमय उत्तम कूट के मुख में प्रवेश कर चंद्रमा के समान धवल और दस योजन विस्तार वाली गंगा की धारा नीचे गिरती है। वह गंगा नदी पृथ्वी पर्वत को पच्चीस योजन छोड़कर गंगा कुण्ड में गिरती है।

गंगा कुण्ड का वर्णन

हिमवान् पर्वत के नीचे पृथ्वी पर साठ योजन विस्तृत, समवृत्त, दस योजन गहरा, मणिमय सीढ़ियों से युक्त एक कुण्ड है। वह कुण्ड चार तोरण और वेदिका से युक्त है। उसके बहुमध्य भाग में रत्नों से विचित्र, चार तोरण एवं वेदिकाओं से शोभायमान एक द्वीप है। वह द्वीप जल के मध्य में दस योजन है, आठ योजन विस्तृत है तथा जल के ऊपर दो कोस ऊँचा है। इस द्वीप के मध्य में एक वज्रमय शैल – पर्वत स्थित है। इसका विस्तार मूल में 4 योजन, मध्य में 2 योजन एवं ऊपर 1 योजन है। यह पर्वत दस योजन ऊँचा और चार तोरण एवं वेदिकाओं से शोभायमान है। इस पर्वत पर बीचोंबीच में उत्तम रत्न एवं सुवर्ण से निर्मित, 'गंगा कूट' इस नाम से प्रसिद्ध एक दिव्य प्रासाद है। यह प्रासाद भी चार तोरणों से युक्त, उत्तम वेदी से वेष्टित, अतिविचित्र, हजारों यंत्रों से शोभित और अनुपम है। इसका प्रमाण मूल में तीन हजार, मध्य में दो हजार और ऊपर एक हजार धनुष प्रमाण विस्तार से युक्त है एवं यह दो हजार धनुष ऊँचा है। अतः यह भवन कूट के

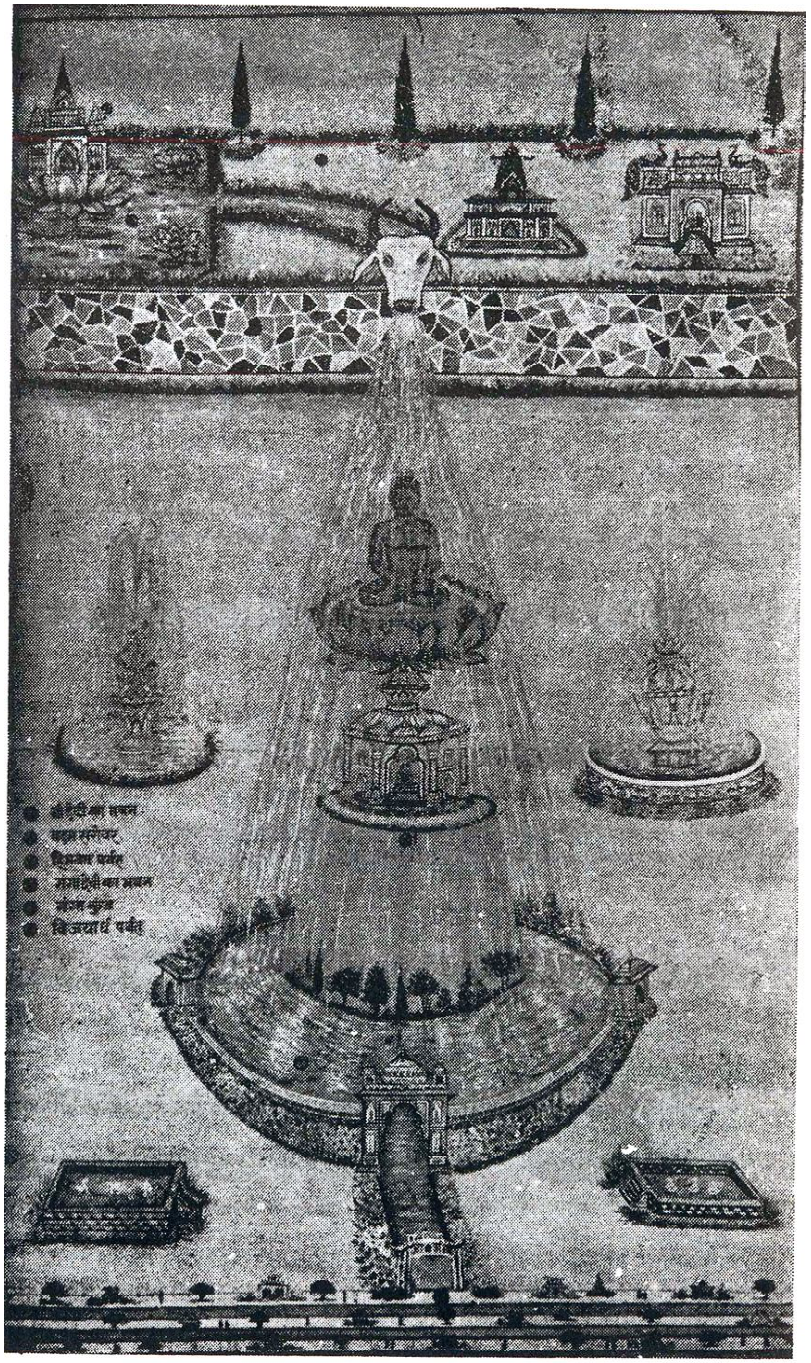

सदृश दिखता है। इस भवन का अभ्यन्तर विस्तार सात सौ पचास धनुष है। इस भवन का द्वार चालीस धनुष विस्तृत एवं अस्सी धनुष ऊँचा है। यह द्वार मणिमय तोरणों से शोभायमान नाना प्रकार के रत्नों की प्रभा से नित्य ही प्रकाशमान है। उत्तम वेदी से वेष्टित चार गोपुर एवं मंदिर से सुशोभित, रमणीय उद्यान से युक्त उस भवन में स्वयं गंगा देवी रहती हैं इस भवन के ऊपर कूट पर किरण समूह में संपूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करने वाली शाश्वतऋद्धि को प्राप्त ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमा विराजमान है। वह जिनेन्द्र प्रतिमा जटा मुकुट के शेखर से युक्त है। इस प्रतिमा के ऊपर वह गंगा नदी मानों मन में अभिषेक की भावना को रख कर गिरती है। यह जिनेन्द्र की प्रतिमा फूले हुए कमलासन पर विराजमान है और कमल के सदृश वर्ण वाली है।जो भव्य जीव इनका स्मरण करते हैं उन्हें निर्वाण प्रदान करने वाली है।

गंगा नदी के आगे बढ़ने का वर्णन

गंगा नदी इस कुण्ड के दक्षिण तोरण द्वार से निकलकर भूमि प्रदेश में मुड़ती हुई विजयार्ध पर्वत को प्राप्त हुई है। गंगा नदी के दोनों ही तट वेदियों पर स्थित वन खंड अत्रुटित रूप से विजयार्ध पर्वत तक चले गये हैं। गंगा तट वेदी संबंधी ये वनखंड उत्तम वज्रमय कपाटों के संवरण और प्रवेश भाग को छोड़कर शेष गुफा के भीतर हैं। विजयार्ध की गुफा में प्रवेश करने के स्थान पर गंगा नदी का विस्तार 8 योजन प्रमाण हो जाता है।

विजयार्ध पर्वत की गुफा में 25 योजन जाने पर उन्मग्ना और निमग्ना ये दो नदियाँ पूर्व-पश्चिम से आई हुई हैं। उन्मग्ना नदी का स्वभाव है कि वह अपने जल प्रवाह में गिरे हुए भारी से भारी द्रव्य को ऊपर ले आती है एवं निमग्ना नदी हल्के से हल्के द्रव्य को नीचे ले जाती है।

ये दोनों नदियाँ पर्वतीय गुफा कुण्डों के मणिमय तोरण द्वारों से निकलकर रत्न से निर्मित एक प्रकार के पुल से विभक्त, वन वेदी से वेष्टित प्रत्येक दो योजन प्रमाण विस्तार से सहित गंगा नदी के प्रवाह में प्रवेश करती है।

यह गंगानदी पचास योजन प्रमाण गुफा में जाकर इसके दक्षिण द्वार से निकलती है और 119-3/91 योजन दक्षिण भरत में आती है और पूर्व की ओर मुड़कर चौदह हजार प्रमाण परिवार नदियों से युक्त होती हुई अंत में

मागध तीर्थ पर पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है। गंगा नदी की ये कुण्डों से उत्पन्न हुई परिवार नदियाँ ढाई म्लेच्छ खंडों में ही हैं, आर्य खंड में नहीं हैं। लवण समुद्र में प्रवेश करते समय गंगा नदी का विस्तार 62-1/2 योजन और गहराई 5 योजन प्रमाण हो जाती है।

जम्बूद्वीप की वेदी के पास नदी के प्रवेश स्थान पर उत्तमोत्तम रत्नों से खचित और खम्भों पर स्थित पुत्तलिकाओं से युक्त दिव्य तोरण है। इस तोरण की ऊँचाई 93 योजन 3 कोस एवं चौड़ाई 62-1/2 योजन प्रमाण है। इन तोरणों पर भी तीन छत्र आदि से सहित, शाश्वत, स्मरण मात्र से ही पाप को नष्ट करने वाली, जिनेन्द्र प्रतिमाएँ स्थित हैं। इन उत्कृष्ट तोरणों के ऊपर चार तोरण और वेदी से युक्त वज्रमय कपाटों से रमणीय रत्न एवं सुवर्णमय भवन हैं। इन भवनों में नाना प्रकार के परिवार से युक्त दिक्कुमारी नामक व्यंतर देवियाँ निवास करती हैं।

सिंधु नदी का वर्णन

पद्म सरोवर के पश्चिम द्वार से सिन्धु नदी निकलती है। पर्वत पर ही थोड़ी दूर चलकर नदी के बीच में विकसित कमल सदृश वैडूर्य मणिमय नाल से युक्त एक उत्तम कूट है इसका सारा वर्णन पूर्ववत् है इस भवन में ''लवणा'' नामकी देवी रहती है। इसमें भी तोरण द्वार, सिन्धु कूट, आदि का वर्णन गंगा नदी के तुल्य ही समझना चाहिए, अंतर इतना ही है कि सिन्धु कूट में सिन्धु देवी का निवास है और यह नदी पश्चिम समुद्र में प्रभास तीर्थ के ऊपर गिरती है।

छह खंड का विभाजन

गंगा-सिंधु नदी और विजयार्ध पर्वत से भरत क्षेत्र के छह खंड हो गए हैं अतः उत्तर और दक्षिण भरत क्षेत्र में से प्रत्येक के तीन-तीन खण्ड हैं। इनमें से दक्षिण भरत के तीन खंड में से मध्य का आर्य खंड है। शेष पाँचों ही खंड म्लेच्छ खंड के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वृषभाचल का वर्णन

उत्तर भरत के तीन खंडों में से मध्यम खंड के बीचों-बीच में चक्रवर्तियों के मान का मर्दन करने वाला अनेक चक्रवर्तियों के नामों से व्याप्त रत्नों से

निर्मित ऐसा वृषभाचल पर्वत है। यह पर्वत सौ योजन ऊँचा, मूल में सौ योजन विस्तृत, मध्य में पचहत्तर योजन एवं शिखर पर पचास योजन प्रमाण है। इसके मूल में, मध्य में और ऊपर में वेदी तथा वन खण्ड स्थित हैं। इस पर्वत के शिखर पर चार तोरणों से सहित, पुष्करिणी एवं कूपों से परिपूर्ण वज्र, इंद्र नील, मरकत, कर्केतन और पद्मराग इन मणि विशेषों से निर्मित, विचित्र रचनाओं से मनोहर आकृति को धारण करने वाले, देदीप्यमान रत्नों के दीपकों से संयुक्त ऐसे उत्तम भवन हैं। इन भवनों में उत्तम रत्न एवं सुवर्ण से निर्मित विविध प्रकार के सुंदर आकारों वाले जिन भवन स्थित हैं इनका सब वर्णन पहले के ही समान है।

पर्वत के उपरिम भवन में विविध प्रकार के परिवार से सहित और 'वृषभ' इस नाम से प्रसिद्ध व्यंतर देव अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करते हुए निवास करता है। यह देव सर्वांग सुंदर है, दस धनुष प्रमाण शरीर की ऊँचाई एवं एक पल्य की आयु से युक्त है।

दक्षिण भरत के मध्य भाग के खंड का नाम आर्य खंड है इसके बीचों-बीच में 'अयोध्या' नगरी है। इस आर्य खंड में ही तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुष जन्म लेते हैं। आज की उपलब्ध दुनियाँ इसी आर्य खण्ड में ही है। इसमें षट्काल से परिवर्तन होता रहता है। इस समय पंचमकाल चल रहा है इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जाएगा। यहाँ तक षट्खंड युक्त भरत क्षेत्र एवं हिमवन् पर्वत का वर्णन पूर्ण हुआ है।

हैमवत् क्षेत्र

हैमवत् क्षेत्र का विस्तार हिमवान् पर्वत से दूना अर्थात् 2105-5/19 योजन (8421052-12/19 मील) प्रमाण है।

शब्दवान् वृत्तवैताढ्य

इस क्षेत्र के बिल्कुल बीचों-बीच में एक हजार योजन ऊँचा एवं इतना ही विस्तार वाला सदृश गोल 'शब्दवान' नामक नाभिगिरि स्थित है।

इस पर्वत का भूमि में विस्तार 1000 योजन मध्य विस्तार 750 योजन और ऊपरी भाग का विस्तार 500 योजन प्रमाण है इस पर्वत की परिधि

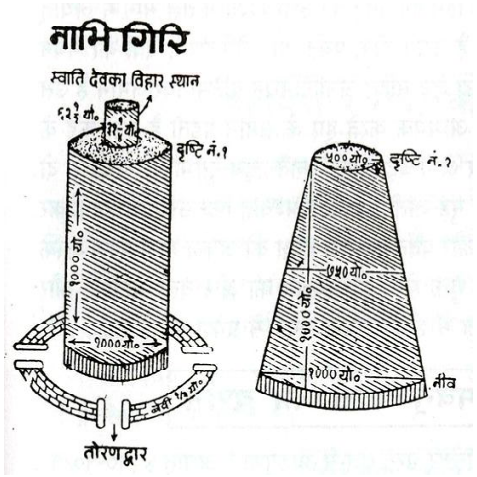

3162 योजन प्रमाण है। यह पर्वत मूल और उपरिम भागों में वेदी एवं उपवनों से संयुक्त है। वेदी और उपवनों का विस्तार हिमवान् पर्वत के सदृश है अर्थात् भूमि तल पर पर्वत के चारों तरफ 2 कोस ऊँची, 500 धनुष विस्तार से युक्त वेदी है। पर्वत के चारों तरफ अर्ध योजन प्रमाण विस्तार से युक्त वनखंड है। इस पर्वत के शिखर पर चारों तरफ पद्मराग मणिमय दिव्य वेदिका है। वन, भवन और वेदी का वर्णन पूर्ववत् ही है। इस पर्वत की वन वेदी बहुत तोरण द्वारों से संयुक्त, विचित्र रत्नमयी मार्ग व अट्टालिकाओं से सहित, लहराती हुई अनेक ध्वजा पताकाओं से सुंदर है। इस पर्वत के ऊपर मध्य भाग में अनेक तोरण व वेदियों से युक्त, सुंदर प्रतिमाओं से सहित दिव्य जिन भवन हैं एवं जिन भवन के चारों तरफ रत्नमय प्रासाद हैं। ये प्रासाद सात, आठ तलों से शोभित हैं। वहाँ पर दस धनुष ऊँची अवगाहना का धारक 'शाली' नामक व्यंतर देव बहुत से परिवार से युक्त होकर रहता है। इस व्यंतर देव की आयु एक पल्य प्रमाण है। कोई आचार्य नाभिगिरि को मध्य और ऊपर में घटता हुआ न मानकर सर्वत्र 1000 योजन ही मानते हैं। उपरोक्त दृष्टि नं. 1 व दृष्टि नं. 2 स्पष्ट है।

रोहितास्या नदी का वर्णन

हिमवान् पर्वत के पद्मसरोवर के उत्तर भाग से रोहितास्या नामक नदी निकलकर दो सौ छियत्तर योजन से कुछ अधिक दूर तक पर्वत के ऊपर जाती है। इस नदी का विस्तार, तोरणों के अंतर, कूट, प्रणालिका स्थान, धारा का विस्तार, कुण्ड, द्वीप, अचल और कूट का विस्तार, तोरण द्वार में तोरण स्तम्भ इन सबका वर्णन गंगा नदी के सदृश ही है। विशेष यह है कि यहाँ पर इन सबका विस्तार गंगा नदी की अपेक्षा दूना है। हिमवान् पर्वत की

उत्तर दिशा में तल भाग में अर्थात् हैमवत क्षेत्र में पूर्ववत् कुण्ड है उसमें द्वीप, पर्वत और रोहितास्या देवी का भवन है। उस भवन की छत पर जटा जूट सहित अनादिनिधन जिनप्रतिमा विराजमान है उस पर रोहितास्या नदी की धार अभिषेक करते हुए के समान पड़ती है पुनः कुंड के उत्तर तोरण द्वार से निकलकर आगे बढ़ती हुई 'वृत्तवैताढ्य-नाभिगिरि' पर्वत से दो कोस पूर्व ही पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। इसके पश्चात् फिर उत्तराभिमुख होकर कुटिल रूप से आगे जाती है और पर्वत के मध्य प्रदेश को अपना मध्य प्रदेश करके 28 हजार परिवार नदियों से युक्त होती हुई पश्चिम की ओर चली जाती है और जम्बूद्वीप की जगती की गुफा में होकर लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

महाहिमवन् पर्वत का वर्णन

महाहिमवन् पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से आठगुणा है अर्थात् 4210-10/19 योजन (16842105-5/19 मील) है। इस पर्वत की ऊँचाई 200 योजन (800000 मील) है यह पर्वत चाँदी के सदृश है। इस महाहिमवान् पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में रमणीय वेदी और वन हैं।

इनकी लम्बाई इसी पर्वत के बराबर है एवं विस्तार आदि हिमवान् पर्वत के समान है। इसी पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा के क्रम से सिद्धकूट, महाहिमवन्, हैमवत्, रोहित, ह्री, हरिकांत, हरिवर्ष और वैडूर्य ये आठ कूट हैं। हिमवान् पर्वत के कूटों से इन कूटों की ऊँचाई और विस्तार आदि सब दुगुना-दुगुना है। जिन नामों के ये कूट हैं, उन्हीं नाम वाले व्यंतर देव एवं देवी उन कूटों पर रहते हैं। ये सभी देव-देवियाँ अनुपम रूप युक्त शरीर के धारक बहुत से परिवार देवों से युक्त हैं।

महापद्म सरोवर

महाहिमवन् पर्वत पर महापद्म नाम का सरोवर है। जो 1000 योजन चौड़ा, 2000 योजन लम्बा है 20 योजन गहरा है। इसके मध्य में जो कमल है वह पद्म सरोवर के कमल से दूना है अर्थात् 8 कोस का है। इस कमल के ऊपर स्थित प्रासाद में बहुत परिवार से युक्त तथा श्री देवी के सदृश वर्णनीय गुणों से परिपूर्ण 'ह्री' देवी निवास करती है। इस ह्री देवी के परिवार

और कमलों की संख्या श्री देवी से दूनी है यथा-280232 परिवार कमल हैं। इस तालाब में जितने प्रासाद हैं उनमें उतने ही रमणीय जिन भवन भी हैं।

महापद्म सरोवर के कूट

इस सरोवर के ईशान दिशा में वैश्रवण नाम का कूट, दक्षिण दिशा में श्री निचय कूट, नैऋत्य दिशा में महाहिमवन् कूट, वायव्य दिशा में ऐरावत कूट और उत्तर दिशा में श्री संचय कूट स्थित है। इन पंच कूटों से महाहिमवन् पर्वत भी 'पंचशिखरी' कहलाता है। ये सब कूट व्यंतर नगरों से परम रमणीय और उपवन वेदियों से संयुक्त हैं। तालाब के उत्तर पार्श्व भाग के जल में जिन कूट है।

श्री निचय, वैडूर्य, अंकमय, आश्चर्य, रूचक, उत्पल और शिखरी ये कूट जल में प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं।

रोहित् नदी

इस सरोवर के दक्षिण तोरण द्वार से प्रचुर जल से संयुक्त रोहित् नदी निकलती है और पर्वत पर एक हजार छः सौ पाँच योजन अर्थात् 1605-5/19 योजन प्रमाण दक्षिण की ओर आती है। यह नदी भी गंगा नदी के समान कुंड पर स्थित 'रोहित देवी' के भवन पर जिन प्रतिमा का अभिषेक कराते हुए के समान गिरती है एवं कुंड के दक्षिण तोरण द्वार से निकल कर हैमवत क्षेत्र में 'नाभिगिरि' की प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वाभिमुख होकर आगे जाती है। इस प्रकार यह रोहित् नदी उस हैमवत क्षेत्र के बहुमध्य भाग से जम्बूद्वीप की वेदी की बिल–गुफा में जाकर अट्ठाईस हजार परिवार नदियों से सहित समुद्र में प्रवेश करती है।

इस हैमवत क्षेत्र में जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था है जो कि शाश्वत है। आगे षट्काल के परिवर्तन में भोग भूमियों का वर्णन किया जायेगा।

हरिक्षेत्र एवं निषध पर्वत का वर्णन

हरिवर्ष क्षेत्र का विस्तार महाहिमवन् से दूना अर्थात् 8421-1/19 योजन 33684210-10/19 मील है। इस क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। यह क्षेत्र हानि वृद्धि से रहित एक सदृश ही रहता है। इस क्षेत्र

के बिल्कुल बीच में 'विजयवान्' नाम का नाभिगिरि स्थित है, उसका वर्णन 'शब्दवान्' नाभिगिरि के सदृश है। यहाँ पर सर्व दिव्य वर्णन से संयुक्त चारण देव रहते हैं। महापद्म सरोवर के उत्तर भाग संबंधी तोरण द्वार से हरिकांता नदी निकलकर पर्वत के ऊपर से जाती है। यह नदी एक हजार छह सौ पाँच योजन अर्थात् 1605-5/15 योजन प्रमाण पर्वत के ऊपर आकर नाली के द्वारा कुंड में गिरती है। पश्चात् वह नदी दो कोस से नाभिगिरि को छोड़कर उसकी प्रदक्षिणा करते हुए के समान पश्चिम की ओर जाती है। यह नदी छप्पन हजार परिवार नदियों के साथ जम्बूद्वीप की वेदिका की गुफा में होती हुई पश्चिमसमुद्र में प्रवेश करती है। विशेषता यह है कि जहाँ कुंड में यह नदी गिरती है वहाँ पर कुंड में स्थित पर्वत पर हरिकांता देवी का महल है। बाकी वर्णन पूर्ववत् है। कुंड का विस्तार आदि प्रमाण रोहित् नदी की अपेक्षा दूना है।

निषध पर्वत

निषध पर्वत का विस्तार 16842-2/19 योजन 67368421-1/19 मील है। इसकी ऊँचाई चार सौ योजन एवं वर्ण तपाए हुए स्वर्ण के समान है। इस पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में बहुत प्रकार के उत्तम वृक्षों से सहित, तोता, कोयल, मयूर आदि पक्षियों से युक्त रमणीय वन खण्ड हैं। ये सब वनखंड पवर्त की लम्बाई के समान लम्बे, उत्तम वापी एवं कूपों से संयुक्त हैं इनका सभी वर्णन पहले के समान है।

निषध पर्वत के कूटों का वर्णन

निषध पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा के क्रम से सिद्धकूट, निषध, हरिवर्ष, विदेह, हरि, विजय, सीतोदा, अपरविदेह और रूचक ये नौ कूट स्थित हैं। इन कूटों की ऊँचाई आदि सब हिमवान् पर्वत के कूटों से चौगुणी है। विशेषता केवल यह है कि कूटों पर स्थित भवन हिमवान् पर्वत संबंधी भवनों के सदृश हैं, सिद्धकूट पर स्थित जैन चैत्यालय भी पूर्ववत हैं। जिस नाम के धारक ये कूट हैं उसी नाम के धारक व्यंतर देव उन कूटों पर निवास करते हैं। ये देव बहुत परिवारों से युक्त एक पल्य प्रमाण आयु वाले और दस धनुष ऊँचे हैं।

तिगिंछ सरोवर

निषध पर्वत के मध्य भाग में पद्म सरोवर की अपेक्षा चौगुने विस्तार आदि से सहित और 'तिगिंछ' नाम से प्रसिद्ध एक दिव्य सरेावर है इस सरोवर की लम्बाई 4000 योजन, चौड़ाई 2000 योजन, और गहराई 40 योजन की है।

कमल का वर्णन

इस सरोवर में जो मुख्य कमल है वह चार योजन का है। इस कमल के भवन पर 'धृति देवी' निवास करती है। इस देवी के परिवार कमलों की संख्या 'ह्री देवी' के परिवार कमलों से दूनी है। धृति देवी के 560464 परिवार कमल हैं। धृति देवी की आयु एक पल्य प्रमाण है। नाना प्रकार के रत्नों से भूषित शरीर वाली, अतिरमणीय है और व्यंतरवासिनी है। उस सरोवर में जितने पद्म गृह हैं, उतने ही जिन भवन हैं, जो कि भव्यजनों को आनंदित करने वाले हैं एवं किन्नर देवों के युगलों से संकीर्ण हैं।

सरोवर संबंधी कूटों का वर्णन

तिगिंछ सरोवर की ईशान दिशा में मनोहर वैश्रवण कूट, दक्षिण दिशा में श्री निचय, नैऋत्य दिशा में निषध कूट, वायव्य दिशा में ऐरावत और उत्तर दिशा में श्रीसंचय नाम का कूट है। इन कूटों से पर्वत 'पंचशिखरी' नाम से प्रसिद्ध है। ये कूट उत्तम वेदिकाओं से सहित और व्यंतर नगरों से अतिशय रमणीय हैं। ऊपर पार्श्व भाग में जल में जिनकूट है।

इस सरोवर के जल में श्री निचय, वैडूर्य, अंकमय अंबरीक, रुचक, शिखरी और उत्पल कूट स्थित है।

हरित् नदी

तिगिंछ सरोवर के दक्षिण द्वार से निकल कर यह हरित नदी 7321-1/19 योजन तक पर्वत पर आती है पश्चात् गोमुखाकार प्रणालिका द्वार से नीचे गिरती है। यहाँ पर भी पर्वत की तलहटी में गिरने के स्थान में कुंड है उस पर पूर्वोक्त भवन के ऊपर जिन प्रतिमा स्थित है। इस जिनेन्द्र प्रतिमा का अभिषेक करते हुए के समान यह हरित् नदी गिरती है पुनः कुंड के दक्षिण

तोरण द्वार से निकलकर नाभिगिरि-वृत्त वैताड्य को दूर से ही छोड़कर प्रदक्षिणा के आकार से होती हुई हरिवर्ष क्षेत्र में बहती हुई पूर्व की ओर चली आती है। यह नदी छप्पन हजार परिवार नदियों से युक्त और नील पर्वत के दक्षिण भागों में होती हुई जम्बूद्वीप की जगती के बिल में प्रवेश करती हुई पूर्व लवण समुद्र में प्रवेश करती है। इस हरित् नदी का विस्तार व गहराई आदि हरिकान्ता नदी के सदृश है।

इन जघन्य, मध्यम भोग भूमियों के नदी-सरोवर आदिक स्थान जलचर जीवों से रहित होते हैं।

विदेह क्षेत्र का वर्णन

निषध पर्वत के बाद इस पर्वत से दूने विस्तार वाला विदेह क्षेत्र है। 33684 योजन, (134736842-2-19 मील) है।

निषध पर्वत के उत्तर भाग में दोनों पर्वतों के मध्य भाग में विदेह क्षेत्र है इस विदेह क्षेत्र के बीचों-बीच में सुमेरु पर्वत स्थित है। इसके सुदर्शन, मेरु, मन्दर पर्वत आदि अनेकों नाम हैं। इस सुमेरु पर्वत के निमित्त से विदेह क्षेत्र के दो भेद हो गये हैं पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह। पुनः सीता नदी और सीतोदा नदी के निमित्त से पूर्व विदेह के भी दक्षिण उत्तर के भेद से दो भेद हो गये हैं और पश्चिम विदेह के सीतोदा के निमित्त से तीन भेद हैं।

सुमेरु पर्वत

विदेह क्षेत्र के बीचों-बीच में दोनों कुरु क्षेत्रों के समीप से निन्यानवे हजार, चालीस योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत स्थित है। इसकी नींव एक हजार योजन नीचे है। इस मेरु का विस्तार नींव के तल भाग में 10090-10/11 योजन प्रमाण है। ऊपर में भद्रशाल वन के पास में इस मेरु का विस्तार दस हजार योजन है।

इस भद्रशाल वन में मेरु की परिधि 31622 योजन, 3 कोस, 212 धनुष 3 हाथ, 13 अंगुल प्रमाण है।

मेरु पर्वत के ऊपर 500 योजन जाकर नंदन वन स्थित है। इस नंदन वन का विस्तार भी चारों तरफ (कटनी रूप से) 500 योजन प्रमाण है। नंदन

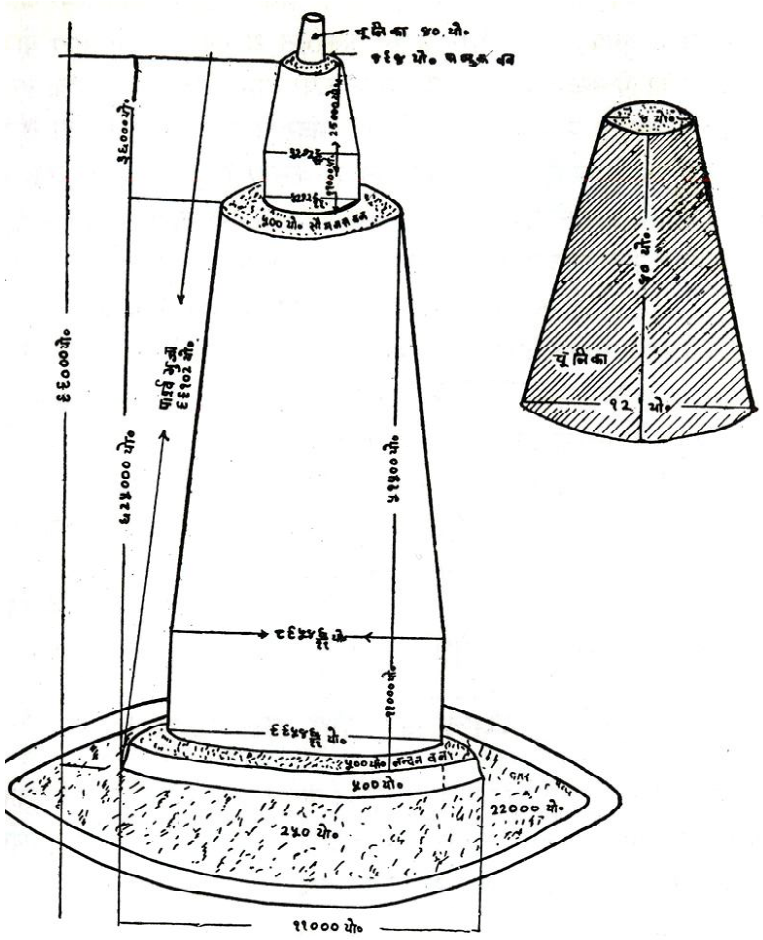

वन के 62500 योजन ऊपर जाकर सौमनस नामक वन स्थित है इसका विस्तार भी चारों तरफ 500 योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से 36000 योजन ऊपर जाकर मेरु के शिखर पर पांडुक वन स्थित है। इस पांडुक वन की कटनी का विस्तार 494 योजन प्रमाण है इसके ठीक मध्य में 40 योजन प्रमाण ऊँची मेरु पर्वत की चूलिका स्थित है।

सुमेरु पर्वत का भ्रदशाल वन के पास विस्तार – 10000 योजन।
भद्रशाल से नंदन वन तक ऊँचाई – 500 योजन।
नंदन वन से सौमनस की ऊँचाई – 62500 योजन।

सौमनस से पांडुक की ऊँचाई – 36000 योजन।
चूलिका की ऊँचाई – 40 योजन है।

यह मेरु पर्वत क्रम से हानि रूप होता हुआ पृथ्वी से 500 योजन ऊपर जाकर उस स्थान में युगपत् 500 योजन प्रमाण संकुचित हो गया है। इस 500 योजन की कटनी को ही नंदन वन कहते हैं। इसके ऊपर ग्यारह योजन तक समान विस्तार है। अर्थात् पाँच सौ योजन के बाद अंदर में पाँच सौ योजन की कटनी हो जाने से 11 योजन में 1 योजन की हानि का क्रम यहाँ 11000 योजन तक नहीं रहा है। पुनः वही घटने का क्रम 51500 योजन तक होता गया है। इस 51500 योजन प्रमाण ऊपर जाने पर पुनः वह पर्वत सब ओर से युगपत् 500 योजन संकुचित हो गया है। इस कटनी का नाम सौमनस वन है। पुनरपि इसके आगे 11000 योजन ऊपर तक सर्वत्र समान विस्तार है। फिर क्रम से हानि रूप होकर 25000 योजन जाने पर वह पर्वत युगपत् 494 योजन प्रमाण संकुचित हो गया है। इस प्रकार से सम्पूर्ण पर्वतों के स्वामी और उत्तम देवों के आलय स्वरूप इस अनादि निधन मेरु पर्वत की ऊँचाई 1 लाख 40 योजन प्रमाण है।

नीव नंदन समविस्तार सौमनस समविस्तार पांडुक
1000 + 500 + 11000 + 51500 + 11000 + 25000=100000 योजन
एवं इसकी चूलिका 40 योजन प्रमाण है।

सुमेरु पर्वत के वर्ण का कथन

यह सुमेरु पर्वत मूल में एक हजार योजन प्रमाण वज्रमय, पृथ्वी तल से इकसठ हजार योजन प्रमाण उत्तम रत्नमय, आगे अड़तीस हजार योजन प्रमाण सुवर्णमय है एवं ऊपर की चूलिका नील मणि से बनी हुई है।

सुमेरु पर्वत की हानि वृद्धि का क्रम

मेरु का विस्तार भूमि के ऊपर भद्रशाल वन में 10000 योजन प्रमाण है। यही विस्तार 99000 योजन ऊपर जाकर क्रमशः हीन होता हुआ 1000 योजन मात्र रह गया है। अतएव 'भूमि में से मुख को कम करके शेष को ऊँचाई से भाजित करने पर हानि वृद्धि का प्रमाण होता है' इस नियम के

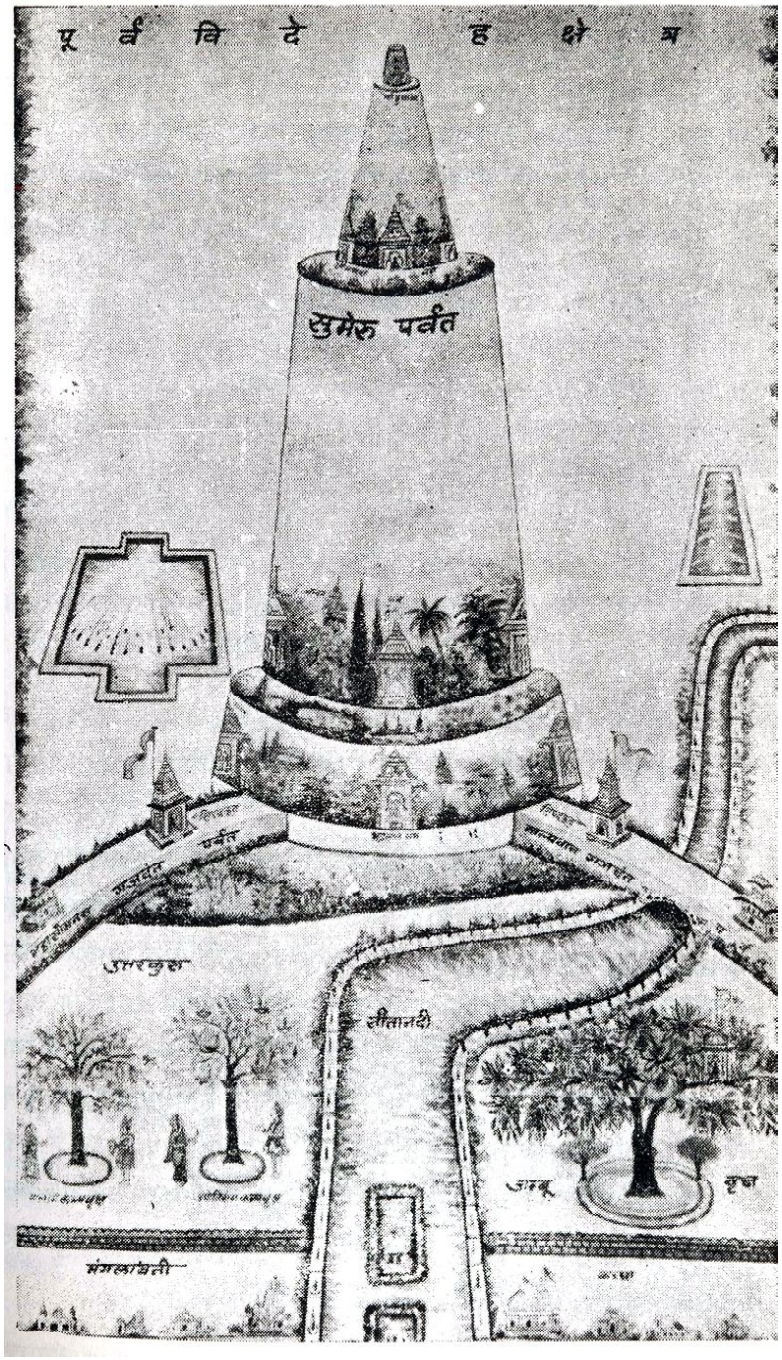

अनुसार यहाँ हानि वृद्धि का प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है-नीचे के प्रमाण को 'भूमि' एवं ऊपर के प्रमाण को 'मुख' कहते हैं। यथा-10000-1000=9000, 9000÷99000=1/11 योजन। मेरु के विस्तार में एक योजन की ऊँचाई पर भूमि की ओर से हानि और मुख की ओर से वृद्धि होती गयी है। यहाँ मेरु पर्वत के विस्तार में मूलतः 1 प्रदेश से लेकर 11 प्रदेशों पर 1 प्रदेश की हानि हुई है। इसी प्रकार से मूलतः 11 अंगुलों पर 1 अंगुल की, 11 हाथ पर 1 हाथ की, 11 योजन पर 1 योजन की हानि होती गयी है। एवं 11000 योजन की ऊँचाई पर 1000 योजन घटता है अतः 99000 योजन की ऊँचाई पर अर्थात् पांडुक वन के पास 1000 योजन मात्र रह जाता है।

यथा-

चूँकि 11000 योजन में घटता है 1000 योजन।

इसलिये 1 योजन में घटता है $\frac{1000}{11000}$

इसलिये 99000 योजन में घटता है $\frac{1000}{11000} \times 99000$

$= 9000$ योजन

चूलिका का वर्णन

इस मेरु पर्वत की चूलिका की ऊँचाई का प्रमाण 40 योजन, नीचे पांडुक वन में चौड़ाई 12 योजन, मध्य में 8 योजन एवं शिखर के अग्रभाग में 4 योजन मात्र है। एक योजन 2000 कोश का है और एक कोश में दो मील मानने से यह चूलिका का अग्र भाग 4 को 4000 से गुणा करने पर 16000 मील प्रमाण है। यथा-4×4000=16000 मील। इस पर्वत की परिधि क्रमशः नीचे से हरितालमयी, वैडूर्य-मणिमयी, रत्नमयी, वज्रमयी, इसके ऊपर पद्ममयी और इससे भी ऊपर पद्मरागमयी है। मंदर पर्वत की इन 6 परिधियों में से प्रत्येक परिधि का प्रमाण 16500 योजन मात्र है। इस पर्वत की सातवीं परिधि नाना प्रकार के वृक्ष समूहों से व्याप्त और बाहर से ग्यारह प्रकार है। ये ग्यारह भेद क्रमशः ये हैं– भद्रशाल वन में नाम से भद्रशाल, मानुषोत्तर, देवरमण, नागरमण और भूतरमण ये पाँच वन हैं। नंदन वन में नंदन और

उपनंदन वन, सौमनस में सौमनस और उपसौमनस वन, पाण्डुकवन में पांडुक और उपपांडुक वन हैं – सौमनस तथा नंदन वन मेरु पर्वत के सानु – कटनी प्रदेशों में और चौथा भद्रशाल वन भूमि पर स्थित है।

मेरु पर्वत के शिखर का विस्तार

शिखर का विस्तार 1000 योजन और उसकी परिधि 3162 योजन से कुछ अधिक है। यहाँ पांडुक वन की कटनी 494 योजन है। अतः बीच में बचे 12 योजन जो कि चूलिका की चौड़ाई है।

सुमेरु की कटनी के स्थान का प्रमाण

सम भूमितल में भद्रशाल वन के पास विस्तार 10,000 योजन प्रमाण है क्रम से घटते हुए नंदन वन के पास बाह्य भाग में 9954-6/11 योजन है। नंदन वन के अभ्यंतर भाग में 9954-6/11 योजन प्रमाण है। आगे क्रम से घटते हुए सौमनस वन के पास बाह्य भाग में 4272-8/11 योजन एवं उसी वन के अभ्यंतर भाग में 3272-8/11 योजन है। आगे घटते-घटते पांडुक वन के बाह्य भाग में 1000 योजन एवं अभ्यंतर भाग में 494 योजन की कटनी होने से 12 योजन मात्र रह गया है जो कि चूलिका का विस्तार मात्र है।

पाण्डुक वन का वर्णन

पांडुक वन में चारों ओर मार्ग एवं अट्टालिकाओं में विशाल और अनेक प्रकार की ध्वजा पताकाओं से संयुक्त ऐसी अति रमणीय दिव्य तटवेदी है अर्थात् पांडुकवन के तट पर चारों तरफ परकोटे के समान वेष्टित किये हुए तटवेदी है उसके गोपुरों पर रत्नमय देवभवन हैं। उस वेदी के मध्य में पर्वत की चूलिका को चारों ओर से वेष्टित किये हुये पांडुक नामक वन खण्ड हैं, इन वनखंडों में कर्पूर, तमाल, ताल, कदली, लवंग, दाडिम, पनस, सप्तच्छंद, मल्लि, चंपक, नारंगी, मातुलिंग, पुनांग, नाग, कुब्जक, अशोक आदि वृक्ष शोभायमान हैं।

इस पांडुकवन में चारों दिशाओं में चार चैत्यालय और चारों ही विदिशाओं में चार शिलायें स्थित हैं। इन शिलाओं के नाम क्रम से पांडुकशिला, पांडुकम्बला, रक्ताशिला और रक्तकंबला हैं।

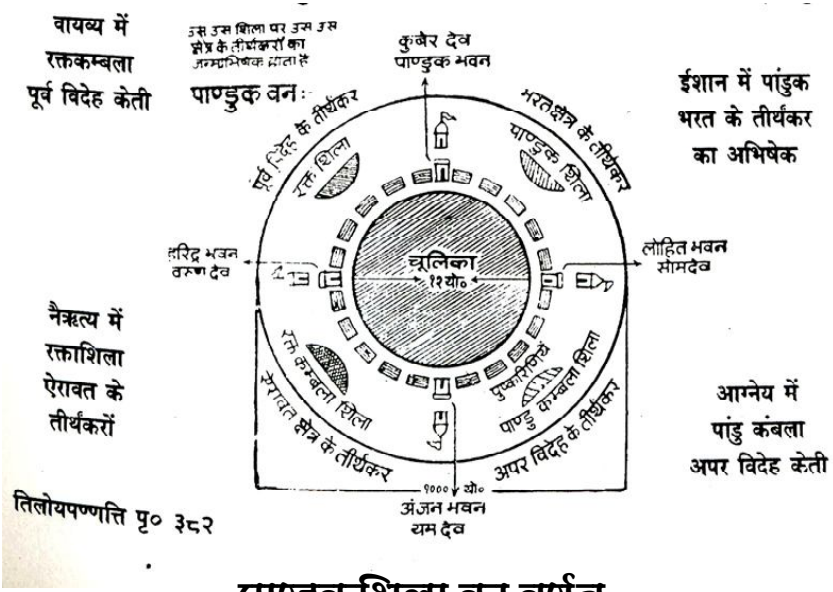

तिलोयपण्णत्ति पृ० ३८२

पाण्डुकशिला का वर्णन

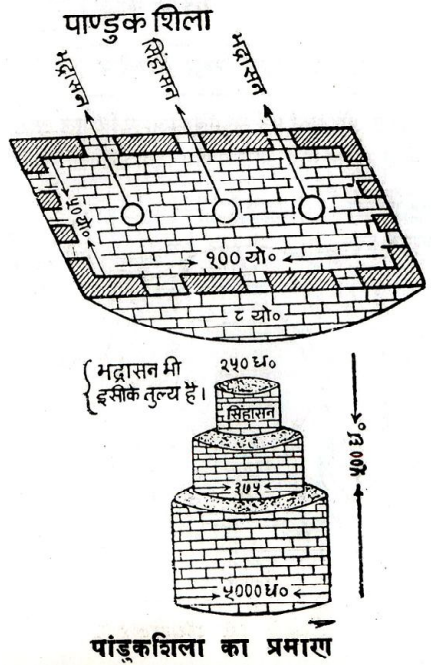

यह पांडुकशिला अर्धचन्द्रमा के सदृश आकार वाली है। यह पूर्व पश्चिम में 100 योजन लंबी, दक्षिण उत्तर में 50 योजन चौड़ी है इसके बहुमध्य भाग में दोनों ओर से क्रमशः हानि होती गई है यह शिला 8 योजन ऊँची है ऊपर समवृत आकार है, वन वेदी से संयुक्त सुवर्णमयी है।

पाण्डुक शिला का प्रमाण

लंबाई
100 यो.400000 मील
चौड़ाई
50 यो.200000 मील
ऊँचाई
8 योजन 32000 मील

सिंहासन आदि का वर्णन

इस पांडुकशिला के मध्य में शरत्कालीन सूर्य मंडल के सदृश प्रकाशमान उन्नत सिंहासन स्थित है। इसके दोनों तरफ, दिव्यरत्नों से रचित दो भद्रासन हैं। एक सिंहासन, दो भद्रासन इन तीनों की ऊँचाई पृथक्-पृथक् 500 धनुष है। मूल में विस्तार 500 धनुष एवं ऊपर विस्तार 250 धनुष है। ये सिंहासन धवल, छत्र, चामर, घंटिकाओं से शोभित एवं पूर्वाभिमुख स्थित हैं।

सौधर्म इंद्र भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुये तीर्थंकरों को बड़े वैभव के साथ लाकर मध्यम सिंहासन पर विराजमान करके 1008 कलशों से महान् अभिषेक करते हैं।

अन्य तीन शिलाओं का वर्णन

पांडुक वन में आग्नेय दिशा में उत्तर-दक्षिण दीर्घ और पूर्व-पश्चिम में विस्तीर्ण रजतमयी पांडुकंबला शिला है। उसका सारा वर्णन पांडुकशिला के समान है। इस शिला पर सौधर्म इंद्र पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

नैऋत्य दिशा में 'रक्ताशिला' नामक सुवर्णमयी शिला है, जो पूर्व-पश्चिम में दीर्घ और उत्तर में विस्तृत है इसकी भी ऊँचाई आदि पांडुकशिला के सदृश है। यहाँ पर इंद्र ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न हुये तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

वायव्य दिशा में उत्तर-दक्षिण दीर्घ और पूर्व-पश्चिम विस्तीर्ण 'रक्त-कंबला' नामक लाल वर्ण वाली शिला है, इसका वर्णन भी पूर्ववत् है। इस शिला पर इंद्र पूर्व विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

पांडुक वन में स्थित लोकपाल के देवों के भवनों का निर्माण

पांडुक वन में चूलिका के पास पूर्वदिशा में 30 कोस प्रमाण विस्तार से सहित 'लोहित नामक' गोलाकार प्रासाद है। यह भवन अनेक प्रकार के उत्तम रत्नों से खचित, दिव्य धूप आदि से व्याप्त रमणीय शय्या आदि से सुशोभित पूर्वमुख वाला है। इस भवन के मध्य में विचित्र रत्नों से निर्मित एक

क्रीड़ा पर्वत है इस पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा का स्वामी, सौधर्म इंद्र का 'सोम' नामक लोकपाल क्रीड़ा करता है।

इसी प्रकार पांडुक वन में चूलिका के पास दक्षिण दिशा की ओर अंजन नामक भवन है इसका विस्तार आदि वर्णन पूर्वोक्त के सदृश है। इस 'अंजन भवन के मध्य में अरिष्ट नामक विमान का प्रभु 'यम' नामक लोकपाल निवास करता है।

इसी प्रकार पांडुकवन में पश्चिम दिशा की ओर पूर्व भवन के समान विस्तार आदि से सहित 'हारिद्र' नामक प्रासाद है। इस भवन में 'जलप्रभ' विमान का स्वामी 'वरुण' नामक लोकपाल रहता है।

इसी प्रकार पांडुक वन में उत्तर दिशा की ओर पूर्वोक्त भवन के सदृश 'पांडुक' नामक प्रासाद है इस भवन में वल्गुविमान का स्वामी 'कुबेर' नामक लोकपाल क्रीड़ा करता है।

लोकपालों का परिवार एवं देवियाँ आदि

इन चारों ही लोकपालों के परिवार छः लाख छ्यासठ हजार छह सौ छ्यासठ प्रमाण हैं एवं चारों में एक-एक की देवांगनायें साढ़े तीन करोड़ प्रमाण हैं जोकि कल्पवासिनी हैं।

सोम लोकपाल के वाहन, वस्त्र, विमान आदि अत्यंत लाल वर्ण के होते हैं।

यम लोकपाल के वस्त्रादि वाहन अत्यंत काले, वरूण के वस्त्रादि सुवर्ण वर्ण के एवं कुबेर के वाहन आदि अत्यंत धवल होते हैं।

पांडुकवन के चैत्यालयों का वर्णन

इस वन के मध्य में चूलिका से पूर्व की ओर सौ कोस प्रमाण उत्तर-दक्षिण दीर्घ, पचास कोस प्रमाण पूर्व-पश्चिम विस्तार वाला, पचहत्तर कोस ऊँचा, अर्धकोस, नींव सहित अनादि अनिधन जिनेन्द्र प्रासाद है। यह जिन भवन पूर्वाभिमुख है। इसके प्रमुख द्वार की ऊँचाई 16 कोस एवं विस्तार 8 कोस प्रमाण है। इस मंदिर में उत्तर-दक्षिण भाग में दो क्षुद्रद्वार हैं जो प्रमुख द्वार की अपेक्षा आधे प्रमाण वाले हैं। ये तीनों ही द्वार दिव्यतोरण स्तंभों से संयुक्त हैं। यह जिन भवन कुंद पुष्प सदृश धवल मणियों से निर्मित,

अंधकार को नष्ट करने वाला ''त्रिभुवन तिलक'' इस नाम से प्रसिद्ध है इसके कपाट कर्केतन आदि मणियों से निर्मित वज्रमयी हैं।

इसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में भी इसी वर्णन से युक्त 'जिन भवन' हैं।

ये जिन भवन मोतियों की माला तथा चामरों से युक्त, उत्तम रत्नों से सहित बहुत प्रकार के चंदोबों से संयुक्त हैं। वसतिका में गर्भगृह के भीतर दो योजन ऊँचा, एक योजन विस्तार वाला और चार योजन लम्बाई से संयुक्त देवच्छंद है। यह देवच्छंद लटकती हुई पुष्प मालाओं से सहित चित्र-विचित्र मणियों से निर्मित, नाना प्रकार के चंवर व घंटाओं से रमणीय गोशीर, मलयचंदन एवं कालागुरु धूप की गंध से व्याप्त, झारी कलश, दर्पण व नाना प्रकार की ध्वजा पताकाओं से सुशोभित देदीप्यमान उत्तम रत्नदीपकों से युक्त है। जिनेन्द्र भवन के मध्य भाग में पादपीठों से सहित स्फटिक मणिमय एक सौ आठ उन्नत सिंहासन हैं। उन सिंहासनों के ऊपर पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊँची एक सौ आठ, अनादि अनिधन जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। ये जिनेंद्र प्रतिमायें इंद्र नीलमणि व मरकत मणिमय, कुंतल तथा भ्रकुटियों के अग्रभाग से शोभा को प्रदान करने वाली, स्फटिकमणि और इंद्र नीलमणि से निर्मित्त धवल व कृष्ण नेत्रयुगल से सहित, वज्रमय दन्तपंक्ति की प्रभा से संयुक्त पल्लव के सदृश अधरोष्ठ से सुशोभित हीरे से निर्मित उत्तम नखों से विभूषित, कमल के समान लाल हाथ-पैरों से विशिष्ट, एक हजार आठ व्यंजन समूह से सहित और बत्तीस लक्षणों से युक्त हैं।

सहस्रों जिह्वाओं से युक्त हजारों कोड़ाकोड़ी धरणेन्द्र मिलकर भी उन प्रतिमाओं के वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं पुनः हम जैसे मनुष्यों की तो शक्ति ही क्या है? सब जिनेन्द्र प्रतिमाओं में से प्रत्येक प्रतिमा के समीप हाथ में उत्तम चंवरों को लिये हुये चौंसठ देवयुगलों की प्रतिमायें शोभायमान हैं। तीन छत्रादि से सहित, पल्यंकासन से समन्वित और समचतुरस्र आकार वाली ये जिनेन्द्र प्रतिमायें जयवंत हैं। जिनके चरण युगलों को विद्याधर और देवेन्द्र भक्ति से नमस्कार करते हैं। उन जिन प्रतिमाओं को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ। घंटा प्रभृति वे सब उपकरण तथा दिव्य मंगल द्रव्य

पृथक्-पृथक् जिन प्रतिमाओं के पास सुशोभित होते हैं। भृंगार, कलश, दर्पण, चंवर, ध्वजा, वीजना छत्र और सुप्रतिष्ठ (ठोना) ये आठ मंगल द्रव्य हैं। इनमें से प्रत्येक वहाँ एक सौ आठ होते हैं। प्रत्येक प्रतिमा के आजू-बाजू उत्तम रत्नादिकों से रचित श्री देवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ रहती हैं। देवच्छंद के सन्मुख नाना प्रकार के रत्न और पुष्पों की मालायें प्रकाशमान, किरण समूह से सहित लटकती हुई शोभायमान हैं।

सुवर्ण एवं रजत से निर्मित और उत्तम रत्नसमूहों से खचित बत्तीस हजार प्रमाण विशाल पूर्ण कलश सुशोभित हैं। कर्पूर, अगरू और चंदनादि से उत्पन्न हुई धूप की गंध से व्याप्त, सुवर्ण एवं चाँदी से निर्मित चौबीस हजार धूपघट हैं। जिनभवन के सन्मुख द्वार के दोनों पार्श्वभागों में पृथक्-पृथक् चार हजार रत्नमालायें लटकती हैं। इनके भी बीच में किरणों से सहित बारह हजार अकृत्रिम सुवर्ण मालायें लटकती हैं। द्वार की अग्रभूमियों में आठ-आठ हजार धूपघट और धूप घटों के आगे आठ-आठ हजार सुवर्ण मालायें हैं। जिनभवन के उत्तर-दक्षिण के क्षुद्रद्वारों में पृथक्-पृथक् इससे आधी रत्नमालायें, स्वर्णमालायें तथा धूपघट आदि हैं अर्थात् मुख्य द्वार का जो वर्णन है सभी विषय में उससे आधी व्यवस्था इन दोनों द्वारों की है। जिनभवन के पृष्ठ भाग में दरवाजा नहीं है एवं चौबीस हजार कनक मालायें और इनके बीच में आठ हजार रत्नमालायें हैं।

इस जिनेन्द्र भवन के अग्रभाग में सोलह कोस ऊँचा, सौ कोस लंबा और पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त रमणीय 'मुखमंडप' है। वह मुखपंडप उत्तम रत्न समूहों से निर्मित, फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से सहित, निरूपम है। मुखमंडप के आगे परमरमणीय अवलोकन मंडप है जो सोलह कोस से अधिक ऊँचा सौ कोस विस्तृत और सौ कोस लंबा है। उसके आगे अपने योग्य ऊँचाई से युक्त अस्सी कोस विस्तृत एवं लंबा अधिष्ठमान स्थित है। उसके बहुमध्य भाग में उत्तम रत्नों से रचित 'सभापुर' है जिसकी ऊँचाई सोलह कोस से अधिक लम्बाई व विस्तार चौंसठ कोस प्रमाण है। सभापुर में सिंहासन, भद्रासन और वेत्रासन आदि आसन उत्तम रत्नों से निर्मित एवं परम रमणीय हैं। इस सभापुर के आगे चालीस कोस ऊँचा और नाना प्रकार

के रत्नों से निर्मित पीठ है। पीठ के चारों और उत्तम गोपुरों से संयुक्त बारह वेदियाँ पृथ्वी तल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं। पीठ के ऊपर बीचों-बीच में समवृत्त 'रत्नस्तूप' स्थित है। जो क्रम से चौंसठ कोस प्रमाण विस्तार व ऊँचाई से सहित है। इसके भी आगे छत्र से सहित, दैदीप्यमान मणि किरणों से विभूषित और जिन व सिद्ध प्रतिमाओं से परिपूर्ण अनादिनिधन सुवर्णमय स्तूप है। इसके भी आगे समान विस्तार आदि से सहित आठ स्तूप हैं। इन स्तूपों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ स्थित है। इस पीठ का विस्तार व लंबाई दो सौ पचास योजन प्रमाण है। पीठ के चारों ओर उत्तम गोपुरों से युक्त बारह वेदियाँ भूमि तल पर और बारह ही पीठ के ऊपर हैं।

चैत्य वृक्ष का वर्णन

पीठ के उपरिम भाग पर सोलह कोस प्रमाण ऊँचा, दिव्य व उत्तम तेज को धारण करने वाला 'सिद्धार्थनाम चैत्य वृक्ष' है। चैत्य वृक्ष के स्कंध की ऊँचाई चार कोस, बाहल्य एक कोस एवं शाखाओं की लम्बाई व अंतराल बारह कोस प्रमाण है। पीठ के ऊपर इसी प्रमाण को धारण करने वाले ''एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस'' इसके परिवार वृक्ष हैं। ये वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से निर्मित शाखाओं, मरकत-मणिपत्तों, पद्मरागमणिमय फलों और सुवर्ण एवं चाँदी से निर्मित पुष्पों से सदैव संयुक्त रहते हैं। ये सब उत्तम दिव्य वृक्ष अनादि निधन और पृथ्वी रूप होते हुये जीवों की उत्पत्ति और विनाश के स्वयं कारण होते हैं। इन वृक्षों में प्रत्येक वृक्ष के चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों से रचित चार-चार जिन और सिद्धों की प्रतिमायें विराजमान हैं। ये प्रतिमायें सदा जयवंत होवें।

इन चैत्य वृक्षों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ है। पीठ के चारों ओर भूमितल पर मार्ग व अट्टालिकाओं, गोपुर द्वारों और तोरणों से विचित्र बारह वेदियाँ हैं। पीठ के ऊपर मणिसमूह से खचित और अनेक प्रकार के चमर व घंटाओं से युक्त चार योजन ऊँचे 'सुवर्णमय 'खंभें हैं। सब खंभों के ऊपर अनेक प्रकार के वर्णों से रमणीय और शिखर रूप तीन छत्रों से सुशोभित 'महेन्द्र' नामक महाध्वजायें हैं। महाध्वजाओं के आगे मगर आदि जलजंतुओं से रहित जलवाली, कमल, उत्पल व कुमुदों से व्याप्त चार वापिकायें है।

वेदिकादि से सहित वापिकायें प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तृत, सौ कोस लंबी और दस कोस गहरी हैं। वापियों के मध्य में रत्नकिरणों से प्रकाशमान एक 'जिनेन्द्र भवन' स्थित है। अनंतर वापियों के आगे पूर्व, दक्षिण, उत्तर भागों में देवों के रत्नमय 'क्रीड़ाभवन' हैं। विविध वर्णों से युक्त वे भवन पचास कोस ऊँचे, पच्चीस कोस विस्तृत और लम्बे हैं। तथा विचित्र वर्णों से युक्त धूपघट आदि से सहित हैं। इन भवनों के आगे इतने ही प्रमाण से युक्त, फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से सहित प्रकाशमान उत्तम रत्न किरणों से सुशोभित 'दो प्रासाद' हैं। इसके आगे सौ कोस ऊँचे, पचास कोस लंबे, चौड़े, दिव्य रत्नों से निर्मित 'प्रासाद' हैं। प्रमुख द्वार के आगे जो मुखमंडप आदि कहे गये हैं वे आधे प्रमाणों से सहित दक्षिण-उत्तर के क्षुद्र द्वारों में भी हैं।

मंदिर के चारों तरफ ध्वजपंक्ति, चैत्य वृक्ष व मानस्तंभों का वर्णन

इसके आगे मार्ग, अट्टालिकाओं और गोपुर द्वारों से सहित सुवर्णमय वेदी इन सबको वेष्टित करके स्थित है। इस वेदी के आगे चारों दिशाओं में सुवर्ण एवं रत्नमय उत्तम खंभों से सहित दश प्रकार की श्रेष्ठ ध्वज पंक्तियाँ स्थित हैं। सिंह, हाथी, बैल, गरुड़, मोर, सूर्य, हंस, कमल और चक्र इन दश चिन्हों से युक्त ध्वजाओं में से प्रत्येक एक सौ आठ और इतनी ही क्षुद्रध्वजायें हैं। प्रकाशमान रत्नकिरणों से संयुक्त, चार गोपुर द्वारों से रमणीय, सुवर्णमय, उत्तम वेदी इनको वेष्टित करके स्थित है। ये वेदी दो कोस ऊँची, पाँच सौ धनुष चौड़ी, फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से सहित, स्फटिक मणिमय उत्तम भित्तियों से संयुक्त है। इसके आगे जिन भवनों के चारों ओर तीनों लोकों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले दश प्रकार के ''कल्पवृक्ष' हैं। सब प्रकार के कल्पवृक्ष गोमेदमणिमय स्कंध से सहित, सुवर्णमय, कुसुमसमूह से रमणीय, मरकतमणिमय पत्तों को धारण करने वाले, मूंगा, नीलमणि एवं पद्मराग मणिमय फलों से युक्त, अकृत्रिम और अनादि-निधन हैं इनके, मूल में चारों और चार 'जिनेन्द्र प्रतिमायें'' विराजमान हैं।

उन स्फटिक मणिमयविथियों के मध्य में से प्रत्येक वीथी (गली) के प्रति वैडूर्य मणिमय मानस्तंभ सुशोभित हैं। चार वेदी द्वार और तोरणों से

संयुक्त ये मानस्तंभ ऊपर चंवर, घंटा, किंकिणी और ध्वजा इत्यादि से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं। इन मानस्तंभों के नीचे और ऊपर चारों दिशाओं मे विराजमान, उत्तमरत्नों से निर्मित, जिनेन्द्र प्रतिमायें जयवंत होवें।

मार्ग व अट्टालिकाओं से युक्त, विविध ध्वजा पताकाओं से सुशोभित, श्रेष्ठ रत्न समूहों से निर्मित 'कोट' इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित है। इस प्रकार से जिनभवन का यह संक्षिप्त वर्णन 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रंथ के आधार से किया गया है। ऐसे ही चार दिशा संबंधी चार जिनभवनों में स्थित संपूर्ण जिन प्रतिमाओं को मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

यहाँ तक पांडुकवन का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

सौमनस वन का वर्णन

पांडुक वन के नीचे छत्तीस हजार योजन जाकर सौमनस नामक वन मेरु को वेष्टित करके स्थित है। यह सौमनस वन पाँच सौ योजन विस्तृत सुवर्णमय वेदिकाओं से वेष्टित चार गोपुरों से युक्त और क्षुद्रद्वारों से रमणीय है। इस वन में नागकेसर, तमाल, हिंताल, कदली, बकुल, लवली, लवंग, चंपक और पनस आदि वृक्षों से व्याप्त, सुरकोयलों के मधुर शब्दों से मुखरित, मोर आदि पक्षियों से रमणीय, विद्याधर व देवयुगलों से संकीर्ण और विविध प्रकार की वापियों से युक्त है।

इस वन के भीतर सुमेरु के पास पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओं में क्रम से वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुर्वणप्रभ नामक चार 'पुर' हैं। ये पुर पांडुकवन के पुरों की अपेक्षा दुगुने विस्तार आदि से सहित, उत्तम रत्नों से रचित, कालागरु की सुगंधि से व्याप्त हैं। इन पुरों के मध्य में सौधर्म इंद्र के सोम, यम, वरुण और कुबेर लोकपाल पूर्वोक्त वैभव से युक्त होकर क्रीड़ा करते हैं।

पुष्करिणी एवं सौधर्म इन्द्र के भवनों का वर्णन

उस वन की आग्नेय दिशा में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्ज्वला ये चार 'पुष्करिणी' हैं। ये पुष्करिणी पच्चीस योजन लंबी, साढ़े

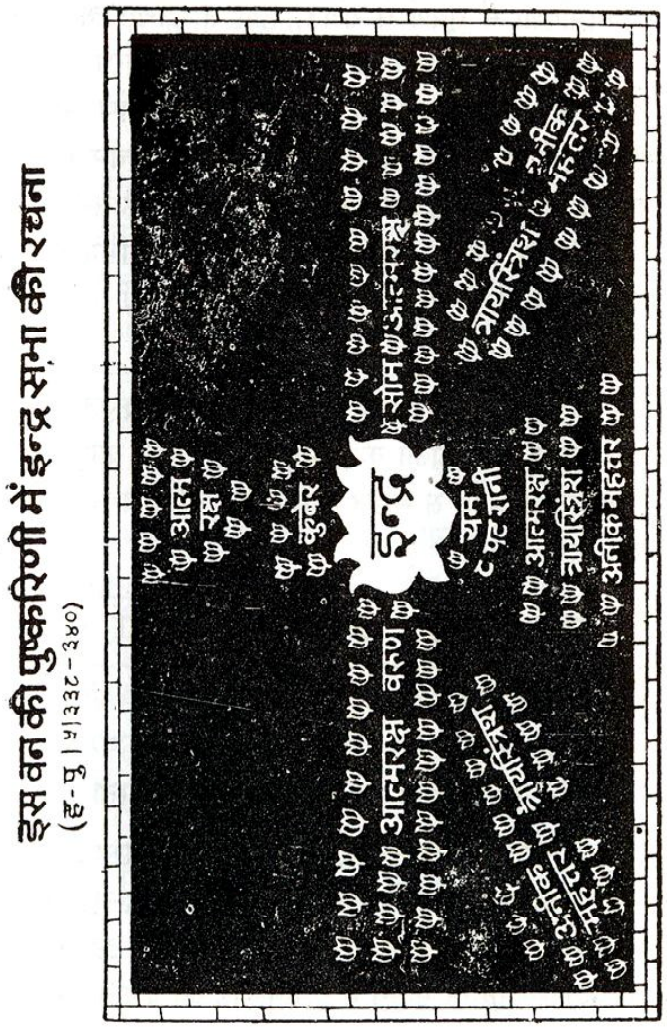

बारह योजन विस्तृत और पाँच योजन गहरी हैं। ये जलचर जीवों से रहित, स्वच्छ जलभरी, उत्तम वेदी व तोरणों से वेष्टित, कीचड़ से रहित व हानि वृद्धि से हीन हैं।

पुष्करिणियों के बीच में एक सौ पच्चीस कोस ऊँचा, इससे आधे प्रमाण विस्तृत सौधर्म इंद्र का अनुपम 'विहार प्रासाद' है। भवन के मध्य में अतिरमणीय सौधर्म इंद्र का सिंहासन और इसके चारों ओर चार सिंहासन लोकपालों के

हैं। सौधर्म इंद्र के आसन से दक्षिण भाग में सुवर्ण से निर्मित, मणिसमूह से खचित प्रतीन्द्र का सिंहासन विराजमान है। सिंहासन के आगे आठ अग्र महिषियों के सिंहासन होते हैं इसके अतिरिक्त बत्तीस हजार प्रवर पीठ जानना चाहिए। सिंहासन के पास वायव्य और ईशान दिशा में चौरासी लाख सामानिक देवों के उत्तम आसन हैं। उस सिंहासन की आग्नेयदिशा में सुवर्ण से रचित, रत्नों से खचित बारह लाख प्रथम पारिषद् देवों के आसन हैं। दक्षिण दिशा भाग में मध्यम पारिषद देवों के चौदह लाख, नैऋत्य दिशा में बाह्य पारिषद् देवों के सोलह लाख प्रमाण आसन हैं। उसी दिशा में त्रायस्त्रिंश देवों के तैंतीस आसन हैं सिंहासन के पश्चिम भाग में महत्तरों के छह और महत्तरी का एक इस प्रकार सात आसन हैं। सिंहासन के चारों तरफ अंगरक्षक देवों के चौरासी हजार आसन हैं। सौधर्म इंद्र पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठ करके विविध प्रकार के विनोद से युक्त होता हुआ सेवार्थ आये हुये देवों की ओर देखता है।

सौमनसवन के भीतर नैऋत्य दिशा में भृंगा, भृंगनिभा, कज्जला, कज्जलप्रभा ये चार वापिकायें पूर्वोक्त वापिकाओं के समान हैं। इन चार वापिकाओं के मध्य में स्थित भवनों में चंवर छत्रादि से सहित सौधर्म इंद्र भक्ति से समीप में आये हुये देवों को आदर से देखता है।

पुष्करिणी एवं ईशान इन्द्र के भवनों का वर्णन

वायव्य दिशा में श्री भद्रा, श्री कांता, श्री महिता और श्री निलया ये चार पुष्करिणी पूर्वोक्त वर्णन से युक्त हैं। इनके मध्य के प्रासादों पर चंवर छत्रादि से युक्त पूर्वोक्त वैभव से युक्त ईशान इंद्र विनोद से क्रीड़ा करता है।

ईशान दिशा में नलिना, नलिनगुल्मा, कुमुदा और कुमुद्रप्रभा ये चार वापिकायें हैं और उनके मध्य में प्रासाद हैं। उस उत्तम भवन में ईशान इंद्र-सुख से क्रीड़ा करता है। आग्नेय एवं नैऋत्य दिशा की वापियों के भवनों में सौधर्म इंद्र एवं वायव्य और ईशान दिशा की पुष्करिणियों के भवनों में ईशान इंद्र का प्रभुत्व समझना चाहिए।

सौमनस वन के जिनमंदिर

सौमनस वन की चारों ही दिशाओं में चार जिनभवन स्थित हैं जिनका सारा वर्णन पूर्व में कहे गये जिन भवनों के सदृश ही हैं। अंतर केवल इतना

ही है कि ये भवन पांडुकवन के जिन भवनों के विस्तार, ऊँचाई, लंबाई आदि प्रमाण से दूने प्रमाण वाले हैं।

प्रत्येक जिन मंदिर सम्बन्धी कोटों के बाहर दोनों पार्श्व भागों में जो दो-दो कूट स्थित हैं उनके नंदन, मंदर, निषध, हिमवन् आदि उत्तम-उत्तम नाम हैं। इन पर स्थित, भवन दिक्कुमारियों एवं अन्य एक बलभद्र कूट आदि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति से देख लेना चाहिए।

नंदन वन का वर्णन

62500 योजन प्रमाण सौमनस वन के नीचे जाकर 'नंदन' नामक वन है। यह वन 500 योजन प्रमाण विस्तृत, सुवर्णमय वेदिकाओं से वेष्टित तथा क्षुद्रद्वारों के साथ-साथ चार तोरण द्वारों से संयुक्त है। नंदन वन के भीतर सुमेरु के पास में पूर्व आदि दिशाओं में चारण, गंधर्व और चित्र नामक चार भवन हैं। पूर्व के समान वर्णन से संयुक्त ये नंदनभवन विस्तार व लंबाई में सौमनस वन से दोगुने हैं। इन भवनों में उतनी ही देवियों से युक्त होकर विविध प्रकार क्रीड़ाओं को करने वाले सौधर्म इंद्र के सोम, यम आदि लोकपाल क्रीड़ा करते हैं।

नंदन वन के भीतर ईशान में 'बलभद्र' नामक कूट है इस कूट की लंबाई, ऊँचाई आदि सौमनस वन संबंधी 'बलभद्र' कूट के सदृश है।

जिन भवन, कूट, वापी, प्रासाद, देवताओं के नाम, विन्यास और सौधर्म व ईशानेन्द्र, की दिशाओं का विभाग इत्यादि सब सौमनस वन के समान ही इस नंदन में है। अंतर केवल इतना ही है कि नंदन वन के भवन, कूट आदि के विस्तार आदि प्रमाण सौमनस से दूने-दूने हैं। इस प्रकार से संक्षेप से नंदन वन का वर्णन हुआ।

भद्रसाल वन का वर्णन

नंदन वन के नीचे पाँच सौ योजन प्रमाण जाकर श्री भद्रसाल वन है। इस वन का विस्तार क्रम से पूर्व व पश्चिम में 22000 योजन है तथा दक्षिण-उत्तर में 250 योजन प्रमाण है। इस वन में मेरु पर्वत के पास पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में एक-एक उत्तम जिन भवन हैं। इन जिन भवनों का

विस्तार 50 योजन, लंबाई 100 योजन एवं ऊँचाई 75 योजन प्रमाण है। इन जिन भवनों का विशेष वर्णन पांडुक वन के जिन भवनों के सदृश समझना चाहिए। इस भद्रसाल वन के चारों ओर उत्तम तोरणों से शोभित श्रेष्ठ द्वार समूहों से रमणीय, अट्टालिकादि से सहित सुवर्णमय वेदी है, इस वेदी की ऊँचाई चारों तरफ एक योजन और विस्तार एक हजार धनुष प्रमाण है।

श्रीखण्ड, अगरु, केशर, अशोक, कर्पूर, तिलक, कदली, अतिमुक्त, मालती और हारिद्र प्रभृति वृक्षों से व्याप्त, पुष्करिणियों से रमणीय, उत्तम सरोवर व भवनों के समूह से सहित यह भद्रसाल वन कूटों और जिनपुरों से सुशोभित है। मोर, शुक, कोयल, सारस और हंस इन पक्षियों के मधुर शब्दों से व्याप्त तथा विविध प्रकार के फल-फूलों से भरित वह भद्रसाल वन सुरम्य है।

गजदंत पर्वत का वर्णन

मेरु पर्वत की विदिशाओं में हाथी दांत के सदृश, अनादि निधन महारमणीय, गजदंत नाम से प्रसिद्ध चार पर्वत हैं। तिरछे रूप से आयत वे चारों महाशैल नील पर्वत, निषध पर्वत और मंदरशैल से संलग्न हैं। उनमें से

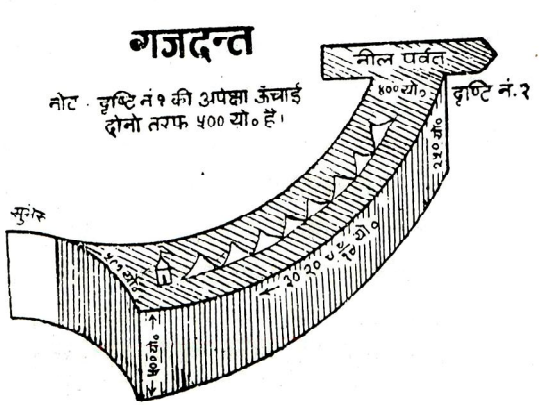

प्रत्येक पर्वत उत्तर-दक्षिण भाग में मंदर पर्वत के मध्य देश में एक-एक प्रदेश से उनसे संलग्न हैं। सुंदर कल्पवृक्षों की शोभा से संयुक्त ये गजदंत पर्वत सर्वत्र 500 योजन प्रमाण विस्तार वाले हैं। इनकी ऊँचाई मेरु के पास 500 योजन एवं निषध नील पर्वत के पास 400 योजन प्रमाण है निषध-नील पर्वत से

मेरुपर्वत पर्यंत प्रत्येक के प्रदेश वृद्धि होती गई है। गजदंत के विस्तार से रहित भद्रसाल वन के विस्तार को दुगुना करके उसमें मेरुपर्वत के विस्तार को मिला देने पर दोनों पर्वतों के मध्य में जीवा प्रमाण 53000 योजन होता है।

((22000-500)×2+10000=53000)

मेरु पर्वत के ईशान कोण में माल्यवान् पर्वत है आग्नेय में सौमनस्य, नैऋत में विद्युत्प्रभ और वायव्य में गंधमादन पर्वत है। क्रम से माल्यवान् वैडूर्य मणिमय हैं, सोमनस्य रजतमय है, विद्युत्प्रभ तपनीय सुवर्णमय कांति वाला एवं गंधमादन पर्वत सुवर्णमय वर्ण सहित है। इन चारों ही पर्वतों की लंबाई का प्रमाण 30209-6/19 योजन है। गजदंत पर्वतों की ऊँचाई मेरु पर्वत के पास में 500 योजन एवं क्रम से हीन होते-होते निषध-नील पर्वत के समीप 400 योजन मात्र रह गई है। इस ऊँचाई के अनुसार ही उन पर स्थित कूटों की ऊँचाई का हिसाब है। इन पर्वतों पर मेरु के समीप जो कूट हैं, उनका नाम सिद्धायतनकूट है। वे 125 योजन प्रमाण हैं अंतिम कूट 100 योजन प्रमाण है, मध्य के कूट हीनाधिक प्रमाण वाले हैं। अर्थात् प्रत्येक पर्वतों की ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण उनकी नींव रहती है और कूट भी चतुर्थभाग प्रमाण रहते हैं।

सिद्ध, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, पूर्णभद्र, सीता और हरिसह ये नौ कूट माल्यवान् गजदंत पर स्थित हैं। सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मंगल, विमल, कांचन और वशिष्ट ये सात कूट सौमनस पर्वत पर स्थित हैं। सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, तपन, स्वस्तिक, शतज्वल, सीतोदा और हरिसम ये नौ कूट विद्युत्प्रभ पर्वत पर स्थित हैं। सिद्धायतन, गंधमादन, उत्तरकुरु, गंधमालिनी, लोहिताक्ष, स्फटिक और आनंद ये सात कूट गंधमादन पर्वत पर स्थित हैं। चारों पर्वतों के प्रथम कूट 125 योजन और अंतिम कूट 100 योजन प्रमाण वाले हैं शेष कूटों का प्रमाण सिद्धकूट से हीन होता गया है। इन पर्वतों के प्रथम कूटों पर पांडुकवन संबंधी जिन भवन के सदृश विस्तार, ऊँचाई-लंबाई वाले जिन भवन हैं। शेष कूटों पर व्यंतर देव और देवियों के सुवर्णमय प्रासाद स्थित हैं। माल्यवान् और विद्युत्प्रभ पर्वत की लंबाई में 9 का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटों का अंतराल

है यथा-3356-101/171 योजन।

सौमनस और गंधमादन पर्वत की लंबाई में 7 का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटों के अंतराल का प्रमाण है। यह प्रमाण 4315-82/133 योजन है। सीता नदी को निकलने के लिए माल्यवान् पर्वत में एक गुफा है एवं सीतोदा नदी के निकलने के लिए विद्युत्प्रभ पर्वत में एक गुफा है। ये गुफायें पर्वत के विस्तार के समान 500 योजन लंबी हैं दोनों पार्श्वभागों में अपने योग्य ऊँचाई और विस्तार से सहित, प्रकाशमान उत्तम रत्न किरणों से संयुक्त, अकृत्रिम, अनुपम द्वारों से सहित हैं।

सीतोदा नदी का वर्णन

निषध पर्वत के तिगिंछद्रह के उत्तर द्वार से सीतोदा महानदी निकलती है यह नदी उत्तर मुख होकर 7421 योजन से कुछ अधिक निषधपर्वत के ऊपर जाती है। पश्चात् पर्वत के नीचे सीतोदा कुण्ड में गिरकर उसके उत्तर तोरण द्वार से निकलकर उत्तर मार्ग से मेरु पर्वत पर्यंत जाती है। पुनः मेरु पर्वत से दो कोस इधर ही रहकर यह नदी पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। अनंतर दो कोस अंतर से सहित होकर यह नदी कुटिल रूप से विद्युत्प्रभ पर्वत की गुफा के उत्तर मुख से भद्रसाल वन में प्रवेश करती है। मेरु के मध्यभाग को अपना मध्यप्रणिधि करके वह नदी पश्चिम मुख से विदेह क्षेत्र के बहुमध्य

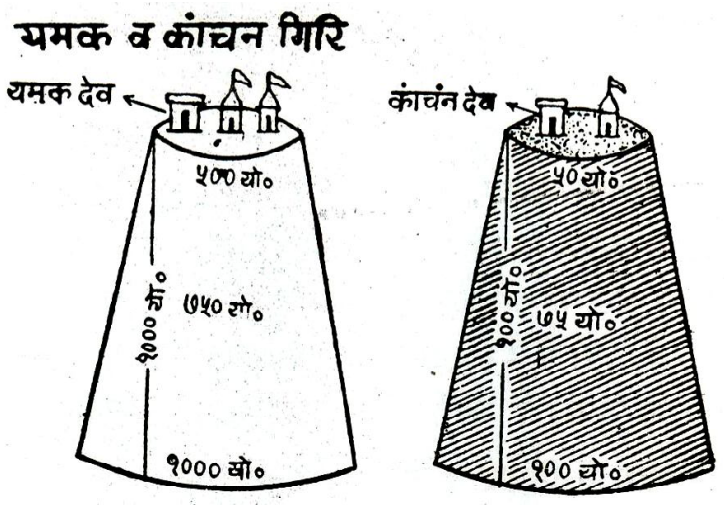

में होकर जाती है। देवकुरु में उत्पन्न हुई नदियाँ चौरासी हजार (84000) हैं पश्चिम विदेह में उत्पन्न हुई संपूर्ण नदियाँ चार लाख अड़तालीस हजार अड़तीस हैं जोकि सीतोदा नदी में प्रवेश करती हैं। यह सीतोदा नदी इन परिवार नदियों से सहित होती हुई जम्बूद्वीप की जगती के बिलद्वार में से लवण समुद्र में प्रवेश करती है। दो तट वेदियों और उपवन खंडों से मनोहर सीतोदा नदी का विस्तार आदि हरिकान्ता नदी से दूना है।

निषधपर्वत के उत्तर में एक हजार योजन जाकर सीतोदा नदी के दोनों किनारों पर यमक शैल स्थित है जो कि नदी के पूर्व में यमकूट एवं पश्चिम में मेघकूट नाम वाले हैं। इन पर्वतों का अंतराल 500 योजन है। प्रत्येक पर्वत की ऊँचाई 2000 योजन और मूल में विस्तार 1000 योजन है मध्यविस्तार 700 योजन एवं उपरिम विस्तार 500 योजन मात्र है। इनके मध्य में 125 कोस विस्तृत, 250 कोस ऊँचा दिव्य प्रासाद है। उत्तम ध्वजा, तोरण आदि से सहित रत्नों से निर्मित, उपवनखंड, पुष्करिणी, वापिकाओं से रमणीय इन प्रासादों में पर्वत सदृश नाम वाले व्यंतर देव निवास करते हैं प्रत्येक देव 10 धनुष ऊँचे, एक पल्य प्रमाण आयु वाले अनेक देवांगनाओं से एवं सामाजिक पारिषद् आदि देव परिवार से सहित हैं। इन यमक और मेघ देवों के भवनों में पांडुक वन के जिनभवन सदृश एक-एक उत्तम जिनभवन हैं।

सीतोदा नदी के अंतर्गत पाँच सरोवरों का वर्णन

यमक और मेघगिरी से आगे 500 योजन जाकर पाँच द्रह हैं इनमें प्रत्येक के बीच 500 योजन का अंतराल है। ये प्रत्येक द्रह 1000 योजन प्रमाण उत्तर दक्षिण, लंबे 500 योजन चौड़े और 10 योजन गहरे हैं। इन पाँच सरोवरों के नाम क्रम से निषध, देवकुरु, सर, सुलस और विद्युत् हैं। इन पाँचों सरोवरों के बहुमध्य भाग में से सीतोदा नदी चली जाती है। द्रहों के मध्य में कमल पुष्पों के दिव्य भवनों में अपने-अपने द्रह के नाम वाले नागकुमार देवों के आवास हैं। इन द्रहों में प्रत्येक में एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह कमल हैं उन सभी कमलों पर नागकुमार देव एवं उनके परिवार देव निवास करते हैं सभी कमल भवनों में एक-एक अकृत्रिम जिन मंदिर हैं।

कांचन शैलों का वर्णन

प्रत्येक सरोवर के पूर्व और पश्चिम दिग्भाग में 100 योजन ऊँचे दस-दस कांचन पर्वत हैं। ये पर्वत मूल में 100 योजन मध्य में 75 योजन एवं शिखरतल में 50 योजन प्रमाण हैं। ये कांचन पर्वत मूल में व ऊपर चार तोरण वेदियों, वन उपवनों और पुष्करिणियों से रमणीय है। इन पर मध्य के प्रासाद में कांचन नामक देवों के निवास हैं।

विद्युत सरोवर से उत्तर की ओर 2092-2/19 योजन जाकर एक योजन ऊँची, अर्धकोस विस्तृत पूर्व पश्चिम भाग में गजदंत पर्वतों से संलग्न दिव्यवेदी है। यह वेदी मार्ग, अट्टालिका, तोरण द्वार एवं द्वारों के उपरिम भागों में जिनभवनों से परिपूर्ण हैं।

आठ दिग्गज पर्वतों का वर्णन

भद्रसाल वन के भीतर सीतोदा नदी के पूर्व पश्चिम भाग में स्वस्तिक और अंजन नामक पर्वत हैं। ये दोनों दिग्गज पर्वत मेरु पर्वत के दक्षिण में हैं। सीतोदा महानदी के दक्षिण तट पर कुमुद और उत्तर तट पर पलास नामक दो पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत मेरु के पश्चिम में हैं। ऐसे ही सीता नदी के उत्तर किनारे पर पद्म कूट और दक्षिण किनारे पर नीलवान् कूट हैं। ये दोनों कूट मेरु के पूर्व में हैं। सीता नदी के पश्चिम तट पर अवतंस कूट और पूर्व तट पर रोचन नामक कूट हैं। ये दोनों कूट मेरु के उत्तर में हैं। भद्रसाल वन में स्थित इन आठ दिग्गजेन्द्रों का प्रमाण कांचन पर्वतों के समान है उनके ऊपर दिग्गजेन्द्र देव निवास करते हैं।

पश्चिम भाग में निषध व नील पर्वत की उपवन वेदी से संलग्न सुवर्णमय भद्रसाल वन वेदी है। वेदी की लम्बाई 33684-4/18 योजन प्रमाण है।

सीता नदी का वर्णन

नील पर्वत के केसरी नामक सरोवर के दक्षिण द्वार से सीता नामक उत्तम नदी निकलती है। यह भी सीतोदा के समान ही सीता कुण्ड में गिरकर दक्षिण मुख होती हुई दो कोस प्रमाण से मेरु पर्वत को छोड़कर पूर्व की ओर मुड़ जाती है और माल्यवंत गजदंत पर्वत की दक्षिण मुख वाली गुफा में प्रवेश

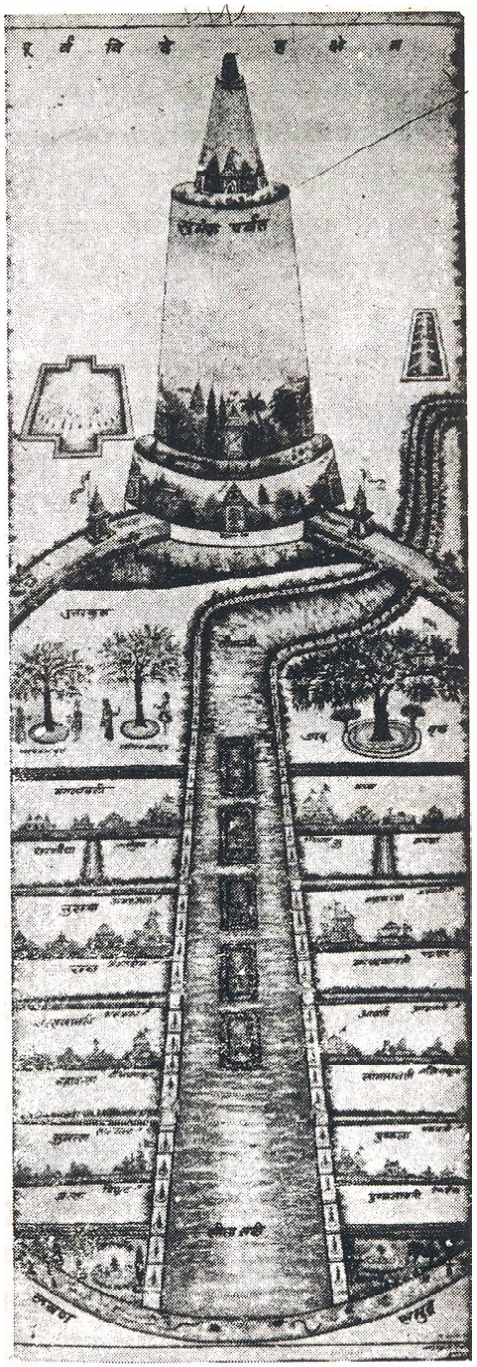

सुमेरु पर्वत की पूर्व दिशा के विदेह के 16 क्षेत्र एवं मध्य की सीता नदी का दृश्य

करके गुफा से बाहर निकलकर कुटिल रूप से मेरु पर्वत के मध्य भाग तक जाती है। उस मेरु के मध्य को अपना मध्य प्रदेश प्रणिधि करके यह सीता नदी पूर्व विदेह के ठीक बीच से पूर्व की ओर जाती है। अनंतर जम्बूद्वीप की जगती के बिलद्वार में से जाकर परिवार नदियों से युक्त होती हुई लवण समुद्र में प्रवेश करती है। सीता नदी का विस्तार एवं वन उपवन आदि का वर्णन सीतोदा के सदृश है।

नील पर्वत के दक्षिण में 1000 योजन जाकर सीता के दोनों पार्श्व भाग में दो यमक गिरि पर्वत स्थित हैं। सीता के पूर्व में चित्रकूट और पश्चिम में विचित्रनाम का कूट है। इनका वर्णन यमक और मेघगिरि के सदृश है।

सीता के पाँच द्रहों का वर्णन

यमक पर्वतों के आगे 500 योजन जाकर पाँच द्रह हैं। प्रत्येक द्रह पाँच सौ योजन के अंतराल से हैं इनके नाम नील, उत्तरकुरु, चंद्र, ऐरावत और माल्यवान् हैं। ये द्रह सीतोदा के द्रह सदृश हैं। अंतिम द्रह से 2092-2/19 योजन दक्षिण भाग में उत्तम वेदी है। यह वेदी पूर्व-पश्चिम में गजदंत पर्वतों से संलग्न, एक योजन ऊँची, 1/8 योजन विस्तृत, प्रचुर मार्ग तोरण द्वार आदि रचनाओं एवं द्वार के उपरिम भाग में स्थित जिन भवनों से सहित है।

कितने ही आचार्य तथा त्रिलोकसार के कर्त्ता श्री नेमिचंद्राचार्य मेरु पर्वत के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर ऐसी प्रत्येक दिशा में सीता तथा सीतोदा नदी के मध्य पाँच-पाँच सरोवरों को स्वीकार करते हैं। उनके उपदेश में एक-एक सरोवर के दोनों किनारों में से प्रत्येक किनारे पर पाँच-पाँच कांचन शैल स्थित हैं। त्रिलोकसार में इन सरोवरों की चौड़ाई सीता, सीतोदा नदी की चौड़ाई के समान मानी है। लोक विभाग में कहा है कि इन विशाल सरोवरों के तट रत्नों से विचित्र हैं, इनका मूल भाग वज्रमय है। उनके भीतर पद्म भवनों में नागकुमारियाँ रहती हैं। जल से पद्म की ऊँचाई आधा योजन है। वह एक योजन ऊँचा और उतना ही विस्तृत है उसकी कर्णिका का विस्तार एक कोस और ऊँचाई भी एक कोस है।

देवकुरु का वर्णन

मंदर पर्वत के दक्षिण भाग में स्थित भद्रसाल वन वेदी से दक्षिण में, निषध से उत्तर, विद्युत्प्रभ के पूर्व और सौमनस के पश्चिम भाग में सीतोदा के पूर्व-पश्चिम किनारों पर 'देवकुरु' स्थित है। निषध पर्वत की वन वेदी के पास में उसकी पूर्व-पश्चिम लंबाई 53000 योजन प्रमाण कही गई है। मेरु की दक्षिण दिशा में श्री भद्रसाल वेदी के पास उस क्षेत्र की लंबाई 8434 योजन प्रमाण है। इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर-दक्षिण में 11592-2/19 योजन प्रमाण है। दोनों गजदंतों के समीप में इसका विस्तार वक्ररूप से 25981 योजन है।

इस देवकुरु में शाश्वत रूप में उत्तम भोग भूमि की व्यवस्था पाई जाती है। यहाँ की भूमि धूलि, कण्टक, हिम आदि से रहित है। यहाँ पर विकलत्रय जीव नहीं रहते हैं। यहाँ पर युगल रूप से उत्पन्न हुये स्त्री पुरुष चौथे दिन बेर के प्रमाण आहार ग्रहण करते हैं। स्त्री-पुरुषों के शरीर की ऊँचाई तीन कोस तथा आयु तीन पल्य प्रमाण होती है उत्तम संहनन से युक्त इन मनुष्यों के मल, मूत्र नहीं होता है।

वहाँ पर दस प्रकार के उत्तम कल्पवृक्ष होते हैं जो इच्छित फल को दिया करते हैं। पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और ज्योतिरंग ऐसे कल्प वृक्षों के दस भेद हैं। ये कल्पवृक्ष यथा नाम वाले फलों को प्रदान करते हैं। पानांग वृक्ष बत्तीस प्रकार के पेय द्रव्य को प्रदान करते हैं। तूर्यांग वीणा आदि वाद्यों को देते हैं। भूषणांग, कंकण, हार आदि, वस्त्रांग उत्तम वस्त्रों को, भोजनांग अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों को, आलयांग दिव्य भवनों को, दीपांग जलते हुए दीपकों को, भाजनांग झारी, कलश आदि को देते हैं। मालांग वृक्ष पुष्पों की मालाओं को देते हैं और ज्योतिरंग वृक्ष करोड़ों सूर्यों से अधिक कांतिशाली चंद्र-सूर्य की कांति का संहरण करते हैं। ये कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक होते हुए भी जीवों के पुण्य कर्म के फल को देते हैं। वहाँ के भोगभूमिया मनुष्य अकालमरण से रहित होते हुए आयु पर्यन्त उत्तम सुखों का उपभोग करते हैं। ये चक्रवर्ती की अपेक्षा अनंत गुणे सुखों का अनुभव करते हैं।

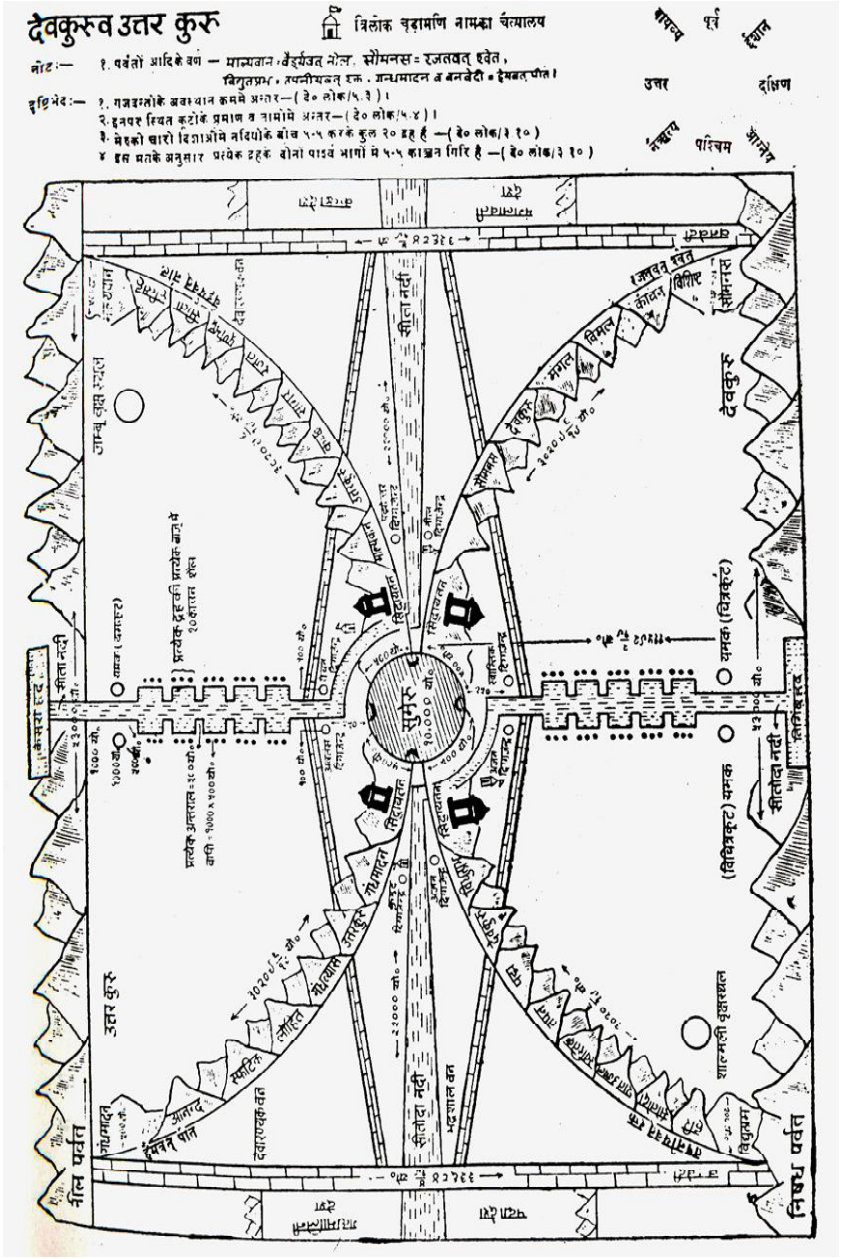

शाल्मली वृक्ष का वर्णन

देवकुरु के भीतर निषधपर्वत के उत्तर पार्श्व भाग में विद्युतप्रभ पर्वत से पूर्व दिशा में, सीतोदा नदी की पश्चिम दिशा में और सुमेरु पर्वत के नैऋत्य भाग में रमणीय रजतमय शाल्मलि वृक्ष का स्थल बतलाया गया है। इस स्थल के विस्तार आदि का वर्णन आगे कहे हुए 'जंबूवृक्ष' के सदृश समझना चाहिये। इसकी दक्षिण दिशा पर जिन भवन है।

उत्तर कुरु का वर्णन

मंदर पर्वत के उत्तर, नील पर्वत के दक्षिण, माल्यवान् गजदंत के पश्चिम और गंधमादन के पूर्व में सीता नदी के दोनों किनारों पर 'भोगभूमि' इस प्रकार से विख्यात रमणीय उत्तरकुरु नामक क्षेत्र है। इसका संपूर्ण वर्णन देवकुरु के वर्णन के समान है।

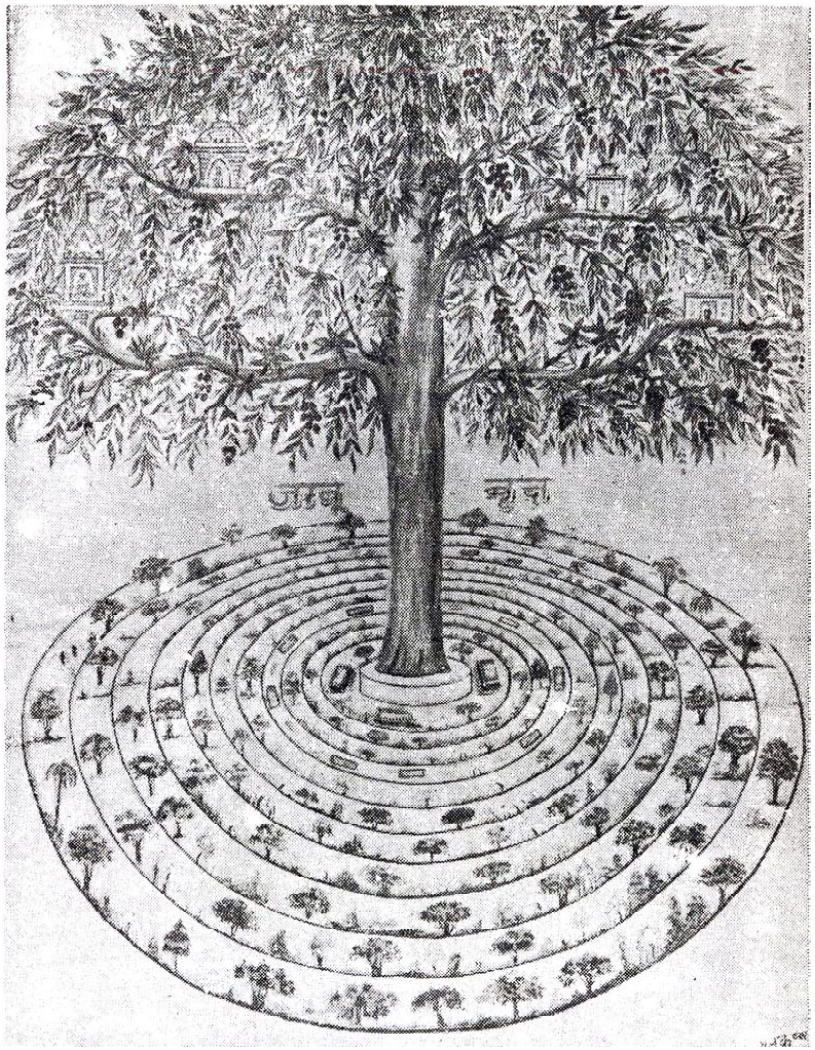

जम्बूवृक्ष का वर्णन

मेरु पर्वत के ईशान दिशा भाग में, नीलगिरि के दक्षिण पार्श्व भाग में, माल्यवंत के पश्चिम भाग में एवं सीता नदी के पूर्व तट पर उत्तम पीठ से सहित सुवर्णमय जम्बूवृक्ष का स्थल है।

इस स्थल का विस्तार नीचे पाँच सौ योजन और परिधि 1581 योजन से कुछ अधिक है। इसकी मध्यम ऊँचाई का प्रमाण 8 योजन एवं अंत में मोटाई दो कोस मात्र है। उत्तम वृक्षों से व्याप्त तीन वन इस स्थल को वेष्टित करके स्थित है। स्थल के ऊपर चारों ओर द्वारों के उपरिम भाग में स्थित जिनेन्द्र भवनों से परिपूर्ण सुवर्णमय वेदिका स्थित है जो कि अर्ध योजन ऊँची एवं 1/16 योजन मात्र विस्तृत है। इस वेदी के मध्य भाग में आठ योजन ऊँचा, मूल में 12 तथा ऊपर 4 योजन प्रमाण विस्तृत समवृत रजतमय पीठ

पीठ पर स्थित मूल वृक्ष

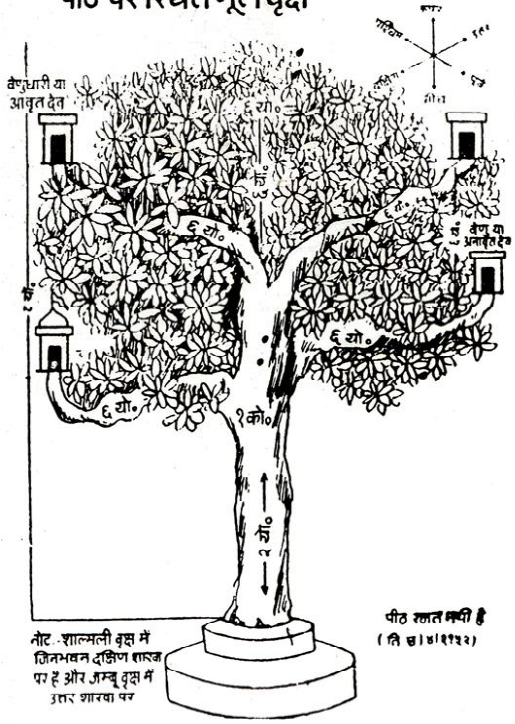

है। इस पीठ के बहुमध्य भाग में पाद पीठ सहित उत्कृष्ट रत्नों से खचित जम्बूवृक्ष स्थित है। यह वृक्ष उत्सेध योजन से आठ योजन ऊँचा है। उसकी वज्रमय जड़ दो कोस मात्र है। इस वृक्ष का स्कंध एक कोस मोटा एवं दो योजन ऊँचा है और हरित मणिमय स्थित है। इस वृक्ष की चारों दिशाओं में

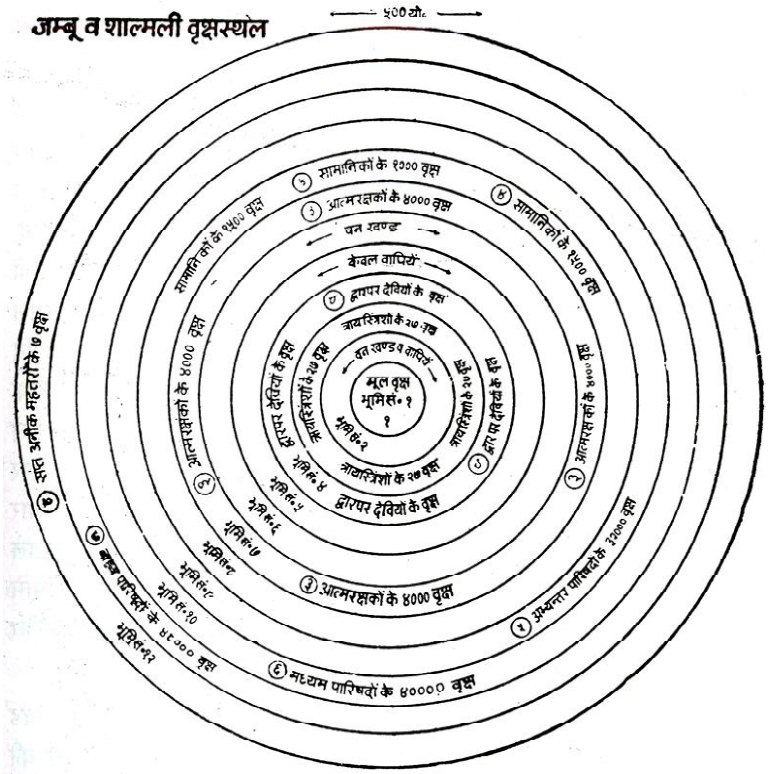

चार महाशाखायें हैं इनमें से प्रत्येक शाखा छःयोजन लंबी और इतने मात्र अंतर से सहित है। शाखाओं में मरकत, वैडूर्य, कर्केतन, सुवर्ण और मूंग से निर्मित विविध प्रकार के पत्ते हैं एवं पंच वर्ण रत्नों से निर्मित अनुपमरूप वाले अंकुर, फल एवं पुष्प शोभायमान होते हैं। यह वृक्ष अनादिनिधन पृथ्वीकायिक है और चामर किंकणी आदि से शोभित है।

उसकी उत्तर दिशागत शाखा के ऊपर उत्तम जिनभवन तथा अन्य तीन शाखाओं के ऊपर आदर-अनादर नामक व्यंतर देवों के भवन हैं। जिन मंदिर

का वर्णन पांडुकवन जिन भवन सदृश है। एवं देवों के भवन एक कोस लंबे अर्ध कोस विस्तृत पोन कोस ऊँचे हैं। ये रत्नमय प्रासाद अनेक वैभव से युक्त हैं। इनमें रहने वाले देव दस धनुष ऊँचे व एक पल्य प्रमाण आयु से सहित होते हुए अनुपम दिव्य सुखों का उपभोग करते हैं।

इस वृक्ष के चारों तरफ चार गोपुरों से युक्त उत्तम रत्नों से सुशोभित बारह दिव्य वेदियाँ हैं। ये वेदियाँ उत्सेध कोस से दो कोस मात्र ऊँची और पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तृत हैं। उपर्युक्त बारह पद्म वेदिकाओं में बाह्य वेदिका की ओर प्रारंभ करके प्रथम और द्वितीय अंतराल में शून्य हैं अर्थात् उपवनखंड, वापी, पुष्करिणी, पुष्पलता, सारस आदि से मनोरम हैं, किन्तु इनमें जम्बू वृक्ष के परिवार वृक्ष नहीं हैं। तृतीय अंतराल में भूमि के चारों ओर एक सौ आठ जम्बू वृक्ष हैं। चतुर्थ अंतराल में पूर्व दिशा में देवियों के चार वृक्ष, पंचम अंतराल में वन व चतुष्कोण गोल आदि वापियाँ, छठे अंतराल में शून्य हैं। सातवें अंतराल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में तनुरक्षक देवों के सुंदर चार-चार हजार वृक्ष (सोलह हजार) आठवें अंतराल में ईशान, उत्तर और वायव्य दिशाओं में सामानिक देवों के सब मिलकर चार हजार वृक्ष हैं। नवें अंतराल में आग्नेय दिशा में अभ्यंतर पारिषद देवों के बत्तीस हजार वृक्ष हैं। दसवें में दक्षिण भाग में पारिषद के चालीस हजार वृक्ष एवं ग्यारहवें अंतराल में नैऋत्य दिशा में बाह्य पारिषद देवों के अड़तालीस हजार वृक्ष हैं। बारहवीं भूमि में पश्चिम दिशा की ओर सात अनीकों के अधिपति देवों के सात ही वृक्ष हैं। रमणीय अकृत्रिम ये सब जम्बूवृक्ष के 140120 प्रमाण हैं।

इस जम्बूवृक्ष स्थल के चारों ओर विविध फल-फूलों से व्याप्त तीन वन खंड हैं। प्रथम वन खंड में चारों दिशाओं में चार प्रासाद हैं। इन प्रत्येक भवनों की विदिशाओं में दस योजन गहरी चार-चार पुष्करिणी हैं इन पुष्करिणियों का विस्तार 25 योजन एवं लम्बाई 50 योजन है। इनमें मणिमय सोपान हैं, इनका जल स्वच्छ है एवं जल जंतुओं से रहित है। पुष्करिणियों के चारों ओर पृथक्-पृथक् आठ कूट हैं इन पर स्थित प्रासादों पर आदर-अनादर देवों के परिवार देव रहते हैं इस प्रकार से जम्बू वृक्ष का वर्णन हुआ। इसमें

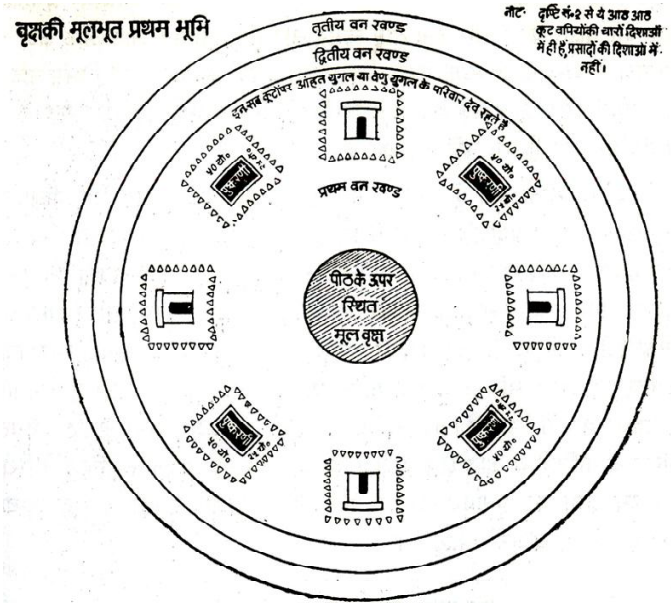

अनादिनिधन जामुन फल जैसे फल लटक रहे हैं अतः इसका 'जम्बू' यह नाम सार्थक है। इन सभी जम्बू वृक्षों पर प्रत्येक पर एक-एक जिन भवन स्थित हैं।

शाल्मली वृक्ष का वर्णन

देवकुरु क्षेत्र के भीतर निषध पर्वत के उत्तर पार्श्वभाग में विद्युत्प्रभ पर्वत से पूर्व दिशा में, सीतोदा नदी की पश्चिम दिशा में और मंदरगिरि के नैऋत्य भाग में रमणीय रजतमय शाल्मली वृक्षों का स्थल है। इस स्थल, पीठ वेदिका आदि का वर्णन जम्बू वृक्ष के वर्णन के समान है। इस मुख्य शाल्मली वृक्ष की दक्षिण शाखा पर जिन भवन स्थित हैं एवं तीनों शाखाओं के ऊपर स्थित प्रासादों पर वेणु और वेणुधारी देव रहते हैं। इनके परिवार वृक्ष भी एक लाख चालिस हजार एक सौ उन्नीस प्रमाण हैं। ये देव सम्यग्दर्शन से शुद्ध और सम्यग्दृष्टियों से प्रेम करने वाले हैं। प्रत्येक की आयु एक पल्य एवं शरीर की ऊँचाई दस धनुष है।

इन शाल्मली वृक्षों के भी प्रत्येक भवनों में जिन भवन स्थित हैं।

पूर्व विदेह, अपरविदेह का वर्णन

मंदर पर्वत के पूर्व भाग में पूर्व विदेह नामक सोलह क्षेत्र एवं पश्चिम भाग में पश्चिम विदेह नामक सोलह क्षेत्र स्थित हैं। सीता नदी के दोनों पार्श्व भागों में चार-चार वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभंग नदियों से सीमित आठ-आठ क्षेत्र हैं। सीतोदा के दोनों पार्श्व भागों में चार-चार वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभंग नदियों से सीमित आठ-आठ क्षेत्र हैं। सीतोदा के दोनों पार्श्व भागों में चार-चार वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभंग नदियों से सीमित आठ-आठ क्षेत्र हैं। दोनों ही विदेहों में एक-एक को व्यवस्थित करके वक्षारगिरि और विभंग नदियाँ स्थित हैं।

ये क्षेत्र सीता नदी के उत्तर किनारे के भद्रसाल वेदी से पूर्व और नीलपर्वत से दक्षिण भाग में प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं। उनके नाम क्रम से कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छकावती, आवर्ता, लांगलावती, पुष्कला, और पुष्कलावती हैं। वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्या, सुरम्यका, रमणीया, मंगलावती ये आठ क्षेत्र सीता नदी के दक्षिण और निषध पर्वत के उत्तर में कहे गये हैं। पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शंखा, नलिना, कुमुदा, सरिता ये आठ क्षेत्र निषध से उत्तर एवं सीतोदा के दक्षिण भाग में स्थित हैं। वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गंधा, सुगंधा, गंधिला और गंध मालिनी ये आठ क्षेत्र सीतोदा के उत्तर एवं नील पर्वत के दक्षिण में स्थित हैं इन क्षेत्रों का पूर्वापर विस्तार 2212-7/8 योजन प्रमाण है एवं लम्बाई 16592-2/19 योजन प्रमाण है।

वक्षार पर्वतों का वर्णन

चित्रकूट, पद्मकूट, नलिकूट व एक शैल ये चार वक्षार सीता महानदी और नील पर्वत के बीच में लम्बायमान हैं। त्रिकुट, वैश्रवण, अंजन और आत्मांजन ये चार पर्वत सीता नदी और निषध के बीच में हैं। श्रद्धावान, विजटावान, आशीविष और सुखावह ये चार पर्वत सीतोदा नदी और निषध पर्वत के आश्रित होकर पश्चिम विदेह में स्थित हैं। चंद्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल एवं देवमाल ये चार वक्षार नील पर्वत और सीतोदा के मध्य में हैं।

इन पर्वतों की ऊँचाई तट पर पाँच सौ योजन प्रमाण है एवं निषध, नील पर्वत के पास चार सौ योजन है। इन पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में पर्वत के समान लम्बे अर्ध योजन विस्तृत दिव्य वन खंड हैं। ये पर्वत सुवर्णमय वर्ण वाले हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत का विस्तार सर्वत्र पाँच सौ योजन है एवं इनकी लंम्बाई 16592-2/19 योजन है। इनमें से प्रत्येक पर्वत पर चार-चार कूट हैं। पर्वत की तरफ वाले कूटों पर दिक्कन्यायें निवास करती हैं तथा जो कूट नदी की तरफ हैं उन पर जिनभवन स्थित हैं। मध्य कूटों पर व्यंतर देवों के क्रीड़ा ग्रह हैं।

विभंग नदियों का वर्णन

ग्राहवती, ह्रदवती व पंकवती ये तीन विभंग नदियाँ नील पर्वत से निकल कर सीता महानदी को प्राप्त हुई हैं इनका अवस्थान वक्षारों के मध्य में है। पूर्व की ओर से निषध पर्वत से निकल कर तप्त जला, मत्तजला, उन्मत्तजला नदियाँ सीता नदी में प्रविष्ट हुई हैं। ये छह विभंग नदी पूर्व विदेह में हैं।

क्षीरोदा, सीतोदा एवं स्रोतोवाहिनी ये तीन विभंग नदियाँ निषध पर्वत से निकल कर सीतोदा महानदी में प्रविष्ट होती हैं। गंधमालिनी, फेनमालिनि व ऊर्मिमालिनि ये तीन विभंग नदियाँ पश्चिम की ओर से नील पर्वत से निकल कर अपर विदेहों से होती हुई सीतोदा नदी को प्राप्त हुई हैं। इन बारह नदियों का वर्णन रोहित नदी के समान है इनमें से प्रत्येक की परिवार नदियाँ अट्ठाइस हजार प्रमाण हैं। ये नदियाँ स्वर्णमय सोपानों से सहित, सुगंधित जल से परिपूर्ण उपवन, वेदी, तोरणों से संयुक्त, लहरों से चंचल, तोरण द्वारों के उपरिम भाग में स्थित जिन भवनों से युक्त, शोभित होती हैं। सब विभंग नदियों का विस्तार अपने-अपने कुण्ड के पास उत्पत्ति स्थान में पचास कोस और प्रवेश स्थान में पाँच सौ कोस प्रमाण है।

देवारण्य-भूतारण्य वनों का वर्णन

पूर्व विदेह के अंत में जम्बूद्वीप की जगती के पास सीता नदी के दोनों किनारों पर रमणीय देवारण्य वन स्थित हैं। अपर विदेह के अंत में जम्बूद्वीप की जगती के पास सीतोदा नदी के दोनों किनारों पर भूतारण्य वन हैं।

देवारण्य और भूतारण्य का विस्तार, पृथक-पृथक 2922 योजन प्रमाण

है। इस देवारण्य वन में सुवर्ण, रत्न, चाँदी से निर्मित वेदी, तोरण, ध्वज, पताकादिकों से मंडित विशाल प्रासाद हैं। इन प्रासादों में उपपाद-शय्या, अभिषेक गृह, क्रीड़नशाला, जिनभवन आदि विद्यमान हैं। यहाँ के प्रासादों से ईशानेन्द्र के परिवार देव बहुत प्रकार से क्रीड़ा करते रहते हैं, ऐसा ही सम्पूर्ण वर्णन भूतारण्य वन का भी समझना चाहिए।

बत्तीस विदेहों का स्पष्टीकरण

मेरुपर्वत के पूर्व दिशा में पूर्व से पश्चिम को 22000 योजन विस्तार वाला वेदी सहित भद्रसाल वन है। उससे पूर्व दिशा में कर्मभूमि नामक पूर्व विदेह है। वहाँ नील नामक कुलाचल से दक्षिण दिशा में और सीता नदी के उत्तर भाग में मेरु की प्रदक्षिणा रूप से जो 8 क्षेत्र हैं उनके विभागों का कथन करते हैं।

मेरु से पूर्व दिशा के भाग में जो पूर्व भद्रसाल वन की वेदिका है उससे पूर्व दिशा भाग में प्रथम क्षेत्र है, उसके बाद दक्षिण से उत्तर तक लंबा वक्षार है, उसके बाद क्षेत्र है उसके आगे विभंगा नदी है उसके आगे क्षेत्र है, उस क्षेत्र के अनंतर वक्षार पर्वत है फिर क्षेत्र है, फिर विभंगा नदी है, उसके अनंतर क्षेत्र है, उसके पश्चात् वक्षार है, उसके आगे फिर विभंगा है, उसके आगे फिर क्षेत्र है, उसके आगे वक्षार फिर क्षेत्र है तदनन्तर पूर्व समुद्र के पास जो देवारण्य वन है फिर उसकी वेदिका है। ऐसे नौ भित्तियों से आठ क्षेत्र हो जाते हैं जिनके नाम क्रम से कच्छा, सुकच्छा आदि हैं। ऐसे ही सीता नदी से दक्षिण में निषध से उत्तर में आठ क्षेत्र हैं एवं सीतोदा के उत्तर दक्षिण में आठ-आठ क्षेत्र हैं। 8+8+8+8=32 क्षेत्र हो गये हैं।

बत्तीस विदेह के प्रत्येक के छह-छह खण्ड

प्रत्येक कच्छा आदि क्षेत्र में क्षेत्र विस्तार के सदृश लंबे विजयार्ध पर्वत हैं। अर्थात् 2212-2/19 योजन लम्बे और पचास योजन विस्तृत बत्तीस विजयार्ध हैं। इनमें से प्रत्येक के ऊपर उत्तर, दक्षिण दोनों श्रेणियों में पचपन-पचपन विद्याधर नगरियाँ हैं जहाँ नित्य ही विद्याधर निवास करते हैं। प्रत्येक विजयार्ध पर भरत क्षेत्र के विजयार्ध के सदृश नौ-नौ कूट हैं। कच्छा देश के

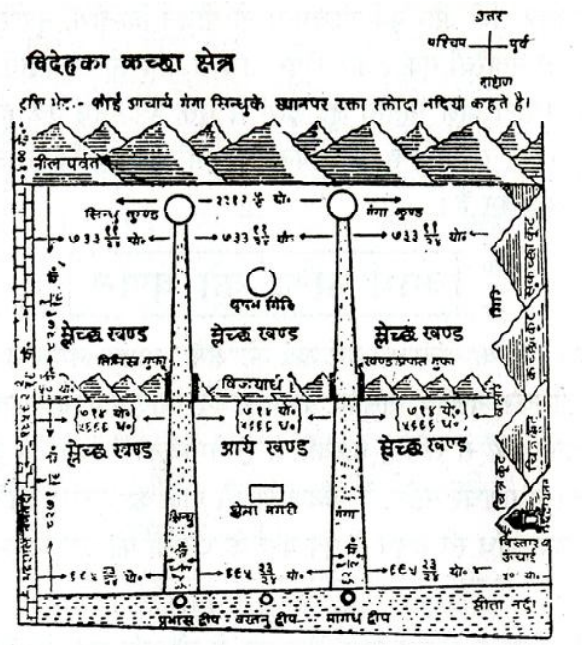

विजयार्ध के सिद्धायतन, कच्छा, खंडप्रपात, पूर्णभद्र, विजयार्ध, माणिभद्र, तिमिश्रगुह, कच्छा और वैश्रवण ये नौ कूटों के नाम हैं। प्रत्येक विजयार्ध के नौ कूटों के नामों में दक्षिण-पूर्व का द्वितीय कूट अपने देश के नाम को और उत्तर पूर्व का द्विचरम कूट भी उसी देश के नाम को धारण करता है। शेष सात कूट कच्छा देश में कहे गये नामों से युक्त हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में निषध पर्वत के उत्तर की ओर उपवन वेदी के उत्तर पार्श्व भाग में वेदी तोरण से सहित दो कुण्ड स्थित हैं इन कुण्डों के उत्तर तोरण द्वार से गंगा, सिंधु नामक दो नदियाँ निकलती हैं जो कि वत्सा क्षेत्र में जाती हुई विजयार्ध के गुफा द्वार से प्रविष्ट होकर दक्षिण गुफा द्वार से बाहर निकल कर पुनः वत्सा क्षेत्र में बहती हुई सीता नदी में प्रविष्ट हो जाती हैं। ऐसे ही आठों क्षेत्रों में समझना, नील पर्वत से दक्षिण की ओर उपवन वेदी के दक्षिण पार्श्व भाग में वेदी तोरण द्वारों से युक्त दो कुण्ड हैं इन कुण्डों के दक्षिण तोरण द्वार से गंगा नदी के सदृश-पृथक्-पृथक् रक्ता-रक्तोदा नदियाँ निकलती हैं, जो कि कच्छा देश में बहती हुई विजयार्ध की गुफा द्वार से निकलकर

सीता नदी में प्रविष्ट हो जाती हैं। ऐसे ही आठों क्षेत्रों में समझना।

इसी प्रकार से पश्चिम विदेह में निषध, नील पर्वत से गंगा, सिंधु और रक्ता-रक्तोदा नदियाँ निकलकर सीतोदा नदी में प्रविष्ट हुई हैं। अतः सभी बत्तीस विदेहों के एक-एक विजयार्ध और दो-दो नदियों से छह-छह खंड हो गये हैं। इनमें से नदी के पास का एवं दो नदियों के मध्य का खंड 'आर्य खंड' कहलाता है शेष पाँच म्लेच्छ खंड कहे जाते हैं।

इन गंगा सिंधु और रक्ता-रक्तोदा की परिवार नदियाँ चौदह-चौदह हजार हैं एवं इनका सारा वर्णन भरत क्षेत्र की गंगा-सिंधु के सदृश है अंतर इतना ही है कि ये कुटिल रूप न होकर सीधी बहती हैं। पर्वत के निकट के तीन म्लेच्छ खण्ड में से मध्य के म्लेच्छ खंड के मध्य भाग में चक्रवर्ती के मान को मर्दन करने वाले अनेक चक्रवर्तियों के नामों से व्याप्त ''वृषभ'' नामक पर्वत है जो कि भरत क्षेत्र के वृषभाचल सृदश है।

प्रत्येक आर्यखंड के मध्य में एक-एक राजधानी है। क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्टपुरि, मंजूषा औषधि और पुण्डरीकिणी ये 8 राजधानियाँ सीता नदी के उत्तर तट पर स्थित हैं। सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंकावती, पद्मावती, शुभा और रत्नसंचया ये आठ नगरियाँ सीता नदी के दक्षिण तट पर हैं। अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयापुरी, अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका ये 8 नगरियाँ सीतोदा के दक्षिण तट पर हैं। विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता, चक्रा, खड्गा, अयोध्या और अवध्या ये 8 नगरियाँ सीतोदा के उत्तर तट पर हैं। ये नगरियाँ दक्षिण-उत्तर में बारह योजन लंबी और पूर्व-पश्चिम में नौ योजन विस्तीर्ण, सुवर्णमय प्राकार से वेष्टित हैं। ये नगरियाँ एक हजार गोपुर द्वारों से पाँच सौ अल्पद्वारों से तथा रत्नों से विचित्र कपाटों वाले सातसौ क्षुद्र द्वारों से युक्त हैं। इनमें एक हजार चतुष्पथ और बारह हजार रथ मार्ग हैं, ये अविनश्वर नगरियाँ अन्य किसी के द्वारा निर्मित नहीं हैं-अकृत्रिम हैं।

आर्य खण्ड का वर्णन

कच्छा देश के अंतर्गत आर्य खंड में 'क्षेमा' नामक नगरी है इस नगरी में चक्रवर्ती, तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि महापुरुष उत्पन्न

होते रहते हैं। अष्ट प्रतिहार्यों से सहित, चक्रवर्तियों से नमस्कृत तीर्थंकर देव के समवसरण, सप्तर्द्धि संपन्न गणधर सतत ही भव्यजीवों को मोक्ष का उपदेश देते रहते हैं, शरीर की अवगाहना पाँच सौ धनुष है एवं वहाँ के मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु पूर्व कोटि प्रमाण है।

यहाँ विदेहों में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन ही वर्ण होते हैं। परचक्र की नीति, अन्याय, अतिवृष्टि, अनावृष्टि से रहित इन देशों में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, बुद्ध आदि के मंदिर नहीं हैं।

विदेह क्षेत्र में कितनी चीजे हैं?

विदेह क्षेत्र का विस्तार 33684-4/19 योजन है। नीलपर्वत और मेरु के मध्य में उत्तरकुरु है एवं मेरु और निषध के मध्य में देवकुरु स्थित है। विदेह के विस्तार में से मंदरपर्वत के विस्तार को घटा कर आधा करने पर कुरुक्षेत्रों का विस्तार होता है (33684-4/19 – 10000)÷2=11842-2/19 अर्थात् ग्यारह हजार आठ सौ बयालीस योजन और एक योजन के उन्नीस भाग में दो भाग प्रमाण है। कुरुक्षेत्र का वृत्त विस्तार 71143-4/19 है। कुरुक्षेत्र की जीवा का प्रमाण 53000 योजन है एवं उसके धनुष का प्रमाण 60418-12/19 योजन है।

मेरु के चारों ही विदिशाओं से संलग्न एवं दोनों तरफ निषध-नील पर्वत से संलग्न चार गजदंत हैं। देवकुरु के नैऋत्य कोण में शाल्मलि वृक्ष एवं उत्तर कुरु के ईशान में जंबूवृक्ष है। निषध पर्वत से सीतोदा एवं नील से सीता नदी निकल कर पश्चिम-पूर्व विदेहों में गई हैं। सीता सीतोदा के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में पाँच-पाँच सरोवर हैं। सीता सीतोदा के पूर्व-पश्चिम किनारों पर दो-दो यमकगिरि हैं। इन्हीं सीता सीतोदा की चारों दिशाओं में दोनों किनारो पर एक-एक दिग्गज पर्वत होने से 8 दिग्गजेन्द्र पर्वत हैं पूर्व पश्चिम विदेह में सोलह वक्षार, बारह विभंग नदियाँ, बत्तीस क्षेत्र बत्तीस विजयार्ध, बत्तीस वृषभाचल एवं बत्तीस राजधानियाँ हैं दोनों तरफ दो-दो देवारण्य और भूतारण्य वन हैं। प्रत्येक क्षेत्र की गंगा, सिंधु एवं रक्ता रक्तोदा ऐसी 64 नदियाँ हैं। सीता सीतोदा की परिवार नदियाँ 168000 है। विभंगा में प्रत्येक की परिवार नदियाँ 28000 हैं। गंगा, सिंधु आदि में प्रत्येक की परिवार

नदियाँ 14000 हैं। गंगा आदि के एवं विभंगा के उत्पत्ति स्थान के कुण्ड 12+64=76 कुंड हैं एवं सीता सीतोदा के गिरने के स्थान पर दो कुण्ड हैं। पूर्व विदेह के दक्षिण-उत्तर में एवं पश्चिम विदेह के दक्षिण-उत्तर में सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु ऐसे चार तीर्थंकर सतत काल विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार से अति संक्षेप में विदेह का वर्णन किया है।

नील पर्वत का वर्णन

दोनों विदेहों के उत्तर भाग में निषध के समान नील पर्वत है। विशेष इतना है कि इस पर्वत पर स्थित, कूटों, देव-देवियों, द्रहों के नाम अन्य हैं। सिद्ध, नील, पूर्व विदेह, सीता, कीर्ति, नारी, अपरविदेह, रम्यक और अपदर्शन ऐसे नौ कूट इस नील पर्वत पर हैं। इनमें से प्रथम कूट पर सौमनस्थ जिनालय के सदृश जिन भवन हैं। शेषकूटों पर व्यंतर देवों के समान भवन हैं। सब व्यंतर देव अपने-अपने कूटों के नाम से सहित बहुत परिवार से युक्त, दस धनुष ऊँचे, एक पल्य प्रमाण आयु वाले हैं।

केसरी सरोवर का वर्णन

नीलगिरि पर स्थित सरोवर 'केसरी' नाम वाला है जो कि तिगिंच्छ के समान वर्णन से सहित है इस द्रह के मध्य में रहने वाले कमल पर 'कीर्ति' देवी निवास करती है। इस देवी का सब परिवार धृतिदेवी के सदृश है। यह देवी दस धनुष ऊँची और अनुपम लावण्य से परिपूर्ण है। यह ईशानेंद्र की देवी है।

रम्यक क्षेत्र का वर्णन

रम्यक क्षेत्र का वर्णन हरि क्षेत्र के सदृश अर्थात् मध्यम भोग भूमि रूप है। इसके बहुमूल्य भाग में पद्मनामक नाभिगिरि स्थित है। केसरी सरोवर के उत्तर द्वार से निकली हुई 'नरकांता' नदी उत्तर की ओर गमन करती हुई 'नरकांत कुण्ड' में गिरकर उत्तर की ओर से निकलती है। पश्चात् वह नदी अर्ध योजन मात्र से नाभिगिरि को छोड़कर प्रदक्षिण क्रम से रम्यक क्षेत्र के मध्य से जाती हुई पश्चिम मुख होती हुई परिवार नदियों के साथ लवणसमुद्र में प्रवेश करती है। अगले रुक्मि पर्वत के पुंडरीक द्रह के दक्षिण भाग से नारी

नदी निकलकर नारी कुण्ड में गिर कर दक्षिण की ओर बहती हुई नाभिगिरि के पास से कुटिल रूप होती हुई पूर्व की तरफ मुड़कर पूर्व समुद्र में प्रवेश कर जाती है।

रुक्मि पर्वत का वर्णन

रम्यक भोग भूमि के उत्तर में रुक्मि पर्वत है। इसका संपूर्ण वर्णन महाहिमवान् के सदृश है। विशेष इतना है कि यहाँ उन पर कूट, द्रह और देवियों के नाम भिन्न हैं। सिद्ध, रुक्मि, रम्यक, नरकांता, बुद्धि, रुप्यकूला, हैरण्यवत और मणिकांचन ये आठ कूट रुक्मि पर्वत पर हैं।इनमें से प्रथम कूट पर जिन मंदिर और शेष कूटों पर व्यंतर देवों के प्रासाद हैं। ये देव अपने कूटों के नाम से विख्यात हैं। रुक्मि पर्वत के बहुमध्य में फूले हुये कमलों से सहित तिगिंच्छ द्रह के समान 'पुंडरीक' द्रह है। इस द्रह के मध्य कमल में 'बुद्धि' देवी निवास करती है इसका परिवार कीर्ति देवी की अपेक्षा आधा अर्थात् 280230 संख्या प्रमाण है। यह भी ईशानेंद्र की देवी दश धनुष शरीर वाली एवं एक पल्य प्रमाण आयु वाली है। इस सरोवर के दक्षिण भाग से नारी नदी निकल कर रम्यक क्षेत्र में गई है।

हैरण्यवत क्षेत्र का वर्णन

यह हैरण्यवत क्षेत्र हैमवत के सदृश है। इसमें जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था है। यहाँ के भी द्रह, नाभिगिरि और नदियों के नाम भिन्न हैं। इस क्षेत्र के मध्य भाग में 'गंधवान' नामक नाभिगिरि पर्वत है इसके ऊपर स्थित भवन में प्रभास नामक देव निवास करता है। पुंडरीक सरोवर के उत्तर द्वार से रुप्यकूला नदी निकलकर 'रुप्यकूल' नामक कुण्ड में गिरती है। तत्पश्चात् वह इस कुंड के उत्तर द्वार से निकल कर उत्तर की ओर गमन करती हुई रोहित नदीवत् नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करके पश्चिम की ओर जाती है और परिवार नदियों से संयुक्त होती हुई लवणसमुद्र में प्रवेश कर जाती है। ऐसे ही शिखरी पर्वत के महापुण्डीक सरोवर के दक्षिण द्वार से सुवर्णकूला नदी निकल कर सुवर्णकूल कुण्ड में गिरकर उसके दक्षिण तोरण द्वार से निकल कर दक्षिण मुखी होकर नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करती हुई हैरण्यवत क्षेत्र

के अभ्यंतर भाग में से पूर्व की दिशा की ओर जाकर जम्बूद्वीप संबंधी जगती के बिल में से पूर्व दिशा समुद्र में प्रवेश करती है।

शिखरी पर्वत का वर्णन

इस क्षेत्र के उत्तर भाग में 'शिखरी' नामक अंतिम कुल पर्वत है इसका वर्णन हिमवन् के सदृश है। विशेष यही है कि यहाँ कूट, द्रह, देव, देवी और नदियों के नाम भिन्न हैं। इस पर्वत पर प्रथम सिद्धकूट, शिखरी, हैरण्यवत, रसदेवी, रक्ता, लक्ष्मी, काँचन, रक्तवती, गंधवती, ऐरावत और मणिकांचन ये 11 कूट हैं। इन 11 कूटों की ऊँचाई पच्चीस योजन प्रमाण है। इनमें प्रथम कूट में जिनेन्द्र भवन, शेष कूटों पर कूटों के नाम वाले व्यंतर देव देवियों के आवास हैं। इस शिखरी पर्वत के मध्य में 'महापुंडरीक' नामक दिव्य सरोवर है। इसके कमल भवन में 'श्रीदेवी' के सदृश 'लक्ष्मी' देवी निवास करती है वह ईशानेंद्र की देवी है। इस सरोवर के दक्षिण तोरण द्वार से निकल कर सुवर्णकूला नदी हैरण्यवत क्षेत्र में चली गई है।

ऐरावत क्षेत्र का वर्णन

शिखरी पर्वत के उत्तर और जम्बूद्वीप की जगती के दक्षिण भाग में भरत क्षेत्र के सदृश ऐरावत क्षेत्र स्थित है। इस क्षेत्र के मध्य भाग में विजयार्ध पर्वत के ऊपर स्थित कूटों और नदियों के नाम भिन्न हैं। सिद्ध, ऐरावत, खण्डप्रपात, माणिभद्र, विजयार्ध, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुह, ऐरावत और वैश्रवण ये नौ कूट यहाँ के विजयार्ध पर्वत पर हैं।

शिखरी पर्वत के ऊपर स्थित महापुण्डरीक द्रह के पूर्वद्वार से निकल कर 'रक्ता' नामक नदी रक्तकुण्ड में गिरती है पुनः वह लवणसमुद्र में प्रवेश करती है। उसी द्रह के पश्चिम तोरण द्वार से 'रक्तोदा' नदी निकलती है और रक्तोद कुण्ड में गिरती है। पश्चात् वह कुण्ड से निकल कर पश्चिम मुख होती हुई अनेक नदियों से सहित होकर द्वीप की जगती के बिल से लवणसमुद्र में प्रवेश करती है। यहाँ ऐरावत क्षेत्र में भी समुद्र की तरफ का आर्यखंड है बाकी पाँच म्लेच्छखंड हैं उनमें भी मध्य के म्लेच्छखंड में वृषभ पर्वत है। वहाँ के सभी चक्रवर्ती उस पर अपनी प्रशस्ति लिखते हैं। यहाँ ऐरावत के आर्यखंड

में भी भरत के आर्यखंड के समान छह कालों का परिवर्तन होता रहता है।

गंगा, रोहित, हरित, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियाँ पूर्वदिशा में जाती हैं। सिंधु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिम समुद्र में जाती हैं।

इस प्रकार संक्षेप में जम्बूद्वीप के क्षेत्र पर्वतों का वर्णन हुआ है। विशेष बात यह है कि भरत, हैमवत, हरि और विदेह का देवकुरु इनकी जैसी व्यवस्था है वैसी ही विदेह के उत्तर कुरु, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्रों की व्यवस्था है।

जम्बूद्वीप की 34 कर्मभूमि

भरत, ऐरावत और पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह की 32 ऐसी 34 कर्मभूमियाँ हैं।

6 भोगभूमि

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि है। हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि है एवं देवकुरु उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि है।

शाश्वत कर्मभूमि

बत्तीसों विदेहों में हमेशा ही चतुर्थकालवत् रहता है यहाँ काल परिवर्तन नहीं होता है। यहाँ के मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक कोटिपूर्व एवं शरीर की अवगाहना पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है। यहाँ के म्लेच्छखंडों में भी चतुर्थ काल ही रहता है।

षट्काल परिवर्तन

''भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां (तत्त्वार्थ सूत्र) इस सूत्र में कहे गये अनुसार भरत और ऐरावत क्षेत्रों में ही उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के षट्कालों से मनुष्यों की आयु, अवगाहना आदि में वृद्धि ह्रास होती रहती है। इन भरत ऐरावत क्षत्रों के पाँच-पाँच म्लेच्छ खण्ड में ये काल परिवर्तन नहीं है केवल चतुर्थकाल के आदि से लेकर अंत तक ही परिवर्तन होता है और अंत से आदि तक चतुर्थ की आदि जैसा हो जाता है।

भरत क्षेत्र के आर्यखंड में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी रूप काल की

जम्बूद्वीपस्थ

नाम	ऊँचाई	विस्तार	वाण	उत्तर जीवा
1. क्षुद्र हिमवान्	100 यो.	1052-11/19 यो.	1578-18/19 यो.	24932-1/19 यो.
2. महाहिमवान्	200 यो.	4210-10/19 यो.	7894-14/19 यो.	53931-6/19 यो.
3. निषध	400 यो.	16842-2/19 यो.	33157-17/19 यो.	94156-2/19 यो.
4. नील	400 यो.	16842-2/19 यो.	33157-17/19 यो.	94156-2/19 यो.
5. रुक्मि	200 यो.	4210-10-19 यो.	7894-4/19 यो.	53931-6/19 यो.
6. शिखरी	100 यो.	1052-11/19 यो.	1578-18/19 यो.	24932-1/19 यो.

जम्बूद्वीपस्थ

नाम	विस्तार	वाण	उत्तर जीवा
1. भरत	526-6-19 यो.	526-6-19 यो.	14471-5-19 यो.
2. हैमवत्	2105-5/19 यो.	3684-4/19 यो.	37674-16-19 यो.
3. हरि	8421-1/19 यो.	16315-15/19 यो.	73901-17/19 यो.
4. विदेह	33684-4/19 यो.	50000 यो.	100000 यो.
5. रम्यक	8421-1/19 यो.	16315-15/19 यो.	73901-17/19 यो.
6. हैरण्यवत	2105-5/19 यो.	3684-4/19 यो.	36674-16/19 यो.
7. ऐरावत	526-6-19 यो.	526-6/19 यो.	14471-5/19 यो.

छह कुल पर्वत

धनुष पृष्ठ	चूलिका	पार्श्वभुजा	द्रह	द्रह से निकली हुई नदियाँ	कूट सं.
25230-4/19 यो.	5230-15/38 यो.	5350-31/38 यो	पद्म	1 गंगा 2 सिंधु 3 रोहितास्या	11
57293-10/19 यो.	8128-5/19 यो.	9276-19/38 यो.	महापद्म	2 हरिकांता	8
124346-2/19 यो.	10127-2/19 यो.	20165-5/38	तिगिंच्छ	1 हरित 2 सीतोदा	9
,,	,,	,,	केशरी	1 सीता 2 नरकांता 1 नारी	9
57293-10/19 यो.	8128-5-19 यो.	9276-19/38 यो.	पुंडरीक	2 रूप्यकूला 1 सूवर्णकूला 2 रक्ता	8
25230-4/19यो.	5230-15/38 यो.	5350-31/38 यो.	महापुंडरीक	3 रक्तोदा	11

सात क्षेत्र

धनुषपृष्ठ	चूलिका	पार्श्वभुजा	काल भेद
14528-11/19 यो.	1875-13/38 यो.	1892-15/38 यो.	सुषमासुषमादि 6
38740-10/19 यो.	6371-15/38 यो.	6755-3/19 यो.	दुःषमासुषमा
84016-4/19 यो.	9985-11/38 यो.	13361-13/38 यो.	सुषमा
1581113-7/2 यो.	2921-18/19 यो.	16883-17/38 यो.	सुषमा दुःषमा
84016-4/19 यो.	9985-11/38 यो.	13361-93/38 यो.	सुषमा
38740-10/19 यो.	6371-15/38 यो.	6755-3/19 यो.	सुषमादुःषमा
14528-11/19 यो.	1875-13/38 यो.	18392-15/38 यो.	सुषमादुषमादि 6

पर्यायें होती हैं। अवसर्पिणी काल में मनुष्य एवं तिर्यंचों की आयु, शरीर की ऊँचाई और विभूति इत्यादि सभी घटते रहते हैं एवं उत्सर्पिणी में बढ़ते रहते हैं।

दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण अवसर्पिणी और दस कोड़ाकोड़ी प्रमाण उत्सर्पिणी काल है। इन दोनों को मिलाने पर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कल्पकाल होता है।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में से प्रत्येक के छह-छह भेद हैं। सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमादुष्षमा, दुष्षमा-सुषमा, दुष्षमा और अतिदुष्षमा। इन छहों में से प्रथम सुषमासुषमा चार कोड़ाकोड़ी सागर, सुषमा तीन कोड़ाकोड़ी सागर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागर, चौथा ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, पंचम दुष्षमाकाल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और छठा अतिदुष्षमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है।

इनका परिवर्तन आरे के समान होता है अर्थात् प्रथम काल में छठे काल तक अवसर्पिणी पुनः छठे काल से प्रथम काल तक उत्सर्पिणी चलती है।

प्रथमकाल का वर्णन

सुषमासुषमा नामक प्रथम काल से उत्तम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। इस काल में वहाँ की भूमि रज, कण्टक, विकलत्रय से रहित होती है। वहाँ कल्हार, कमल आदि से मनोहर वापियाँ रत्नों की सीढ़ियों से सहित रहती हैं। भोगभूमिजनों के सुंदर भवन शय्या आसनों से रमणीय अनुपम हैं। वहाँ की पृथ्वी चार अंगुल प्रमाण हरित घास से सहित पंच वर्ण वाली मन नयनों को हरण करने वाली हेाती है वहाँ पर वापिका, कल्पवृक्ष आदि से परिपूर्ण उन्नत पर्वत हैं वहाँ पर असंज्ञी जीव नहीं हैं। परस्पर में कलह विरोध, स्वामी भृत्य आदि भेद नहीं रहता है। ये युगलिया चौथे दिन (बेर) के बराबर आहार करते हैं यहाँ के स्त्री पुरुषों की ऊँचाई तीन कोस, आयु तीन पल्य प्रमाण होती है। प्रत्येक के पृष्ठ भाग में दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती हैं। उत्तम संहनन, संस्थान से सहित मंदकषायी, कवलाहार करते हुए भी मलमूत्र से रहित होते हैं। वहाँ के पानांग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष उत्तम भोगोपभोग सामग्री को प्रदान करते रहते हैं। पानांग तूर्यांग, वस्त्रांग, भूषणांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्ष

अपने नामों के अनुसार ही फल देने वाले हैं। इन भोगभूमि के मनुष्यों का बल नौ हजार हाथी के प्रमाण होता है।

मिथ्यात्व से युक्त, मंदकषायी दानादि से तत्पर मनुष्य और तिर्यंच भोग भूमि को प्राप्त करते हैं कदाचित् तिर्यंच आयु का बंध करके पुनः क्षायिक आदि सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला मनुष्य इन भोगभूमियों में जन्म ले लेता है।

भोगभूमि के मनुष्यों और तिर्यंचों में आयु के नव मास शेष रहने पर उनकी माता को गर्भ रहता है और युगल बालक बालिका के जन्म लेते ही वे माता-पिता जंभाई एवं छींक से मरण को प्राप्त हो जाते हैं। मरकर ये भोगभूमिज युगल भवनत्रिक से सौधर्म युगल तक देवगति से जन्म ले लेते हैं। भोगभूमि के जन्मे बालयुगल अंगूठा चूसने, बैठने, अस्थिर गमन करने, स्थिर गमन करने, कलागुणों की प्राप्ति तारुण्य और सम्यक्त्व की योग्यता इनमें से प्रत्येक अवस्था में कम से कम तीन दिन व्यतीत करते हैं। अर्थात् 21 दिनों में तरुण हो जाते हैं।

वहाँ के मनुष्य-तिर्यंच में कोई जातिस्मरण से कोई देवों से प्रतिबोधित होकर, कोई ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश से सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। वे भोगभूमिज, चौंसठ कलाओं से सहित परस्पर के वैर विरोध से रहित मृदु-मधुर भाषी होते हैं।

वहाँ के व्याघ्र आदि पशुगण मधुर कल्पवृक्षों के ही फलों का, तृण, कंद, अंकुरादि का उपयोग करते हैं। माँसाहारी नहीं हैं। यहाँ के जीव सुवर्ण की कांति सदृश कांति वाले हैं काल के प्रारंभ से अंत तक यहाँ पर धीरे-धीरे आयु, शरीर की ऊँचाई आदि से ह्रास होने लगता है।

द्वितीय काल का वर्णन

इस द्वितीयकाल में मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था होती है यहाँ के मनुष्यों की आयु दो पल्य और शरीर की अवगाहना दो कोस रहती है शरीर का वर्ण चंद्रमा के सदृश धवल रहता है। इनके पृष्ठ भाग की हड्डियाँ एक सौ अट्ठाईस रहती हैं उत्तम संस्थान एवं संहनन से युक्त ये जीव तीन दिन में बहेड़ा के समान आहार लेते हैं। इस काल में बाल युगल अंगूठा चूसने में 5-5 दिन व्यतीत करते हैं अर्थात् 35 दिनों में तरुण होकर सम्यक्त्व ग्रहण के

योग्य हो जाते हैं। बाकी वर्णन प्रथम कालवत् है। इसमें भी आयु बल आदि घटते जाते हैं।

तृतीय काल का वर्णन

ऊँचाई आदि घटते-घटते तृतीय काल प्रवेश करता है उस समय यहाँ पर जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई एक कोस, आयु एक पल्य है एवं हड्डियाँ चौसठ होती हैं। इस काल में उत्तम संहनन आदि से युक्त मनुष्य एक दिन के अंतराल से आंवले के बराबर अमृतमय आहार लेते हैं। इस काल में उत्पन्न हुये बाल युगल अंगूठा चूसने में सात दिन, बैठने में सात दिन आदि से 49 दिन में सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इन भोग भूमियों में शत्रु आदि की बाधायें, असि मषि आदि षट्कर्म, प्रचंडशीत, उष्ण आदि बाधायें नहीं होती हैं। वहाँ के जीव संयम, देश संयम को ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति

इस तृतीय काल के अंत में कुछ कम एक पल्योपम के आठवाँ भाग मात्र काल शेष रहता है तब 'प्रतिश्रुति' नामक प्रथम कुलकर जन्म लेता है। इसके शरीर का उत्सेध एक हजार आठ सौ धनुष, आयु पल्य के दसवें भाग प्रमाण और देवी स्वयंप्रभा नामक थी। उस समय समस्त भोगभूमिज लोग चंद्र और सूर्य के मण्डलों को देखकर ऐसा समझकर डर गये कि "यह कोई आकस्मिक महा भयंकर उत्पात हुआ है।"

तब प्रतिश्रुति नामक कुलकर ने उनको निर्भय करने के लिए बताया कि कालवश अब तेजांग जाति के कल्प-वृक्षों के किरण-समूह मंद पड़ गये हैं इस कारण अब आकाश में सूर्य-चंद्र मण्डल प्रकट हुये हैं। इनकी ओर से तुम लोगों को भय का कोई कारण नहीं है। आकाश में यद्यपि इनका उदय और अस्त नित्य ही होता रहा है, किन्तु ज्योतिरंग कल्पवृक्ष की किरणों से प्रकट नहीं दिखते थे। इस प्रकार के कुलकर के वचनों को सुनकर सभी जन निर्भय होकर उनकी पूजा स्तुति करते हैं।

इन प्रतिश्रुति कुलकर के क्रम से सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर,

सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराज ये 14 कुलकर उत्पन्न हुये हैं जोकि क्रम से काल के वश में होने वाली एक-एक असुविधाओं को दूर करते रहे हैं। अंतिम कुलकर श्री नाभिराय की पत्नी 'मरुदेवी' नाम की थी, इनकी आयु एक कोटि पूर्व प्रमाण, शरीर उत्सेध पाँच सौ धनुष एवं वर्ण स्वर्ण के सदृश था।

उस समय बालकों का नाभिनाल अत्यंत लम्बा होने लगा था इसलिए नाभिराय कुलकर उसके काटने का उपदेश देते हैं। इसके पहले आठवें मनु के समय माता पिता पुत्र युगल को देखने लगते थे आगे संतान जीवित रहने पर उन्हें क्रीड़ा कराना, चुप करना आदि कार्य करने लगते थे। चौदहवें मनु के समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये तब प्रजाजन श्री नाभिराज कुलकर की शरण में आये और करुणापूर्वक नाभिराज ने आजीविका के लिए वनस्पति फल आदि खाने का उपदेश दिया।

प्रतिश्रुति को आदि लेकर नाभिराज पर्यंत ये चौदह मनु पूर्वभव में विदेह क्षेत्र के भीतर महाकुल में राजकुमार थे। वे सब संयम तप और ज्ञान से युक्त पात्रों के लिए दानादि देने में कुशल अपने योग्य अनुष्ठान से संयुक्त, मार्दव आर्जव आदि गुणों से सहित होते हुये पूर्व में मिथ्यात्व सहित होने से मनुष्यायु का बंध कर लिया, पश्चात जिनेन्द्र भगवान के चरणों के समीप क्षायिक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

अपने योग्य श्रुत को पढ़कर इन राजकुमारों में से कितने ही आयु के क्षीण होने पर अवधिज्ञान के साथ भोग भूमि में मनुष्य होकर अवधिज्ञान से और कितने ही जातिस्मरण से भोग भूमिज मनुष्यों को जीवन के उपाय बतलाते हैं इसलिये मुनीश्वरों के द्वारा ये 'मनु' कहे जाते हैं।

चतुर्थ काल का वर्णन

सुषमादुष्षमा नामक चतुर्थ काल में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष शेष रहने पर भगवान ऋषभदेव का अवतार हुआ है और तृतीय काल में तीन वर्ष आठ मास एक पक्ष के अवशिष्ट रहने पर ऋषभदेव सिद्ध पद को प्राप्त हुये हैं।

त्रेसठ शलाका पुरुष

अब यहाँ से आगे पुण्योदय से भरत क्षेत्र में मनुष्यों में श्रेष्ठ और संपूर्ण लोक में प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होने लगते हैं। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलभद्र, नव वासुदेव और नव प्रति वासुदेव ये त्रेसठ शलाका पुरुष हैं। नाभिराय के पुत्र भी वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुये हैं ऐसे ही महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर धर्म तीर्थ के प्रवर्तक हैं। भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांति, कुंथु, अरह, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती हुये हैं।

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नंदी, नंदिमित्र, राम और पद्म ये नव बलभद्र हुये हैं। त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोतम, पुरुषसिंह, पुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण ये नव नारायण हैं। अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुंभ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध ये नव प्रतिनारायण हैं। ये भरतक्षेत्र के तीर्थंकर पंच महाकल्याण से पृथ्वी तल पर विख्यात रहते हैं।

इस हुंडावसर्पिणी के निमित्त से नौ रुद्र एवं नव नारद भी उत्पन्न होते हैं। इन सबका विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से देख लेना चाहिए।

चौबीस तीर्थंकरों के समयों में अनुपम आकृति के धारक बाहुबलि को प्रमुख करके चौबीस कामदेव होते हैं।

तीर्थंकर उनके माता-पिता, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर पुरुष यह सब भव्य होते हैं, नियम से सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर तो उसी भव से मोक्ष प्राप्त करते हैं अन्यों के लिए उसी भव का नियम नहीं है।

भगवान ऋषभदेव के मुक्त हो जाने के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागरों के बीतने पर अजितनाथ तीर्थंकर ने मोक्ष पद प्राप्त किया। भगवान् ऋषभदेव ने तीसरे काल में ही मोक्ष प्राप्त किया है और भगवान् के समय तृतीय काल में ही कर्मभूमि की व्यवस्था हो गयी थी। यह बात केवल इस हुंडावसर्पिणी के निमित्त से ही हुई है।

पंचम काल का वर्णन

चतुर्थ काल में तीन वर्ष, आठ मास, एक पक्ष अवशिष्ट रहने पर श्री वीर प्रभु सिद्ध पद को प्राप्त हुये हैं। अर्थात् वीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के व्यतीत हो जाने पर दुष्षमाकाल नामक पंचम काल प्रवेश करता है। इस पंचम काल के प्रवेश में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष, ऊँचाई सात हाथ और पृष्ठ भाग में हड्डियाँ चौबीस होती हैं। जिस दिन भगवान महावीर स्वामी मुक्त हुये उसी दिन गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। गौतम स्वामी के मुक्त होने के बाद, सुधर्म स्वामी, उनके बाद जम्बूस्वामी केवली हुये। ये सब चतुर्थ काल के ही जन्म लेने वाले हैं। जम्बू स्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् अन्य कोई मोक्ष नहीं गये।

अनंतर ग्यारह अंग चौदह पूर्व के पारंगत श्रुतकेवली, कुछ-कुछ अंगों के धारक, पुनः अंगों के अंश के धारक आचार्य परमेष्ठी होते रहे हैं। आज भी श्रमण परम्परा को अक्षुण्ण रखने वाले दिगम्बर, मुनिराज विहार कर रहे हैं। इस दुष्षम काल में मनुष्यों की आयु, ऊँचाई, धर्म आदि का ह्रास होता रहता है। आगे इस काल के अंत में इक्कीसवां कल्की उत्पन्न होता है उसके समय में 'वीरांगज' नामक एक मुनि, 'सर्वश्री' नामक आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक और पंगुश्री श्राविका होगी। एक दिन कल्की अपने मंत्रियों से कहता है कि मंत्रिवर! ऐसा कोई पुरुष तो नहीं है जो मेरे वश में न हो। तब मंत्री कहता है कि हे राजन्! एक मुनि आपके वश में नहीं है। तब कल्की राजा की आज्ञा होती है कि तुम उस मुनि के आहार में प्रथम ग्रास को शुल्क के रूप में ग्रहण करो। तत्पश्चात् कल्की की आज्ञा से प्रथम ग्रास के माँगे जाने पर मुनीन्द्र तुरंत उसे देकर और अंतराय करके वापस चले जाते हैं एवं अवधिज्ञान को भी प्राप्त हो जाते हैं उसी समय मुनिराज आर्यिका और श्रावक, श्राविका को बुलाकर प्रसन्नचित्त से कहते हैं कि अब दुष्षमा काल का अंत आ चुका है, तुम्हारी और हमारी तीन दिन की आयु शेष है और यह अंतिम कल्की है।

तब वे चारों जन चार प्रकार के आहार और परिग्रहादि को जन्मपर्यंत छोड़कर सन्यास को ग्रहण कर लेते हैं। ये सब कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष

के अंत में-अमावस्या के दिन स्वातिनक्षत्र में सूर्य के उदित रहने पर सन्यास को धारण करके समाधिमरण को प्राप्त कर लेते हैं और सौधर्म स्वर्ग में देव हो जाते हैं। उसी समय मध्यान्ह काल में क्रोध से सहित कोई असुरकुमार जाति का उत्तम देव कल्की राजा को मार डालता है और सूर्यास्त समय अग्नि नष्ट हो जाती है यह कल्की धर्मद्रोह से मरकर पहली नरक पृथ्वी में चला जाता है।

छठे काल का वर्णन

इसके बाद तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम अतिदुष्षमा नामक छठा काल प्रविष्ट होता है। इस काल के प्रवेश में शरीर की ऊँचाई साढ़े तीन हाथ पृष्ठ भाग की हड्डियाँ बारह और उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष प्रमाण होती है। उस काल में सब मनुष्यों का आहार मूल, फल और मत्स्य आदि होते हैं। उस समय मनुष्यों को वस्त्र, वृक्ष, मकान आदि दिखाई नहीं देते हैं। अतः सभी मनुष्य नंगे और भवनों से रहित होकर वनों में घूमते हैं। उस समय के लोग सर्वांग धूम्रवर्ण, पशुवत आचरण करने वाले, क्रूर, बहिरे, अन्धे, गूंगे, दारिद्र्य एवं क्रोध से परिपूर्ण दीन, हुंडक संस्थान युक्त, कुबड़े, बौने, व्याधि वेदना से विकल, लोभ मोहयुक्त, पापिष्ठ, पुत्रकलत्र से रहित, दुर्गंध युक्त होते हैं।

इस छठे काल में ये जीव नरक तिर्यंच गति से आते हैं और नरक तिर्यंच गति में ही जाते हैं। दिन प्रतिदिन इन जीवों की आयु, बल, ऊँचाई आदि हीन होते जाते हैं।

उनंचास दिन कम इक्कीस हजार वर्षों के बीतने पर जंतुओं को भयदायक घोर प्रलय काल प्रस्तुत होता है। उस समय महागंभीर एवं भीषण संवर्तक वायु चलती है जो सात दिन तक वृक्ष, पर्वत और शिला प्रभृति को चूर्ण करती है। इससे वहाँ के मनुष्य, तिर्यंचों को महादुःख प्राप्त होता है तथा वे वस्त्र और स्थान की अभिलाषा करते हुए बहुत प्रकार से विलाप करते हैं इस समय पृथक्-पृथक् संख्यात वह बहत्तर युगल गंगा, सिंधु नदियों की वेदी और विजयार्ध वन के मध्य में प्रवेश करते हैं। इसके अतिरिक्त देव और विद्याधर दयार्द्र होकर मनुष्य और तिर्यंचों में से संख्यात जीव राशि को उन

प्रदेशों में ले जाकर रखते हैं।

उस समय गंभीर गर्जना से युक्त मेघ-सात-सात दिन तक हिम आदि की वर्षा करते हैं क्रमशः उनके नाम-बर्फ, क्षार जल, विषजल, धूम्र, धूलि, वज्र और अग्नि है। इन वज्र, अग्नि आदि की वर्षा से भरत क्षेत्र के भीतर आर्यखंड में चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित वृद्धिंगत हुई एक योजन की भूमि जलकर नष्ट हो जाती है अर्थात यहाँ के आर्यखंड की चित्रा पृथ्वी एक योजन तक ऊँची उठ गई है वह जलकर खाक होकर शेष भूमियों के समान हो जाती है। इस छठे काल के अंत के मनुष्यों की ऊँचाई एक हाथ, आयु सोलह वर्ष प्रमाण रहती है। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्ष का यह काल समाप्त हो गया है।

उत्सर्पिणी का पहला छठा काल

इसके पश्चात उत्सर्पिणी इस नाम से विख्यात काल प्रवेश करता है इसके छह भेदों में से प्रथम अतिदुष्षमा, दुष्षमा, दुष्षमसुषमा, सुषमदुष्षमा, सुषमा और सुषमा-सुषमा काल क्रम से आते हैं। प्रथम अतिदुष्षमा काल छठे काल के सदृश छठा काल ही कहलाता है। उत्सर्पिणी काल के प्रारंभ में पुष्कर मेघ सात दिन तक सुखोत्पादक जल बरसाते हैं। जिससे वज्राग्नि से जली हुई पृथ्वी उत्तम हो जाती है। पुनः क्षीर मेघ क्षीर जल बरसाते हैं, अमृत मेघ अमृत जल बरसाते हैं और रस मेघ दिव्यरस की वर्षा करते हैं विविध रसपूर्ण औषधियों से भरी हुई भूमि सुस्वाद परिणत हो जाती है। पश्चात् शीतल गंध को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यंच गुफाओं के बाहर निकल आते हैं। दिन प्रतिदिन उनकी आयु, अवगाहना, बुद्धि तेज, बाहुबल, क्षमा, धैर्य इत्यादि बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्षों के बीत जाने पर भरतक्षेत्र में अतिदुष्षमा नामक काल पूर्ण होता है।

पंचम काल

पुनः दुष्षमाकाल प्रवेश करता है। इस काल में मनुष्य तिर्यंचों का आहार बीस वर्ष तक पहले के समान रहता है। इस काल के प्रथम प्रवेश में उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष और ऊँचाई तीन हाथ प्रमाण होती है इस काल में एक हजार

वर्षों के शेष रहने पर भरतक्षेत्र में चौदह कुलकरों की उत्पत्ति होने लगती है उसमें कनक, कनकप्रभ आदि कुलकरों में अंतिम कुलकर पद्मपुंगव नाम के होते हैं इनमें से प्रथम कुलकर की ऊँचाई चार हाथ और अंतिम कुलकर की ऊँचाई सात हाथ होती है उस समय श्रेष्ठ औषधि, वनस्पति आदि के होते हुए भी अग्नि नहीं रहती है अतः मथ करके अग्नि उत्पन्न करो, अन्न पकाओं आदि रूप से शिक्षा देते हैं वे पुरुष अत्यन्त म्लेच्छ होते हैं विशेष यह है कि पद्मपुंगव कुलकर के समय से विवाह विधियाँ प्रचलित हो जाती हैं।

चतुर्थ काल

चतुर्थ काल के प्रवेश में ऊँचाई सात हाथ और आयु एक सौ बीस वर्ष प्रमाण होती है। इस समय मनुष्य के पृष्ठ भाग की हड्डियाँ चौबीस होती हैं। तथा मनुष्य पाँचवर्ण वाले शरीर से युक्त, मर्यादा, विनय, लज्जा से सहित संतुष्ट और सम्पन्न होते हैं। इस काल में चौबीस तीर्थंकर होते हैं उनमें से अंतिम कुलकर का पुत्र अन्तिम तीर्थंकर होता है उस समय से यहाँ विदेह क्षेत्र जैसी वृत्ति होने लगती है।

महापद्म सुरदेव से लेकर अनंतवीर्य पर्यंत चौबीस तीर्थंकर होते हैं। इनमें से प्रथम तीर्थंकर की ऊँचाई सात हाथ और आयु एक सौ सोलह वर्ष प्रमाण होती है तथा अंतिम तीर्थंकर की आयु एक पूर्वकोटि और ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है।

इस काल में बारह चक्रवर्ती, नव बलभद्र, नव नारायण, नव प्रति-नारायण उत्पन्न होते हैं। ये त्रेसठ शलाका पुरुष एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम प्रमाण इस तृतीय काल में क्रम से उत्पन्न होते हैं। यह काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। इस काल के अंत में मनुष्यों की आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण, ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष और पृष्ठ भाग की हड्डियाँ चौंसठ होती हैं। उस समय नर-नारी देव एवं अप्सराओं के सदृश होते हैं।

तृतीय काल

इसके बाद सुषम दुष्षमा काल के प्रारंभ में मनुष्यों की आयु एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण होती है। उस समय उन मनुष्यों की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है, पुनः क्रम से उत्तरोत्तर आयु और ऊँचाई प्रत्येक काल के बल

से बढ़ती ही जाती है। इस समय यह पृथ्वी जघन्य भोग भूमि कही जाती है। इस काल के अंत में मनुष्यों की आयु एक पल्य प्रमाण होती है उस समय मनुष्य एक कोस ऊँचे और प्रियंगु जैसे वर्ण के होते हैं। उस समय से यहाँ पर कल्पवृक्ष उत्पन्न होने लगते हैं।

द्वितीय काल

इसके बाद सुषमा नामक काल प्रवेश करता है। इस काल के प्रथम प्रवेश में मनुष्य तिर्यंचों की आयु आदि पूर्व के ही समान होती है परन्तु काल स्वभाव से उत्तरोतर बढ़ती जाती है। उस समय के नर-नारी दो कोस ऊँचे, पूर्ण चंद्रमा के सदृश मुख वाले, बहुत विनय एवं शील से सम्पन्न होते हैं एवं मनुष्यों के पृष्ठ भाग की हड्डियाँ एक सौ अट्ठाईस हैं। इस समय यहाँ पर मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है।

प्रथम काल का वर्णन

तदनंतर सुषमसुषमा नामक काल प्रविष्ट होता है काल स्वभाव से मनुष्य तिर्यंचों की आयु, अवगाहना आदि आगे बढ़ती जाती है। उस समय यह पृथ्वी उत्तम भोगभूमि के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। उस काल के अंत में मनुष्यों की आयु तीन पल्य प्रमाण और ऊँचाई तीन कोस प्रमाण है। उस समय के मनुष्य सूर्य के समान स्वर्ण वर्ण वाले हैं। उन मनुष्यों की पृष्ठ भाग की हड्डियां दो सौ छप्पन होती हैं तथा वे बहुत प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ ऐसी शक्तियों से संयुक्त होते हैं।

इस प्रकार से फिर नियम से वही अवसर्पिणी काल प्रवेश करता है। इस प्रकार आर्यखंड में छह काल प्रवर्तते रहते हैं।

भरत ऐरावत के म्लेच्छ खंडों की व्यवस्था

पाँच म्लेच्छ खंड और विद्याधर श्रेणियों में अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी में क्रम से चतुर्थ और तृतीय काल के प्रारंभ से अंत तक हानि व वृद्धि होती रहती है अर्थात् इन स्थानों में अवसर्पिणी में चतुर्थ काल के प्रारंभ से अंत तक हानि और उत्सर्पिणी काल में तृतीय काल के प्रारंभ से अंत तक वृद्धि होती ही रहती है। यहाँ अन्य कालों की प्रवृत्ति नहीं होती है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में अरहट की घड़ी के समान अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल अनंतानंत होते हैं। असंख्यात अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी की शलाकाओं के बीत जाने पर हुंडावसर्पिणी नाम से प्रसिद्ध एक काल आता है जो कि आजकल चल रहा है। इस हुंडावसर्पिणी काल के भीतर सुषमदुषमा काल की स्थिति में से कुछ काल के अवशिष्ट रहने पर भी वर्षा आदि पड़ने लगती है और विकलत्रय जीवों की उत्पत्ति होने लगती है। इसके अतिरिक्त इसी काल में कल्पवृक्षों का अंत और कर्मभूमि का व्यापार प्रारंभ हो जाता है उस काल में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं। चक्रवर्ती का विजय भंग और थोड़े से ही जीवों का मोक्ष गमन, चक्रवर्ती द्वारा की गयी द्विजों के वंश की उपत्ति होती है। दुषमसुषमा काल में अड्ठावन ही शलाका पुरुष होते हैं और मध्य में धर्म तीर्थ की व्युच्छित्ति भी होती है।

ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं तथा इसके अतिरिक्त सातवें तेइसवें और अंतिम तीर्थंकर के ऊपर उपसर्ग भी होता है। तृतीय-चतुर्थ, पंचम काल में उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले दुष्ट पापिष्ट, कुदेव, कुलिंगी भी दिखने लगते हैं। चाण्डाल, शबर, पुलिंद, किरात इत्यादि जातियाँ उत्पन्न होती हैं तथा दुषमकाल में ब्यालीस कल्की व उपकल्की होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि, भूकम्प वज्राग्नि आदि विचित्र भेदों को लिये हुये नाना प्रकार के दोष इस हुंडावसर्पिणी काल में हुआ करते हैं।

जम्बूद्वीप की सभी चीजों का उपसंहार

जम्बूद्वीप में तीन सौ ग्यारह पर्वत हैं जिनका स्पष्टीकरण–

सुमेरु	1	गजदंत पर्वत	4
कुलाचल	6	विजयार्ध	34
यमक	4	वृषभाचल	34
कांचनगिरि	200	नाभिगिरि	4
दिग्गज पर्वत	8		
वक्षार पर्वत	16		

1+6+4+200+8+16+4+34+34+4=311

जम्बूद्वीप में नब्बे कुण्ड हैं।

गंगा, सिंधु आदि चौदह नदियाँ कुलाचल से जहाँ पर गिरती हैं वहाँ पर कुंड हैं अतः गंगादि के कुंड 14, विभंगा नदी जिनसे उत्पन्न होती है ऐसे उन निषध नील की तलहटी में होने वाले कुण्ड 12, प्रत्येक विदेह में गंगा-सिंधु और रक्ता-रक्तोदा नदियाँ निषध-नील की तलहटी के कुण्डों से निकली हैं ऐसी इन चौंसठ नदियों के कुण्ड 64 ये 14+12+64=90 कुण्ड हैं।

छब्बीस सरोवर

कुलाचलों पर पद्म, महापद्म आदि 6 सीता नदी के 10 और सीतोदा नदी के 10, ऐसे 6+10+10=26 सरोवर हैं।

प्रमुख नदियाँ

गंगा सिंधु आदि 14, विभंगा नदी 12, विदेह की गंगा सिंधु आदि 32 एवं रक्ता रक्तोदा 32, 14+12+64=90 नदियाँ हैं।

परिवार नदियाँ

गंगा-सिंधु, रक्ता-रक्तोदा	14000×4=56000
रोहित्-रोहितास्या, सुवर्ण, रुप्यकूला,	28000×4=112000
हरित्, हरिकांता, नारी-नरकांता	56000×4=224000
सीता, सीतोदा	84000×2=168000
विभंगा नदी 12 हैं उनकी परिवार नदी	28000×12=336000
गंगा, सिंधु, रक्ता, रक्तोदा, 64 हैं इनकी	14000×64=896000

56000+112000+224000+168000+336000+896000=1792000 परिवार नदी हैं। इनमें मुख्य 90 नदी मिलाने से 1792000+90=1792090 नदियाँ जम्बूद्वीप में हैं।

जम्बूद्वीप में वेदियाँ और उपवन खंड

जम्बूद्वीप में तीन सौ ग्यारह पर्वत हैं। उनकी उतनी ही मणिमयी वेदी हैं अर्थात् 6 कुलाचल, 34 विजयार्ध 16 वक्षार और 4 गजदंत। इन पर्वतों

के दोनों पार्श्व भागों में मणिमयी वेदी हैं बाकी के कांचनगिरि, यमकगिरि, आदि पर्वत गोल हैं अतः इनके चारों तरफ वेदी हैं। छब्बीस सरोवर हैं उनकी उतनी ही मणिमयी वेदी हैं। नब्बे कुण्ड हैं उनकी उतनी ही मणिमयी वेदी हैं। जम्बूद्वीप की सभी नदियाँ 1792090 हैं इनके दोनों पार्श्वभागों में वेदी होने से इन्हें दूना करने से 3584180 वेदियाँ हैं। पर्वतों के मूल में अर्थात् वेदी के अंदर तलहटी में वन खंड हैं एवं पर्वतों के शिखर पर वेदी से वेष्टित वन खंड हैं। सरोवरों के कुण्डों के चारों तरफ वेदी से वेष्टित वन खंड हैं। कुलाचल, विजयार्ध, वक्षार और गजदंत इनकी लम्बाई का जितना प्रमाण है उतनी लंबाई प्रमाण उपर्युक्त वेदी से वेष्टित 1/2 योजन चौड़े वन खंड हैं। नदियों के दोनों पार्श्व भाग में नदी के दूने प्रमाण वनखंड हैं। सर्वत्र वनखंड की वेदी पाँच सौ धनुष चौड़ी एवं दो कोस ऊँची है। सर्वत्र वनखंड 1/2 योजन चौड़े हैं। जैसे उद्यान के चारों तरफ बिना कंगूरे के भित्ति रहती है वैसे ही यहाँ वेदियों का आकार समझना।

सात क्षेत्र

भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये मुख्य सात क्षेत्र हैं। इनमें भरत का विस्तार 526-6/19 योजन है आगे-आगे चौगुणे-चौगुणे हैं। विदेह के आगे की व्यवस्था दक्षिण के सदृश है। हैमवत हैरण्यवत में जघन्य भोगभूमि, हरि, रम्यक में मध्यम भोगभूमि एवं विदेह के देवकुरु उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि है। भरत ऐरावत और विदेह में कर्म-भूमि व्यवस्था है। विजयार्ध, गंगा सिन्धु और रक्ता-रक्तोदा के निमित्त से इनमें छह-छह खंड हो गये हैं इनमें मध्य में आर्य खंड एवं शेष पाँच म्लेच्छ खंड हैं।

बत्तीस विदेह

विदेह के बीचों-बीच में सुमेरु पर्वत है इसलिये पूर्व पश्चिम विदेह से दो भेद हुये हैं क्योंकि दक्षिण उत्तर में देवकुरु-उत्तरकुरु है। एवं नील निषध से सीता सीतोदा नदी ने निकल कर पूर्व पश्चिम में विदेह के दो-दो टुकड़े कर दिये। पुनः सोलह वक्षार और 12 विभंगा नदियों से इन 4 विदेह के 32 टुकड़े हो गये हैं। इन बत्तीसों में बत्तीस आर्यखंड हैं।

34 कर्मभूमि

भरत, ऐरावत और विदेह के प्रत्येक के एक-एक आर्यखंड हैं उन्हीं में कर्मभूमि की व्यवस्था है। अतः 34 कर्मभूमि हैं।

68 विद्याधर श्रेणियाँ

भरत, ऐरावत और बत्तीस विदेह इनमें बीचों-बीच में एक-एक विजयार्ध है उन विजयार्धों में दक्षिण-उत्तर दोनों तरफ विद्याधर श्रेणियाँ हैं। इनमें भरत क्षेत्र के विजयार्ध के दक्षिण में 50 नगरी एवं उत्तर में 60 नगरियाँ हैं। ऐसे ही ऐरावत के विजयार्ध के दक्षिण में 60 और उत्तर में 50 नगरियाँ हैं। विदेह के विजयार्ध के दोनों तरफ 55-55 नगरियाँ हैं प्रत्येक विजयार्ध के दो-दो श्रेणियाँ होने से 34×2=68 हैं।

170 म्लेच्छ खंड

प्रत्येक 34 कर्मभूमि क्षेत्र संबंधी 5-5 म्लेच्छ खंड होने से 34×5=170 म्लेच्छ खंड हैं। इनमें जो मनुष्य हैं उनके आचार-विचार क्षत्रियोचित हैं, किन्तु संस्कार और धर्म से रहित हैं और म्लेच्छखंड में जन्म लेने से क्षेत्र म्लेच्छ हैं इसलिये ये म्लेच्छ कहलाते हैं।

6 भोग भूमि

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि, हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि एवं विदेह के देवकुरु उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है।

जम्बूद्वीप के पर्वतों के कूट

जम्बूद्वीप में 568 कूट माने गये हैं। हिमवान पर 11 कूट, महाहिमवान पर 8, निषध पर 9, ऐसे ही नील पर 9, रुक्मि पर 8, शिखरी पर 11 हैं। प्रत्येक विजयार्ध पर नौ-नौ कूट हैं, प्रत्येक वक्षार पर 4-4 कूट हैं। गजदंत पर्वतों में से दो पर 7-7 एवं दो पर 9-9 हैं। इत्यादि।

जम्बूद्वीप के चैत्यालय

जम्बूद्वीप में अठत्तर चैत्यालय हैं।

सुमेरु के	16
कुलाचल के	6
विजयार्ध के	34
वक्षार के	16
गजदंत के	4
जम्बू, शाल्मलिवृक्ष के	2

(16+6+34+16+4+2=78 हैं।)

जम्बूद्वीप में दो वृक्ष

जम्बूद्वीप के देवकुरु में आग्नेय दिशा में शाल्मलि वृक्ष है एवं उत्तरकुरु की ईशान दिशा में जम्बू वृक्ष है। प्रत्येक के परिवार वृक्ष 140120 हैं। इन सबमें जिन भवन हैं। उन सब जिन प्रतिमाओं को हमारा नमस्कार होवे।

जम्बूवृक्ष के परिवार वृक्ष

जम्बूवृक्ष को घेरे हुए 12 वेदिका हैं उनके अंतराल में जम्बूवृक्ष के परिवार वृक्ष हैं।

1 वेदिका में	वन उपवन आदि
2 वेदिका में	उपवन पुष्करिणी आदि
3 वेदिका में 108 जम्बूवृक्ष	
4 वेदिका में 4 जम्बूवृक्ष	
5 वेदिका में वापियाँ आदि	
6 वेदिका में वन खंड	
7 वेदिका में 16000 वृक्ष	
8 वेदिका में 4000 वृक्ष	
9 वेदिका में 32000 वृक्ष	
10 वेदिका में 40000 वृक्ष	
11 वेदिका में 48000 वृक्ष	

12 वेदिका में 7 वृक्ष

108+4+16000+4000+32000+40000+48000+7=140119+1=140120

जम्बूवृक्ष इतने ही प्रमाण शाल्मली वृक्ष हैं।

श्री देवी के परिवार कमल

श्री देवी	1 कमल
सामानिक देव	4000 कमल
आत्मरक्षक देव	16000 कमल
अभ्यंतर पारिषद	32000 कमल
मध्य पारिषद	40000 कमल
बाह्य पारिषद	48000 कमल
अनीक देव	7 कमल
प्रतीहार आदिदेव	108 कमल

40000+16000+32000+40000+48000+7+108=140115+1=140116 कमल हैं। इनमें अतिरिक्त क्षुद्र कमल अनेकों हैं।

इन परिवार कमलों से दूने प्रमाण 'ह्री देवी' के परिवार कमल हैं। अर्थात् 280230 परिवार कमल ह्री देवी परिवार हैं एवं धृति देवी के इनसे दूने 560460 परिवार कमल हैं। ऐसे कीर्ति के इतने ही हैं इनसे आधे बुद्धि के उनसे आधे लक्ष्मी के परिवार कमल हैं।

लवण समुद्र का वर्णन

लवण समुद्र जम्बूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुये खाई के सदृश गोल है इसका विस्तार दो लाख योजन प्रमाण है। एक नाव के ऊपर अधोमुखी दूसरी नाव के रखने से जैसा आकार होता है। उसी प्रकार वह समुद्र चारों ओर आकाश में मण्डलाकार से स्थित है। उस समुद्र का विस्तार ऊपर दस हजार योजन और चित्रापृथ्वी के समभाग में दो लाख योजन है। समुद्र के नीचे दोनों तटों में से प्रत्येक तट से पंचानवे हजार योजन प्रवेश करने पर दोनों ओर से एक हजार योजन की गहराई में तल विस्तार दस हजार योजन मात्र है।

समभूमि से आकाश में इसकी जलशिखा है। यह अमावस्या के दिन

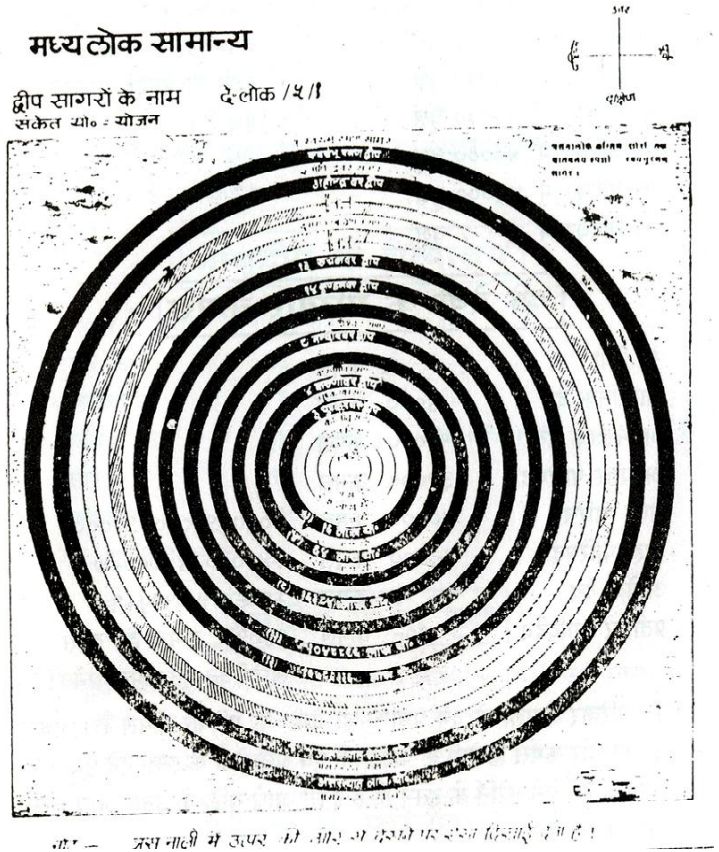

समभूमि से 11000 योजन प्रमाण ऊँची रहती है। वह शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर पूर्णिमा के दिन 16000 योजन प्रमाण ऊँची हो जाती है। इस प्रकार जल के विस्तार में 16000 योजन की ऊँचाई पर दोनों ओर समान रूप से 190000 योजन की हानि हो गई है। यहाँ प्रतियोजन की ऊँचाई पर होने वाली वृद्धि का प्रमाण योजन प्रमाण 11-7/8 है।

गहराई की अपेक्षा रत्नवेदिका से 95 प्रदेश आगे जाकर एक प्रदेश की गहराई है ऐसे 95 अंगुल जाकर 1 अंगुल, 95 हाथ जाकर एक हाथ, 95 कोस जाकर एक कोस एवं 95 योजन जाकर एक योजन की गहराई हो गई है। इसी प्रकार 95 हजार योजन 1000 योजन की गहराई हो गई है। अर्थात् लवण समुद्र के सम जल भाग से समुद्र का जल 1 योजन नीचे जाने पर एक

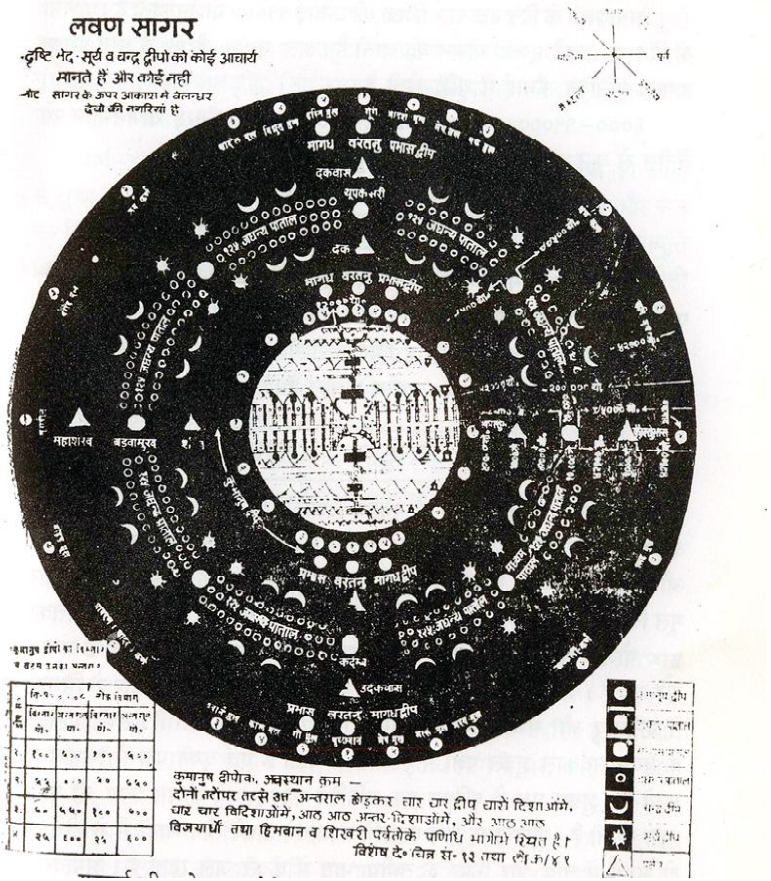

तरफ से विस्तार में 95 योजन हानि रूप हुआ है। इसी क्रम से एक प्रदेश नीचे जाकर 95 प्रदेशों की, 1 अंगुल नीचे जाकर 95 अंगुलों की, एक हाथ नीचे जाकर 95 हाथों की भी हानि समझ लेना चाहिये।

अमावस्या के दिन उक्त जल शिखा की ऊँचाई 11000 योजन होती है। पूर्णिमा के दिन वह उससे 5000 योजन बढ़ जाती है। अतः 5000 के 15 वें भाग प्रमाण क्रमशः प्रतिदिन ऊँचाई में वृद्धि होती है।

6000-110000/15=5000/15, 5000÷15=333-1/3 योजन तीन सौ तैंतीस से कुछ अधिक प्रमाण प्रतिदिन वृद्धि होती है।

समुद्र के मध्य में पाताल

लवण समुद्र के मध्य भाग में चारों ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ऐसे 1008 पाताल हैं। ज्येष्ठ पाताल 4, मध्यम 4 और जघन्य 1000 हैं। उत्कृष्ट पाताल चार दिशाओं में 4 हैं। मध्यम पाताल 4 विदिशाओं में 4 एवं उत्कृष्ट मध्यम के मध्य में 8 अंतर दिशाओं में 1000 जघन्य पाताल हैं।

4 उत्कृष्ट पाताल

उस समुद्र के मध्य भाग में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पाताल, कदम्बक, वडवामुख और यूपकेसर नामक चार पाताल हैं। इन पातालों का विस्तार मूल में और मुख में 10000 योजन प्रमाण है इनकी गहराई (ऊँचाई) और मध्यविस्तार मूल विस्तार से दस गुणा-100000 योजन प्रमाण है। पातालों की वज्रमय भित्तिका 500 योजन मोटी है। ये पाताल जिनेन्द्र भगवान द्वारा अरंजन-घट विशेष के समान कहे गये हैं। पाताल के उपरिम त्रिभाग में सदा जल रहता है, उनके मूल के त्रिभाग में घनीवायु और मध्य त्रिभाग में क्रम से जल, वायु दोनों रहते हैं। सभी पातालों के पवन सर्वकाल शुक्ल पक्षों में स्वभाव से बढ़ते हैं एवं कृष्ण पक्ष में स्वभाव से घटते हैं। शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन 2222-2/9 योजन पवन की वृद्धि हुआ करती है। पूर्णिमा के दिन पातालों के अपने-अपने तीन भागों में से नीचे के दो भागों में वायु और ऊपर के तृतीय भाग में केवल जल रहता है। अमावस्या के दिन अपने-अपने तीन भागों में से क्रमशः ऊपर के दो भागों में जल और नीचे के तीसरे भाग में केवल वायु स्थित रहता है। पातालों के अंत में अपने-अपने मुख विस्तार को 5 से गुणा करने पर जो प्राप्त हो, उतने प्रमाण आकाश में अपने-अपने पार्श्व भागों में जलकण जाते हैं। 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' ग्रंथ में जल वृद्धि का कारण किन्नरियों का नृत्य बतलाया है। यथा-'रत्नप्रभाखर पृथ्वी – भागसन्निवेशिभवनालयवातकुमारतद्वनिताक्रीड़ा जनिता निलसंक्षोभकृतपाता-लोन्मीलन निमीलनहेतुकौ वायुतोयनिष्क्रमप्रवेशौ भवतः। तत्कृता दशयोजन-सहस्रविस्तार मुखजलस्योपरि पंचाशद्योजनावधृता जलवृद्धिः। तत उभयत आरत्नवेदिकायाः सर्वत्र द्विगव्यूतिप्रमाण जलवृद्धिः। पातालोन्मीलन-वेगोपश मेन हानिः।

अर्थ–रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में रहने वाली वातकुमार देवियों की क्रीड़ा से क्षुब्ध वायु के कारण 500 योजन जल की वृद्धि होती है अर्थात् वायु और जल का निष्क्रम और प्रवेश होता है और दोनों तरफ रत्नवेदिका पर्यंत सर्वत्र दो गव्यूति प्रमाण जलवृद्धि होती है। पाताल के उन्मीलन के वेग शांति से जल की हानि होती है। इन पातालों का तीसरा भाग 100000÷3=33333-1/3 योजन प्रमाण है।

ज्येष्ठ पाताल सीमंत बिल के उपरिम भाग से संलग्न है। अर्थात् ये पाताल ऊभी (खड़ी) मृदंग के आकार गोल है, समभूमि से नीचे की गहराई का जो प्रमाण है वह इन पातालों की ऊँचाई है। यदि प्रश्न यह होवे कि 1 लाख योजन तक इनकी गहराई समतल से नीचे कैसी होगी? तो उसका समाधान यह है कि रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, वहाँ खरभाग, पंकभाग पर्यंत ये पाताल पहुँचे हुए ऊँडे (गहरे) हैं।

4 मध्यम पाताल

विदिशाओं में भी इनके समान चार पाताल हैं उनका मुख विस्तार और मूल विस्तार 1000 योजन तथा मध्य में और ऊँचाई (गहराई) में 10000 योजन है, इनकी वज्रमय भित्ति 50 योजन प्रमाण हैं। इन पातालों के उपरिम तृतीय भाग में जल, नीचे के तृतीय भाग में वायु, मध्य के तृतीय भाग में जल और वायु दोनों रहते हैं। पातालों की गहराई -ऊँचाई 10000 योजन है 10000÷3=3333-1/3 पातालों का तृतीय भाग तीन हजार तीन सौ तैंतीस से कुछ अधिक है। इनमें प्रतिदिन होने वाली जलवायु की हानि वृद्धि का प्रमाण 222-2/9 योजन प्रमाण है।

1000 जघन्य पाताल

उत्तम, मध्यम पातालों के मध्य में आठ अंतर दिशाओं में एक हजार जघन्य पाताल हैं। इनके विस्तार आदि का प्रमाण मध्यम पातालों की अपेक्षा दसवें भाग मात्र है अर्थात् मुख और मूल में ये पाताल 100 योजन हैं। मध्य में चौड़े और गहरे 1000 योजन प्रमाण हैं। इनमें भी उपरिम त्रिभाग में जल, नीचे में वायु और मध्य में जलवायु दोनों हैं। इनका त्रिभाग 333-1/3 योजन है और प्रतिदिन जलवायु की हानि-वृद्धि 22-2/9 योजन मात्र है।

नागकुमार देवों के 142, 000 नगर

लवण समुद्र के बाह्य भाग में 72000 बहत्तर हजार, शिखर पर 28000 और अभ्यन्तर भाग में 42000 नगर अवस्थित हैं। समुद्र के अभ्यन्तर भाग की बेला की रक्षा करने वाले वेलंधर नागकुमार देवों के नगर 42000 हैं। जल शिखा को धारण करने वाले नागकुमार देवों के 28000 नगर हैं एवं समुद्र के बाह्य भाग की रक्षा करने वाले नागकुमार देवों के 72000 नगर हैं।

ये नगर दोनों तटों से 700 योजन जाकर तथा शिखर से 700-1/2 योजन जाकर आकाश तल में स्थित हैं। इनका विस्तार 10000 योजन प्रमाण है। नगरियों के तट उत्तम रत्नों से निर्मित समान गोल हैं। प्रत्येक नगरियों में ध्वजाओं, तोरणों से सहित दिव्य तटवेदियाँ हैं। उन नगरियों में उत्तम वैभव से सहित वेलंधर और देवों के प्रासाद स्थित हैं। जिन मंदिरों से रमणीय, वापिका उपवनों से सहित इन नगरियों का वर्णन बहुत ही सुंदर है ये नगरियाँ अनादि निधन हैं।

उत्कृष्ट पाताल के आसपास के 8 पर्वत

समुद्र के दोनों किनारों में ब्यालीस हजार योजन प्रमाण प्रवेश करके पातालों के पार्श्व भागों में आठ पर्वत हैं। (ऊपर) तट से 42000 योजन आगे समुद्र में जाकर 'पाताल' के पश्चिम दिशा में कौस्तुभ और पूर्व दिशा में कौस्तुभास नाम के दो पर्वत हैं ये दोनों पर्वत रजतमय धवल, 1000 योजन ऊँचे अर्धघट के समान आकार वाले वज्रमय मूल भाग से सहित, नाना रत्नमय अग्रभाग से सुशोभित हैं। प्रत्येक पर्वत का तिरछा विस्तार एक लाख सोलह हजार योजन है इस प्रकार जगती से पर्वतों तक तथा पर्वतों का विस्तार मिलाकर दो लाख योजन होता है। पर्वत का विस्तार 116000। जगती से पर्वत का अंतराल 42000+42000=84000। 116000+84000=200000

ये पर्वत मध्य में रजतमय हैं इनके ऊपर इन्हीं के नाम वाले कौस्तुभ, कौस्तुभास, देव रहते हैं। इनकी आयु, अवगाहना आदि विजय देव के समान हैं। कदंब पाताल की उत्तर दिशा में उदक नामक पर्वत और दक्षिण दिशा में उदकाभास नामक पर्वत हैं ये दोनों पर्वत नीलमणि जैसे वर्ण वाले

हैं। इन पर्वतों के ऊपर क्रम से शिव और शिवदेव निवास करते हैं। इनकी आयु आदि कौस्तुभ देव के समान है।

वडवामुख पाताल की पूर्व दिशा में शंख और पश्चिम दिशा में महाशंख नामक पर्वत हैं ये दोनों ही शंख के समान वर्ण वाले हैं। इन पर उदक, उदाकावास देव स्थित हैं, इनका वर्णन पूर्वोक्त सदृश है। यूपकेसरी के दक्षिण भाग में दक नामक पर्वत और उत्तर भाग में दकवास नामक पर्वत हैं ये दोनों पर्वत वैडूर्यमणिमय हैं इनके ऊपर क्रम से लोहित, लोहितांक देव रहते हैं।

8 सूर्य द्वीप हैं

जम्बूद्वीप की जगती से ब्यालीस हजार योजन जाकर 'सूर्यद्वीप' नाम से प्रसिद्ध आठ द्वीप हैं। ये द्वीप पूर्व में कहे हुए कौस्तुभ आदि पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित होकर निकले हुये मणिमय दीपकों से युक्त शोभायमान हैं। त्रिलोकसार में 16 'चंद्रद्वीप' भी माने गये हैं। यथा-अभ्यंतर तट और बाह्य तट दोनों तटों से 42000 योजन छोड़कर चारों विदिशाओं के दोनों पार्श्व भागों में दो-दो, ऐसे आठ 'सूर्यद्वीप' हैं और दिशा-विदिशा के बीच में जो आठ अंतर दिखायें हैं उनके दोनों पार्श्वभागों में दो-दो, ऐसे 16 'चन्द्रद्वीप' नामक द्वीप हैं। ये सब द्वीप 42000 योजन व्यास वाले और गोल आकार वाले हैं। यहाँ द्वीप से 'टापू' को समझना।

समुद्र में गौतम द्वीप का वर्णन

लवण समुद्र के अभ्यंतर तट से 12000 योजन आगे जाकर 12000 योजन ऊँचा एवं इतने ही प्रमाण व्यास वाला-गोलाकार गौतम नामक द्वीप है जो कि समुद्र में 'वायव्य' विदिशा में है। ये उपर्युक्त सभी द्वीप वन, उपवन, वेदिकाओं से रम्य हैं और 'जिनमंदिर' से सहित हैं। उन द्वीपों के स्वामी वेलंधर जाति के नागकुमार देव हैं। वे अपने-अपने द्वीप के समान नाम के धारक हैं।

मागध द्वीप आदि का वर्णन

भरत क्षेत्र के पास समुद्र के दक्षिण तट से संख्यात योजन जाकर आगे मागध, वरतनु और प्रभास नाम के तीन द्वीप हैं। अर्थात् गंगा नदी के तोरण

द्वार के आगे कितने ही योजन प्रमाण समुद्र में जाने पर 'मागध' द्वीप है। जम्बूद्वीप के दक्षिण वैजयंत द्वार के कितने ही योजन समुद्र में जाने पर 'वरतनु' द्वीप है एवं सिंधु नदी के तोरण से कितने ही योजन जाकर 'प्रभास' द्वीप है। इन द्वीपों में इन्हीं नाम के देव रहते हैं इन देवों को भरत क्षेत्र के चक्रवर्ती वश करते हैं।

ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र के उत्तर भाग में रक्तोदा नदी के पार्श्व भाग में समुद्र के अंतर 'मागध' द्वीप, अपराजित द्वार से आगे 'वरतनु' द्वीप एवं रक्ता नदी के आगे कुछ दूर जाकर 'प्रभास' द्वीप हैं जो कि ऐरावत क्षेत्र के चक्रवर्तियों के द्वारा जीते जाते हैं।

48 कुमानुष द्वीप

लवण समुद्र में कुमानुषों के 48 द्वीप हैं। इनमें से 24 द्वीप तो अभ्यंतर भाग में एवं 24 द्वीप बाह्य भाग में स्थित हैं।जम्बूद्वीप की जगती से 500 योजन आगे जाकर 4 द्वीप चारों दिशाओं में और इतने ही योजन जाकर चार द्वीप चारों विदिशाओं में हैं। जम्बूद्वीप की जगती से 550 योजन आगे जाकर दिशा-विदिशा की अंतर दिशाओं में 8 द्वीप हैं। हिमवन् विजयार्ध पर्वत के दोनों किनारों में जगती से 600 योजन जाकर 4 द्वीप एवं उत्तर में शिखरी और विजयार्ध के दोनों पार्श्व भागों से 600 योजन अंदर समुद्र में जाकर 4 द्वीप हैं।

दिशागत द्वीप 100 योजन प्रमाण विस्तार वाले हैं ऐसे ही विदिशा गत द्वीप 55 योजन विस्तृत, अंतरदिशागत द्वीप 50 योजन विस्तृत एवं पर्वत के पार्श्वगत द्वीप 25 योजन विस्तृत हैं।

ये सब उत्तम द्वीप वनखंड, तालाबों से रमणीय, फलफूलों के भार से संयुक्त तथा मधुर रस एवं जल से परिपूर्ण हैं यहाँ कुभोग भूमि की व्यवस्था है यहाँ पर जन्म लेने वाले मनुष्य 'कुमानुष' कहलाते हैं और विकृत आकार वाले होते हैं। पूर्वादिक दिशाओं में स्थित चार द्वीपों के कुमानुष क्रम से एक जंघा वाले, पूंछ वाले, सींग वाले और गूंगे होते हैं। आग्नेय आदि विदिशाओं के कुमानुष क्रमशः शष्कुलीकर्ण, कर्ण प्रावरण, लम्बकर्ण और शशकर्ण होते हैं। अतंर दिशाओं में स्थित आठ द्वीपों के वे कुमानुष क्रम से सिंह, अश्व,

श्वान, महिष, वराह, शार्दूल, घूक और बंदर के समान मुख वाले होते हैं। हिमवान् पर्वत के पूर्व-पश्चिम किनारों के क्रम से मत्स्य मुख, कालमुख तथा दक्षिण विजयार्ध के किनारों में मेषमुख, गोमुख कुमानुष होते हैं। शिखरी पर्वत के पूर्व-पश्चिम किनारों पर क्रम से मेघमुख व विद्युन्मुख तथा उत्तर विजयार्ध के किनारों पर आदर्श मुख व हस्तिमुख कुमानुष होते हैं। इन सब में से एकोरुक कुमानुष गुफाओं में रहते हैं और मिष्ट मिट्टी को खाते हैं। शेष कुमानुष वृक्षों के नीचे रहकर फलफूलों से जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार से दिशागत द्वीप 4, विदिशागत 4, अंतरदिशागत 8, पर्वत तटगत 8। 4+4+8+8=24 अंतर्द्वीप हुये हैं, ऐसे ही लवणसमुद्र के बाह्य भाग के भी 24 द्वीप मिलकर 24+24=48 अंतर्द्वीप लवण समुद्र में हैं।

कुभोग भूमि में जन्म लेने के कारण

मिथ्यात्व में रत, मन्दकषायी, मिथ्या देवों की भक्ति में तत्पर, विषम पंचाग्नि तप तपने वाले, सम्यक्त्व रत्न से रहित जीव मरकर कुमानुष होते हैं। जो लोग तीव्र अभिमान से गर्वित होकर सम्यक्त्व और तप से युक्त साधुओं का किंचित् अपमान करते हैं, जो दिगम्बर साधु की निंदा करते हैं, ऋद्धि रस आदि गौरव से युक्त होकर दोषों की आलोचना गुरु के पास नहीं करते हैं, गुरुओं के साथ स्वाध्याय, वंदना कर्म नहीं करते हैं, जो मुनि एकाकी विचरण करते हैं, क्रोध, कलह से सहित हैं, अरहंत गुरु आदि की भक्ति से रहित चतुर्विध संघ में वात्सल्य से रहित, मौन बिना भोजन करने वाले, जो पाप में संलग्न हैं वे मृत्यु को प्राप्त होकर विषम परिपाक वाले, पाप कर्मों के फल से इन द्वीपों में कुत्सित रूप से युक्त कुमानुष उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकसार में भी यह कहा है-

दुब्भावअसूचिसूदकपुप्फवई-जाइसंकरादीहिं।
कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेस जायंते।।924।।

अर्थ–खोटे भाव से सहित, अपवित्र, मृतादि के सूतक पातक से सहित, रजस्वला स्त्री के संसर्ग से सहित, जातिसंकर आदि दोषों से दूषित मनुष्य जो दान करते हैं और जो कुपात्रों में दान देते हैं ये जीव कुमानुष में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि ये जीव मिथ्यात्व और पाप से सहित किंचित् पुण्य उपार्जन

करते हैं। अतः कुत्सित भोग भूमि में जन्म लेते हैं। इनकी आयु एक पल्य प्रमाण रहती है। एक कोस ऊँचे शरीर वाले हैं। युगलिया होते हैं। मरकर नियम से भवनत्रिक देवों में जन्म लेते हैं। कदाचित् सम्यक्त्व को प्राप्त करके ये कुमनुष्य सौधर्म युगल में जन्म लेते हैं।

लवण समुद्र के दोनों ओर तट हैं लवण समुद्र में ही पाताल हैं अन्य समुद्रों में नहीं है। लवण समुद्र के जल की गहराई और ऊँचाई में हीनाधिकता है अन्य समुद्रों के जल में नहीं है। सभी समुद्रों के जल की गहराई सर्वत्र हजार योजन है और ऊपर में जल समतल प्रमाण है। लवण समुद्र का जल खारा है। लवण समुद्र में जलचर जीव पाये जाते हैं लवण समुद्र के मत्स्य नदी गिरने के स्थान पर 9 योजन अवगाहना वाले एवं मध्य में 18 योजन प्रमाण हैं। इसमें कछुआ, शिशमार, मगर आदि जलजंतु भरे हैं।

पद्म पुराण में रावण की लंका को लवण समुद्र में माना है अतः इस समुद्र में और भी अनेकों द्वीप हैं जैसा कि पद्मपुराण में स्पष्ट है यथा-

अस्त्यत्र लवणांभोधौ क्रूरग्राहसमाकुलै।
प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतासंकुलः।।106।।

शतानि सप्त.....-107 से 116 तक पद्मपुराण, 48 पर्व।

अर्थ-दुष्ट मगर-मच्छों से भरे हुये इस लवण समुद्र में अनेक आश्चर्यकारी स्थानों से युक्त प्रसिद्ध 'राक्षसद्वीप' है।

जो सब ओर से सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है उसके बीच में सुमेरु पर्वत के समान त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और 50 योजन चौड़ा है, सुवर्ण तथा नाना प्रकार की मणियों से दैदीप्यमान एवं शिलाओं के समूह से व्याप्त है। राक्षसों के इंद्र भीम ने मेघवाहन के लिये वह दिया था। तट पर उत्पन्न हुये नाना प्रकार के चित्र-विचित्र वृक्षों से सुशोभित उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नाम की नगरी है जो मणि और रत्नों की किरणों तथा स्वर्ग के विमानों के समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदि के योग्य सुंदर प्रदेशों से अत्यंत शोभायमान है। जो सब ओर से तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परिखा से युक्त होने के कारण दूसरी पृथ्वी के समान जान पड़ती है।

लंका के समीप में और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्न, मणि तथा स्वर्ण से निर्मित हैं। वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरों से युक्त हैं राक्षसों की क्रीड़ा भूमि हैं तथा महाभोगों से युक्त विद्याधरों से सहित हैं। संध्याकार, सुवेल, कांचन, ह्लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्धस्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगों को देने वाले हैं, वन-उपवन आदि से विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशों के समान जान पड़ते हैं।

छठे पर्व में 62 से 82 तक वर्णन है-

इस लवण समुद्र में बहुत से द्वीप हैं जहाँ कल्पवृक्षों के समान वाले वृक्षों से दिशायें व्याप्त हो रही हैं इन द्वीपों में अनेकों पर्वत हैं जो रत्नों से व्याप्त ऊँचे ऊँचे शिखरों से सुशोभित हैं। राक्षसों के इंद्र भीम, अतिभीम तथा उनके सिवाय अन्य देवों के द्वारा आपके वंशजों के लिये ये सब द्वीप और पर्वत दिये गये हैं ऐसा पूर्व परंपरा से सुनने में आता है। उन द्वीपों में अनेक नगर हैं। उन नगरों के नाम-संध्याकार, मनोल्हाद, सुवेल, कांचन, हरि, योधन, जलधिध्वान, हंसद्वीप, भरक्षम, अर्धस्वर्गोत्कट, आवर्त, विघट, रोधन, अमल, कांत, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलंघन, नभोभानु और क्षेम इत्यादि सुंदर-सुंदर हैं।

यहाँ वायव्य दिशा में समुद्र के बीच तीन सौ योजन विस्तार वाला, बड़ाभारी वानरद्वीप है। उसमें महा मनोहर हजारों अवांतर द्वीप हैं। उस वानर द्वीप के मध्य में रत्न सुवर्ण की लम्बी, चौड़ी, शिलाओं से सुशोभित 'किष्कु' नाम का बड़ा भारी पर्वत है। जैसे यह त्रिकूटाचल है वैसे ही वह किष्कु पर्वत है इत्यादि। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि इस समुद्र में और भी अनेक द्वीप विद्यमान हैं।

लवण समुद्र की जगती 8 योजन ऊँची, मूल में 12 योजन, मध्य में 8 एवं ऊपर में 4 योजन प्रमाण विस्तार वाली है। इसके ऊपर वेदिका, वनखंड, देव नगर आदि का पूरा वर्णन जम्बूद्वीप की जगती के समान है। इस जगती के अभ्यंतर भाग में शिलापट्ट और बाह्यभाग में वन है। इस जगती की बाह्य परिधि का प्रमाण 1581139 योजन प्रमाण है। यदि जम्बूद्वीप प्रमाण 1-1 लाख के खंड किये जावें तो इस लवणसमुद्र के जम्बूद्वीप प्रमाण 24 खंड हो जाते हैं।

धातकीखंड द्वीप का वर्णन

इस लवणसमुद्र को चारों ओर से वेष्टित करके चारलाख योजन विस्तार से युक्त यह धातकी खंड द्वीप मडंलाकार से स्थित है। इस धातकीखंड की बाह्य परिधि का प्रमाण 4110961 योजन प्रमाण है। इस धातकीखंड द्वीप को चारों तरफ से दिव्य रत्नमय जगती वेष्टित करती है यह 8 योजन ऊँची, 12 योजन चौड़ी, उपरिम भाग में 4 योजन चौड़ी है इसका सारा वर्णन जम्बूद्वीप की जगती के सदृश है।

इष्वाकार पर्वत

धातकीखंड द्वीप के दक्षिण और उत्तर भाग में इस द्वीप को विभाजित करने वाला दक्षिण उत्तर लंबा एक-एक इष्वाकार पर्वत है, 'लवण और कालोदधि समुद्र से संलग्न ये पर्वत 400 योजन ऊँचे 1000 योजन विस्तार वाले, 400000 योजन लंबे हैं एवं अभ्यंतर भाग में अंकमुख तथा बाह्य भाग में क्षुरप्र के आकार हैं। इनकी नींव 100 योजन प्रमाण है ये सुवर्ण मयवर्ण वाले हैं। इन पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में 500 धनुष विस्तृत, 2 कोस ऊँची, फहराती हुई ध्वजाओं से युक्त एक-एक तट वेदी हैं। उन वेदियों के दोनों पार्श्व भागों में वेदी, तोरण, पुष्करिणी, वापिकाओं से युक्त जिनेन्द्र प्रासादों से रमणीय वनखंड हैं। इन वनखंडों में देव मनुष्य के युगलों से सहित, तटवेदी तोरण आदि से युक्त, रत्नों से निर्मित दिव्य प्रासाद हैं इष्वाकार पर्वतों के ऊपर भी चारों ओर दिव्य तट वेदी वन और वनवेदी हैं।

इन पर्वतों पर चार-चार उत्तम कूट हैं प्रथम कूट पर जिनभवन एवं शेषकूटों पर व्यंतरों के नगर हैं। दोनों इष्वाकार के मध्य में दोनों तरफ-एक-एक क्षेत्र होने से धातकीखंड में दो क्षेत्र हो गये हैं जिनका नाम है पूर्वधातकीखंड एवं पश्चिम धातकीखंड। जम्बूद्वीप के क्षेत्र, पर्वत, कुण्ड और नदियों से दूने-दूने क्षेत्र पर्वत आदि धातकीखंड में हैं।

कुलपर्वत और क्षेत्रों का वर्णन

मेरु को छोड़कर कुल पर्वत, विजयार्ध, नाभिगिरि आदि पर्वत जम्बूद्वीप की अपेक्षा दूने विस्तार से सहित हैं एवं ऊँचाई और अवगाह समान है।

यहाँ के कुलाचल मूल व उपरिम भाग में समान विस्तार से सहित दोनों अंतिम भागों से लवणोदधि, कालोदधि से संलग्न हैं। ऐसे ही भरत ऐरावत के विजयार्ध भी दोनों तरफ से समुद्र को स्पर्शित करते हैं। ये सभी पर्वत अभ्यंतर भाग में अंकमुख एवं बाह्य भाग में क्षुरप्र जैसे आकार वाले हैं। दक्षिण इष्वाकार पर्वत के पार्श्व भागों में दोनों तरफ दो भरत क्षेत्र एवं उत्तर इष्वाकार के पार्श्व भागों में दोनों तरफ दो ऐरावत क्षेत्र हैं। ये भरत आदि क्षेत्र चक्के के आरों के मध्य में रहने वाले छिद्रों के समान हैं अतः ये 'अरविवर' सदृश हैं ये सब क्षेत्र अभ्यंतर भाग में अंकमुख, बाह्य में शक्तिमुख हैं इनकी पार्श्व भुजायें गाड़ी की उद्धि के समान हैं।

6 पर्वतों का विस्तार आदि

हिमवान पर्वत का विस्तार 2105-5/19 योजन, इससे चौगुणा, महाहिमवान का 8421-1/19 एवं निषध का 33684-4/19 योजन है इनकी ऊँचाई क्रम से 100,200, 400 योजन प्रमाण है एवं इनके वर्ण जम्बूद्वीप के कुलाचल सदृश हैं।

7 क्षेत्रों का विस्तार

भरत क्षेत्र का अभ्यंतर विस्तार 6614-129/212 मध्य, 12581-36/212 बाह्य 18547-155/212 योजन है आगे विदेह क्षेत्र के क्षेत्रों का विस्तार इससे चौगुना होता गया है। उपर्युक्त पर्वतों पर पद्म, महापद्म आदि सरोवर हैं जो जम्बूद्वीप की अपेक्षा दूने विस्तार वाले हैं उनसे निकलने वाली चौदह नदियाँ इन सात क्षेत्रों में उन्हीं गंगा, सिंधु आदि के नाम से बहने वाली हैं इन नदी, कुण्ड, पद्म सरोवर आदि का विस्तार दूना-दूना है, किन्तु अवगाह जम्बूद्वीप के तालाब आदि के समान है।

विजयार्ध पर्वत, चैत्यवृक्ष, वृषभांचल, नाभिगिरि, यमकपर्वत, दिग्गजपर्वत, कांचनपर्वत, वक्षार, वेदिका आदि ये सब ऊँचाई, विस्तार तथा अवगाह की अपेक्षा तीनों द्वीपों में समान हैं सभी कुण्डों के चारों तरफ 1/2 योजन ऊँची, 5000 धनुष विस्तृत रत्नमय तोरणों से सहित दिव्य वेदीकायें हैं। इस द्वीप का शेष सभी वर्णन जम्बूद्वीप के समान है।

पूर्वधातकी खंड के विजयमेरु का वर्णन

यह मेरु पर्वत 84000 योजन ऊँचा है। इसकी जड़ एक हजार योजन है। मेरु का विस्तार तलभाग में 10000 योजन एवं पृथ्वी पृष्ठ पर 9400 योजन है। इस मेरु का विस्तार शिखर तल पर 1000 योजन मात्र है। इसकी चूलिका 40 योजन ऊँची, नील मणिमय सुदर्शन मेरु सदृश है। सुदर्शन मेरु के सदृश इसमें भी भद्रसाल, नंदन, सौमनस और पांडुक नामक चार वन हैं।

भद्रसाल वन से 500 योजन ऊपर नंदन वन है, नंदन वन से 55500 योजन ऊपर जाकर सौमनस वन है, उसके ऊपर 28000 योजन जाकर पांडुकवन है। भद्रसाल वन की पूर्व-पश्चिम लंबाई 107879 योजन है। इसका विस्तार 1225-79/88 योजन प्रमाण है बाकी वर्णन सुदर्शन मेरुवत् है।

गजदंत का वर्णन

अभ्यंतर भाग में चारों गजदंतों की लंबाई 356227 योजन है एवं बाह्य भाग में 569259 योजन है। ये पर्वत 500 योजन विस्तृत हैं और मेरु के पास 500 योजन ऊँचे तथा निषध, नील के पास 400 योजन ऊँचे हैं। इनका बाकी वर्णन भी जम्बूद्वीप के गजदंतवत् है।

धातकी वृक्ष

धातकी द्वीप के भीतर उत्तकुरु देवकुरु क्षेत्रों में 'धातकी वृक्ष' (आंवले के वृक्ष) स्थित हैं, इसी कारण इस द्वीप का 'धातकी खंड' यह सार्थक नाम है। उन धातकी वृक्षों पर सम्यक्त्वरत्न से संयुक्त उत्तम विभूषणों से विभूषित 'प्रियदर्शन' और 'प्रभास' नामक दो अधिपति देव निवास करते हैं। इन दोनों के परिवार देव आदर–अनादर की अपेक्षा दुगुने प्रमाण हैं।

विदेह का वक्षार, विभंगा नदियाँ और क्षेत्रों का विस्तार

वक्षार पर्वत 1000 योजन विस्तृत हैं। नदी के पास 500 योजन एवं निषध नील के पास 400 योजन ऊँचे हैं। इन पर चार-चार कूट हैं। विभंगा नदी 250 योजन विस्तृत है।

विदेह के प्रत्येक क्षेत्र का विस्तार 9603-3/8 योजन है।

देवारण्य भूतारण्य वनों का विस्तार 5844 योजन है। कच्छादेश का तिर्यग् विस्तार 509570-200/212 योजन प्रमाण है। भद्रसालवन के समीप में पूर्व-पश्चिम विदेहों की लंबाई 590247-180/212 योजन है। धातकी खंड के भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल 5032437526-44/212 योजन है। यही सारी व्यवस्था पश्चिम धातकीखंड की है वहाँ पर स्थित मेरु का नाम 'अचल' है और वह भी विजयमेरु के सदृश 84000 योजन ऊँचा है।

जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल के प्रमाण से धातकीखंड का क्षेत्रफल विभाजित करने पर वह एक सौ चवालीस शलाका प्रमाण है अर्थात् जम्बूद्वीप के बराबर धातकीखंड के 144 टुकड़े होते हैं। संपूर्ण नदी, पर्वत, क्षेत्र, कुण्ड, सरोवर आदिकों का शेष वर्णन जम्बूद्वीप के समान है। इस धातकीखंड की बाह्य जगती के अभ्यंतर भाग में वन एवं बाह्य भाग में शिलापट्ट है।

कालोदधि समुद्र का वर्णन

इस धातकीखंड द्वीप को चारों तरफ से वेष्टित करके 8 लाख योजन विस्तृत मंडलाकार रूप से कालोदधि नामक समुद्र है। टांकी से उकेरे हुये के सामन आकार वाला यह समुद्र सर्वत्र 1000 योजन गहरा, चित्रापृथ्वी के उपरिम तलभाग के सदृश-समतल और पातालों से रहित है। इस समुद्र के भीतर दिशाओं, विदिशाओं अंतरदिशाओं और हिमवन् शिखरी विजयार्ध के किनारों पर पूर्वोक्त वर्णन से सहित 48 अंतर्द्वीप हैं। ये प्रत्येक द्वीप, तट वेदी, तोरण पुष्करिणी आदि से रमणीय हैं उनमें रहने वाले मनुष्य कुभोगभूमिज कहलाते हैं और विकृत आकार के धारक हैं। लवण समुद्र की 48 एवं कालोदधि समुद्र की 48 ऐसे (48+48=96) कुल छियानवें कुभोगभूमि हैं। कालोदधि के द्वीपों का अवगाह जल के भीतर 1000 योजन मात्र है। इन द्वीपों में जो कुमानुष रहते हैं वे युगल रूप से उत्पन्न होकर 49 दिन में नवीन यौवन से संपन्न हो जाते हैं। इनके शरीर की ऊँचाई 1 कोस प्रमाण है, आयु 1 पल्य प्रमाण है, ये आंवले के बराबर भोजन एक दिन के अंतर से ग्रहण करते हैं। इनकी सारी व्यवस्था लवण समुद्र के कुमानुषों के समान है। इस कालोदधि की बाह्य परिधि 9170605 योजन है। इसी समुद्र के भीतर नदी

प्रवेशस्थान में जलचर जीव 18 योजन लम्बे 9 योजन विस्तृत एवं 4-1/2 योजन मोटे हैं। समुद्र के मध्य में स्थित मत्स्यों की लंबाई 36 योजन, चौड़ाई 18 योजन एवं मोटाई 9 योजन है। शेषस्थानों में मगर, शिंशुमार, कछुआ, मेंढक आदि जलचर जीव की अवगाहना से युक्त हैं। इसकी बाह्यजगती का विस्तार जम्बूद्वीप जगतीवत् है एवं उसके अभ्यंतर भाग में शिलापट्ट और बाह्यभाग में वनखंड हैं।

पुष्कर द्वीप एवं मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन

इस कालोदधि समुद्र को वेष्टित करके 16 लाख योजन विस्तृत पुष्कर द्वीप है। कालोदधि समुद्र की जगती से चारों ओर 8 लाख योजन जाकर मानुषोत्तर पर्वत उस द्वीप को सब तरफ से वेष्टित किये हैं। इस पर्वत की ऊँचाई 1721 योजन और नींव 430 योजन 1 कोस प्रमाण है। इस पर्वत का विस्तार मूल में 1022, मध्य में 723 तथा शिखर पर 424 योजन प्रमाण है। देव, विद्याधरों के मन को हरण करने वाला, अनादि,निधन, सुवर्ण के सदृश या मानुषोत्तर पर्वत अभ्यंतर भाग में टंकोत्कीर्ण और बाह्य भाग में क्रम से हीन है। इस पर्वत के चारों ओर क्षेत्रों के बहुमध्यभाग में उनके पार्श्व भागों में दिव्य रत्नमय चौदह गुफायें हैं। इस पर्वत के अभ्यंतर एवं बाह्य भाग में चारों ओर दिव्य तट वेदी है जिसका उत्सेध 1/2 योजन एवं विस्तार 500 धनुष है। उसके अभ्यंतर बाह्य में पूर्वोक्त वेदियों के समान 1/2 योजन प्रमाण वन खण्ड हैं। मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर भी तटवेदी है उसके अभ्यंतर भाग में वनखंड हैं। इस पर्वत की बाह्य परिधि 14236713 योजन से कुछ अधिक है।

इस मानुषोत्तर पर्वत पर 22 कूट हैं। पूर्वादि दिशाओं में से प्रत्येक में 3-3 कूट हैं। आग्नेय और ईशानदिशा में 2-2, वायव्य और नैऋत्य में 1-1 कूट हैं, ऐसे 12+4+2=18 कूट हैं। एवं पूर्वादि दिशाओं में बतलाये गए कूटों की अग्रभूमियों में एक-एक सिद्धकूट हैं ये चार मिलकर 18+4=22 कूट हैं। इन कूटों में प्रत्येक की ऊँचाई, मूल विस्तार पर्वत के चतुर्थ भाग है। ऊँचाई और मूलविस्तार 430 योजन 1 कोस, मध्य वि. 322 योजन, 2-3/4 कोस, शिखर वि.215 योजन 1/2 कोस है। कूटों के मूल व शिखर पर मणिमय मंदिरों से रमणीय, वेदी आदि से सुशोभित दिव्य वन खंड हैं। मानुषोत्तर के

क्षेत्र पर्वत	अभ्यंतर वि.	मध्य वि.	बाह्य वि.	ऊँचाई	अव-गाह	वर्ण	कूट	सरोवर	नदियाँ	विशेष
भरतक्षेत्र	6614 $\frac{129}{212}$	12581 $\frac{36}{212}$	18547 $\frac{155}{212}$						गंगा, सिंधु	क्षेत्रों में
हिमवानपर्वत	2105 $\frac{5}{19}$			100	25	हेममय	11	पद्म	गंगा, सिंधु, रोहितास्या	नदियाँ बहती हैं।
हैमवतक्षेत्र	26458 $\frac{92}{212}$	50324 $\frac{144}{212}$	74190 $\frac{196}{212}$						रोहित	पर्वतों से
महाहिमवान	8421 $\frac{1}{19}$			200	50	रजतमय	8	महापद्म	हरिकांता हरित,	नदियाँ निकलती हैं।
हरिक्षेत्र	105833 $\frac{156}{212}$	201298 $\frac{152}{212}$	27676 $\frac{148}{212}$						हरिकांता	
निषध	33684 $\frac{4}{19}$			400	100	तप्तस्वर्णमय	9	तिगिंछ	हरित, सीतोदा सीता, सीतोदा	
विदेहक्षेत्र	423334 $\frac{200}{212}$	805194 $\frac{184}{212}$	1187054 $\frac{168}{212}$						सीता, नरकांता	
नील	33684 $\frac{4}{19}$			400	100	वैडूर्यमणि	9	केसरी	नारी, नरकांता नारी, रूप्यकूला	
रम्यक	105833 $\frac{156}{212}$	201298 $\frac{152}{212}$	296763 $\frac{148}{212}$							
रुक्मि	8421 $\frac{1}{19}$			200	50	रजतमय	8	पुंडरीक	सुवर्णकूला, रूप्यकूला,	
हैरण्यवत	26458 $\frac{92}{212}$	50324 $\frac{144}{212}$	74190 $\frac{196}{212}$						सुवर्णकूला,	
शिखरी	2105 $\frac{5}{19}$			100	25	स्वर्ण	11	महापुंडरीक	रक्ता, रक्तोदा	
ऐरावत	6614 $\frac{129}{212}$	12581 $\frac{36}{212}$	18547 $\frac{155}{212}$						रक्ता, रक्तोदा	

चारों ओर सिद्ध कूटों पर निषध के जिनभवन सदृश चार जिनभवन स्थित हैं। शेष कूटों पर व्यंतर देवों के दिव्य प्रासाद हैं।

पुष्करार्द्ध द्वीप का वर्णन

इस द्वीप में मानुषोत्तर पर्वत बीचों-बीच में वलयाकार सदृश है इससे पुष्कर द्वीप के दो भाग हो गए हैं। अतः मानुषोत्तर पर्वत के इधर के अर्ध भाग को पुष्करार्ध कहा गया है।

इस पुष्करार्ध में भी धातकी खंड के सदृश दक्षिण-उत्तर भाग में दो इष्वाकार पर्वत हैं जो कि आयाम में दुगने प्रमाण वाले हैं। इनसे विभक्त पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध ऐसे दो भागों में धातकीखंड के सदृश आरे के छिद्र के समान क्षेत्र हो गए हैं।

धातकी खंड में जितने कुंड, क्षेत्र, सरोवर, पर्वत, नदियाँ हैं उतने ही सब पुष्करार्द्ध द्वीप में हैं। हिमवान् पर्वत आदि का विस्तार जम्बूद्वीप से चौगुना है। चार विजयार्ध, बारह कुल पर्वत और 7 क्षेत्र एक तरफ से कालोदधि की ओर एक तरफ से मानुषोत्तर पर्वत को छूते हैं ये कुल पर्वत, विजयार्ध अभ्यंतर भाग में अंकमुख, और बाह्य भाग में क्षुरप्रसदृश हैं। यहाँ जम्बूवृक्ष शाल्मली वृक्ष की जगह पुष्कर वृक्ष हैं, सभी क्षेत्र सरोवर पर्वत आदि के नाम जम्बूद्वीप के समान हैं।

हिमवान् का विस्तार 4210-10/19 योजन है आगे निषध तक चौगुना होता गया है। भरत क्षेत्र का अभ्यंतर विस्तार 41579-173/212 योजन है आगे विदेह तक चौगुना-चौगुना कर लीजिये।

क्षेत्र पर्वत	अभ्यंतर वि.	क्षेत्र का बाह्य वि.	ऊँचाई
भरतक्षेत्र	41579-173/212	65446-13/212	
हिमवानपर्वत	4210-10/19		100
हैमवतक्षेत्र	166319-56/212	65446-13/212+4	
महाहिमवान	16842-2/19		200
हरिक्षेत्र	665277-12/212	65446-13/212+8	
निषध	67368/-8/19		400
विदेहक्षेत्र	2661108-48/212	65446-13/212+16	

नील	6738/-8/19		400
रम्यक क्षेत्र	665277-12/212	65446-13/212+8	
रुक्मि	16842-2/19		200
हैरण्यवत क्षेत्र	166319-59/212	65446-13/212+4	
शिखरी	4210-10/19		100
ऐरावत क्षेत्र	41579-173/212	65446-13/212	

पुष्करार्ध द्वीप में दो विजय मेरु के सदृश हैं उनके नाम मंदर मेरु और विद्युन्माली मेरु हैं। भद्रसाल विदेह क्षेत्र वक्षार विभंगानदी देवारण्य, पूर्व-पश्चिम विस्तृत हैं।

भद्रसाल का पूर्व-पश्चिम विस्तार-215758 योजन है। चौंसठ विदेह क्षेत्रों में से एक का विस्तार-19794-1/4 योजन है। प्रत्येक वक्षारों का विस्तार 2000 योजन और विभंगा का विस्तार 500 योजन है। देवारण्य का विस्तार 11688 योजन है।

पुष्करार्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल 9360341874098 योजन है इस क्षेत्रफल में 212 का भाग देने से जो लब्ध हो उतना पुष्करार्ध के भरतक्षेत्र का क्षेत्रफल है यथा-42810351441-185/212 योजन है।

जम्बूद्वीप संबंधी के क्षेत्रफल प्रमाण पुष्करार्ध द्वीप के क्षेत्रफल को करने पर 1184 खंड होते हैं। अर्थात् पुष्करार्ध में जम्बूद्वीप प्रमाण 1184 खंड हो जाते हैं। बाकी सभी व्यवस्था धातकीखंड द्वीपवत् यहाँ की समझ लेना चाहिये।

मनुष्यों का अस्तित्व कहाँ तक है?

जम्बूद्वीप, धातकीखंड और अर्ध पुष्कर द्वीप ऐसे ढाई द्वीप और लवणसमुद्र, कालोद समुद्र इन दो समुद्रों के भीतर मानुषोत्तर पर्वत पर्यंत ही मनुष्य पाये जाते हैं अतः इस 4500000 लाख योजन प्रमाण व्यास वाले क्षेत्र को 'मानुष क्षेत्र' कहते हैं एवं इस मानुषोत्तर पर्वत के आगे मनुष्य नहीं जा सकते हैं इसीलिये इसका नाम भी सार्थक है। मनुष्य क्षेत्र की परिधि 14230249 योजन से कुछ कम है। मनुष्य के 4 भेद हैं सामान्य, पर्याप्त, स्त्रीवेदी मनुष्य, अपर्याप्त मनुष्य। ये चारों प्रकार के मनुष्य इस 'मानुषलोक' में ही उत्पन्न होते

हैं। पर्याप्त मनुष्य राशि का प्रमाण 29 अंक प्रमाण हैं यथा- 19807040628566084398385987584 ऐसे 29 अंक प्रमाण है।

स्त्रीवेदी मनुष्य की राशि भी 29 अंक प्रमाण है। यथा-59421121885 698253195157962752 (तिलोयप.पृ.524)

अंतर्द्वीपज, कुभोगभूमिज मनुष्य सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यात गुणे मनुष्य 10 कुरु क्षेत्रों में हैं। इनसे संख्यात गुणे हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्रों में हैं। इनसे संख्यात गुणे हैरण्यवत, हैमवतक्षेत्रों में, इनसे संख्यात गुणे भरत, ऐरावत क्षेत्रों में और इनसे भी संख्यात गुणे मनुष्य विदेह क्षेत्रों में हैं।

लब्धपर्याप्तक मनुष्य इनसे असंख्यात गुणे हैं। लब्ध्यपर्याप्तक से विशेष अधिक सामान्य मनुष्य राशि है। पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। एक सौ सत्तर 170 आर्यखंडों में तीनों प्रकार के मनुष्य होते हैं, भोगभूमि, कुभोगभूमि और सभी म्लेच्छ खंडों में 170×5=850 अर्थात् 850 म्लेच्छ खंडों में भी लब्ध्यपर्याप्त नहीं रहते हैं।

जिन मनुष्यों की आहार शरीर आदि 6 पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं हुई हैं किन्तु होने वाली हैं वे निर्वृत्यपर्याप्त हैं, जिनकी पर्याप्तियाँ पूर्ण हो गई हैं वे पर्याप्त हैं। यह पर्याप्त अवस्था गर्भ में ही अंतर्मुहूर्त में हो जाती हैं। जिनकी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती हैं और नियम से मर जाते हैं ऐसे क्षुद्रभव धारण करने वाले जीव लब्ध्यपर्याप्तक हैं इनके मनुष्यगति, मनुष्य आयु कर्म का उदय है किन्तु ये अत्यंत दयनीय संमूर्छन होते हैं स्त्रियों की कुक्षि, कक्ष आदि में जन्म लेते रहते और मरते रहते हैं।

भरत आदि क्षेत्रों में गुणस्थानों का वर्णन

भरत, ऐरावत के 5-5 आर्यखंडों में जघन्य रूप से मिथ्यात्व गुणस्थान और उत्कृष्ट रूप से कदाचित चौदह गुणस्थान तक पाये जाते हैं। पाँच विदेहों के 160 आर्यखंडों में जघन्य रूप से 6 गुणस्थान तथा उत्कृष्ट रूप से 14 गुणस्थान पाये जाते हैं। सब भोगभूमिजों में 4 गुणस्थान तक होते हैं एवं सभी म्लेच्छ खंडों में से एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है। विद्याधर श्रेणियों में देशसंयत तक 5 गुणस्थान एवं विद्याओं को छोड़ देने के बाद 14 गुणस्थान तक हो सकते हैं।

	जम्बूद्वीप में	धातकीखंड में	पुष्करार्ध में	कुल जोड़
मेरु	1	2	2	5
कुलाचल	6	12	12	30
भरत आदि क्षेत्र	7	14	14	35
कर्मभूमि	34	68	68	170
भोगभूमि	6	12	12	30
कुरुक्षेत्र	2	4	4	10
जम्बू आदि वृक्ष	2	4	4	10
मुख्यनदीगंगादि	14	28	28	70
विभंगा	12	24	24	60
विदेह की गंगादि	64	128	128	320
विजयार्ध	34	68	68	170
वृषभगिरि	34	68	68	170
म्लेच्छखंड	170	340	340	850
गजदंत	4	8	8	20
यमकगिरि	4	8	8	20
दिग्गज पर्वत	8	16	16	40
वक्षार पर्वत	16	32	32	80
नाभिगिरि	4	8	8	20
कांचनगिरि	200	400	400	1000
सरोवर	26	52	52	130
जिन भवन	78	156	156	390
		इष्वाकार 2	इष्वा. 2	390+4=394

मनुष्यों को सुख कहाँ-कहाँ पर है?

मनुष्यों को 126 भोगभूमियों में अर्थात् 30 भोगभूमि तथा 96 कुभोगभूमि में केवल सुख और कर्म भूमियों में सुख-दुख दोनों ही होते हैं।

मनुष्यगति में सम्यक्त्व के कारण

कितने ही मनुष्य उपदेश से, कितने ही स्वभाव से, कितने जातिस्मरण से, कितने ही जिनेन्द्र भगवान के कल्याणक आदि को देखने से, कितने ही जिनबिम्ब दर्शन से सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। कर्मभूमि में मनुष्य देशव्रत, महाव्रत आदि ग्रहण करके सिद्धगति को भी प्राप्त कर लेते हैं।

जितने क्षेत्र, नदी पर्वत आदि जम्बूद्वीप में हैं। पूर्वधातकी खंड में उतने ही हैं एवं पश्चिम धातकीखंड में भी उतने ही हैं अतः दुगने हो गये हैं, ऐसे ही पूर्व पुष्करार्ध में उतने तथा पश्चिम पुष्करार्ध में उतने ही हैं ऐसे ढाई द्वीप के पाँचों मेरु संबंधी सभी क्षेत्र आदि को 5 से गुणाकर देने से पाँचगुणी संख्या हो जाती है विशेषता इतनी है कि धातकीखंड और पुष्करार्ध में दो-दो इष्वाकार पर्वत हैं उन पर एक-एक जिन मंदिर होने से इन 390 जिन भवन में उन 4 जिनमंदिर की संख्या मिला लीजिये तथा मानुषोत्तर पर्वत के 4 जिन भवनों की संख्या मिला लेने से 390+4+4=398 जिनभवन हो जाते हैं। मनुष्य लोक के इन सभी जिनभवनों को हमारा बारंबार नमन होवे।

तिर्यक् लोक का वर्णन

मंदर पर्वत के मूल से 1 लाख 40 योजन प्रमाण ऊँचा (मोटा) एक राजू लंबे, चौड़े क्षेत्र में तिर्यक् त्रसलोक स्थित है।

इस मध्यलोक में पच्चीस कोड़ाकोड़ी उद्धारपल्य प्रमाण असंख्यातों द्वीप समूह हैं। ये गोल हैं इनमें से पहला जम्बूद्वीप बीच में है आगे-आगे एक दूसरे को वेष्टित करते हुए असंख्यातों द्वीप समुद्रों के बाहर स्वयंभूरमण समुद्र है। सभी समुद्र चित्रा पृथ्वी को खंडित कर वज्रा पृथ्वी के ऊपर और सब द्वीप चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं।

प्रथम जम्बूद्वीप, उसके परे लवण समुद्र, फिर धातकीखंड और उसको घेरकर कालोद समुद्र है। आगे-आगे के द्वीपों के नाम वाले ही समुद्र हैं। यथा – पुष्कर द्वीप, पुष्कर समुद्र, वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षौद्रवर द्वीप, क्षौद्रवर समुद्र, नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्वर समुद्र, अरुणवर द्वीप-समुद्र, अरुणाभास द्वीप-समुद्र, कुंडलवर द्वीप-समुद्र, शंखवर द्वीप-समुद्र, रुचकवर द्वीप-समुद्र,

भुजगवर द्वीप समुद्र, कुशवर द्वीप-समुद्र, क्रौंचरवर द्वीप-समुद्र हैं। ये सोलह द्वीप एवं सोलह समुद्र अभ्यंतर भाग में हैं।

अंत से प्रारंभ करने पर स्वयंभूरमण समुद्र, पश्चात् स्वयंभूरमण द्वीप आदि में हैं ऐसे ही अहीन्द्रवर समुद्र अहीन्द्रवर द्वीप, देववर समुद्र, देववर द्वीप, यक्षवर समुद्र, यक्षवर द्वीप, भूतवर समुद्र, भूतवर द्वीप, नागवर समुद्र, नागवर द्वीप, वैडूर्य समुद्र-द्वीप, वज्रवर समुद्र-द्वीप, कांचन समुद्र-द्वीप, रूप्यवर समुद्र-द्वीप, हिंगुलसमुद्र, हिंगुलद्वीप, अंजनवर समुद्र-द्वीप, श्याम समुद्र-द्वीप, सिंदूर समुद्र-द्वीप, हरिताल समुद्र-द्वीप, मनःशिल समुद्र-द्वीप ये सोलह समुद्र और सोलह द्वीप बाह्य भाग से अभ्यंतर की तरफ हैं। इनके मध्य में असंख्यातों द्वीप समुद्र हैं।

समुद्र के जल का स्वाद

लवण समुद्र का जल खारा है, वारुणीवर का जल मदिरा के समान, क्षीरवर समुद्र का दुग्ध के समान एवं घृतवर समुद्र का जल घी के समान है। कालोदधि, पुष्कर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र इन तीनों का जल सामान्य जल के सदृश है।

जलचर जीव कहाँ हैं?

कर्मभूमि से सम्बद्ध लवण समुद्र, कालोद और अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में ही जलचर जीव है। शेष समुद्रों में नहीं हैं।

द्वीप, समुद्र के अधिपति व्यंतर देव

जम्बूद्वीप लवण समुद्र आदिकों में से प्रत्येक के अधिपति दो-दो व्यंतर देव हैं। जम्बूद्वीप के अधिपति 'आदर' अनादर देव हैं। लवण समुद्र के प्रभास व प्रियदर्शन, धातकीखंड के प्रिय और दर्शन, कालोदधि के काल व महाकाल, पुष्करद्वीप के पद्म और पुण्डरीकदेव, मानुषोत्तर के चक्षु व सुचक्षु नामक दो देव, पुष्कर समुद्र के श्रीप्रभ व श्रीधर देव अधिपति हैं ऐसे ही आगे के देवों के नाम अन्यत्र देख लेना चाहिए। ये देव अपने-अपने द्वीप समुद्रों के उपरिम भाग में स्थित नगरों में बहुत प्रकार के परिवार से युक्त होकर क्रीड़ा किया करते हैं। इनमें से प्रत्येक की आयु एक पल्य एवं ऊँचाई दस धनुष प्रमाण है।

नंदीश्वर द्वीप

जम्बूद्वीप से आठवां भवन विख्यात नंदीश्वर समुद्र से वेष्टित 'नंदीश्वर द्वीप' है। उस द्वीप का विस्तार 1638400000 एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन है। इस द्वीप की बाह्य परिधि दो हजार बहत्तर करोड़ तैंतीस लाख चौवन हजार एक सौ नब्बे योजन है-20723354190 योजन है।

पूर्व दिशा के पर्वत

नंदीश्वर द्वीप की पूर्व दिशा में बहुमध्य भाग में 'अंजनगिरि' इस नाम से प्रसिद्ध, उत्तम इद्रनील मणिमय श्रेष्ठ पर्वत है यह पर्वत एक हजार योजन नींव से सहित, चौरासी हजार योजन ऊँचा, सर्वत्र चौरासी हजार योजन विस्तृत गोल है। उनके मूल व ऊपर भाग में तटवेदियाँ व विचित्र वनखंड हैं। इस पर्वत के चारों ओर चार दिशाओं में चार सरोवर हैं। जो कि प्रत्येक 100000 योजन विस्तार वाले चतुष्कोण हैं ये सरोवर एक हजार योजन गहरे, टंकोत्कीर्ण, जलचर जीवों से रहित स्वच्छ जल से पूर्ण, कमल कुवलय आदि की सुंगधि से युक्त हैं। पूर्वादि दिशाओं के क्रम से नंदा, नंदवती, नंदोत्तरा, नंदिघोषा ये इन सरोवरों (वापियों) के नाम हैं। प्रत्येक वापी की चारों दिशाओं में से प्रत्येक के क्रम से अशोकवन, सप्तच्छद, चंपक और आम्रवन नाम से चार वन हैं। ये वन खंड 100000 योजन लम्बे 50000 योजन चौड़े हैं। इनमें से प्रत्येक वन में वन के नाम से संयुक्त चैत्य वृक्ष हैं।

वापियों के बहुमध्य भाग में ही दही के समान वर्ण वाले एक-एक दधिमुख नामक उत्तम पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत की ऊँचाई 10000 योजन एवं विस्तार भी इतना ही है, ये पर्वत गोलाकार हैं इनकी नींव 1000 योजन वज्रमय है। इनके उपरिम तट में तटवेदियाँ और विविध प्रकार के वन हैं। वापियों के दोनों बाह्य कोनों से प्रत्येक के दधिमुखों के सदृश सुवर्णमय 'रतिकर ' नामक दो पर्वत हैं प्रत्येक रतिकर पर्वत की ऊँचाई और विस्तार 1000 योजन है, नींव 250 योजन है।

तेरह जिन मंदिर

एक अंजनगिरि, चार दधिमुख, आठ रतिकर इन तेरह पर्वतों के शिखर पर उत्तम, रत्नमय एक-एक जिनेन्द्र भवन स्थित हैं। ये चैत्यालय 100 योजन लम्बे, 50 योजन चौड़े, 75 योजन ऊँचे हैं इनकी नींव 1/2

योजन मात्र है। ये उत्कृष्ट जिन भवनों का प्रमाण है। इसका मुख्य द्वार 8 योजन विस्तीर्ण, 16 योजन ऊँचा है। इन जिन भवनों का समस्त वर्णन भद्रसाल वन के जिन भवन सदृश है।

इन मंदिरों में देवतागण जल, गंध, अक्षत, पुष्प आदि द्रव्यों से बड़ी भक्ति से पूजा, अर्चा स्तुति करते हैं।

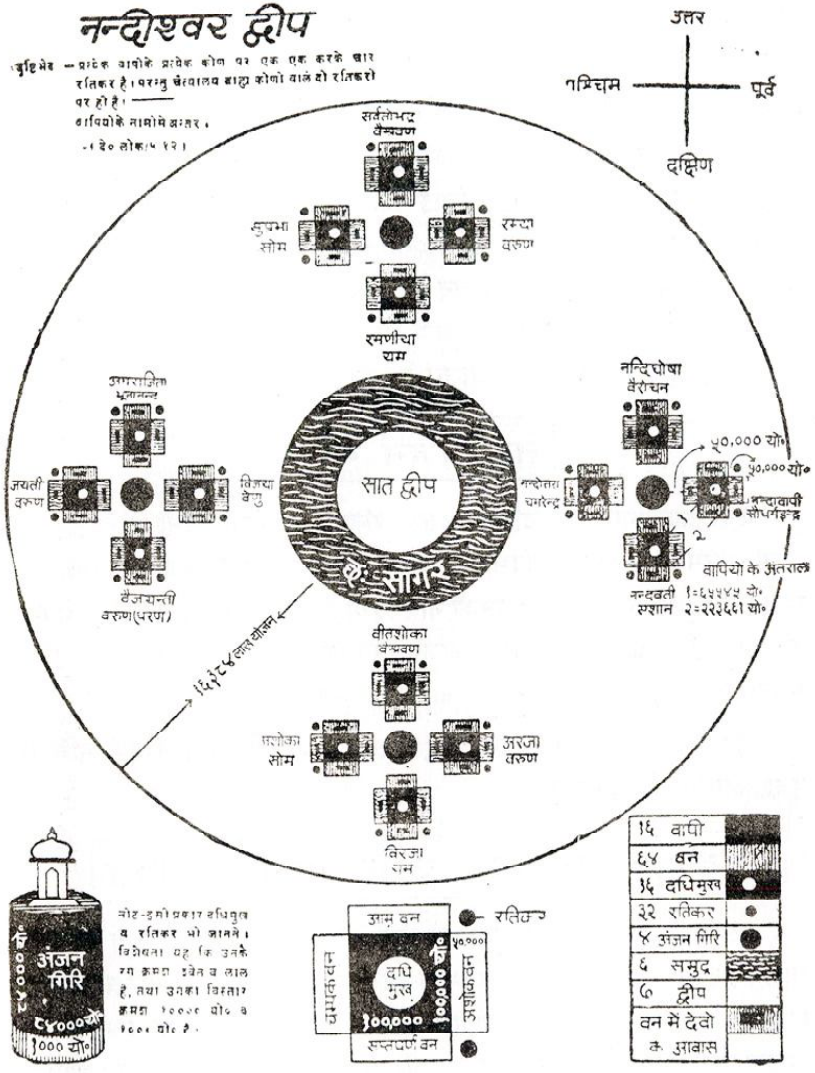

दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा के पर्वत

इस प्रकार पूर्व दिशा के सदृश ही तीनों दिशाओं में 'अंजन' पर्वत हैं उनके चारों दिशाओं की वापियों के नाम भिन्न-भिन्न हैं। दक्षिण अंजन गिरि की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से अरजा, विरजा, अशोका, वीतशोका, वापियाँ हैं। पश्चिम अंजनगिरि की चारों दिशाओं में विरजा, वैजयन्ती, जयंती और अपराजिता वापियाँ हैं। उत्तर अंजनगिरि की चारों दिशाओं में रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा वापियाँ हैं। प्रत्येक वापी के चारों तरफ एक-एक वन होने से 16 वापी के चौंसठ वन हो गये हैं।

इन अंजनगिरियों के चौंसठ वनों में फहराती हुई वन ध्वज-पताकाओं से संयुक्त उत्तमरत्न, सुवर्णमय एक-एक प्रासाद हैं ये प्रासाद 62 योजन ऊँचे, 31 योजन लम्बे चौड़े उत्तम वेदिका, तोरण द्वारों से सुशोभित हैं। इन प्रासादों में बहुत प्रकार के व्यंतर देव क्रीड़ा करते हैं। चारों प्रकार के देव नंदीश्वर द्वीप में प्रतिवर्ष आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन के आष्टान्हिक पर्व में आते हैं। दिव्य विभूति से रहित सौधर्म इंद्र हाथ में नारियल को लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़कर आता है। ईशान इंद्र हाथी पर बैठकर सुपाड़ी के गुच्छों को हाथों में लेकर आता है। सनत्कुमार इंद्र सिंह पर चढ़कर आम्र फलों के गुच्छों को लेकर आता है, माहेन्द्र इंद्र घोड़े पर चढ़कर केलों को लेकर आता है, आगे के देव कोई केतकी कोई कमल, सेवंती, पुष्पमाल, नीमकमल, अनार फल आदि को लेकर आते हैं ये चार प्रकार के देव नंदीश्वर द्वीप के दिव्य जिनेन्द्र भवनों में आकर नाना प्रकार की स्तुतियों से वाचालमुख होते हुये प्रदक्षिणायें करते हैं।

नंदीश्वरद्वीपस्थ जिन मंदिरों की पूजा में बहुत भक्ति से युक्त कल्पवासी देव पूर्वदिशा में, भवनवासी दक्षिण में, व्यंतरवासी देव पश्चिम में और ज्योतिषीदेव उत्तर में अनेक स्तुतियों से युक्त होकर अपने-अपने वैभव के अनुसार दिव्य महापूजा करते हैं अर्थात् दिन रात के चौबीस घंटे में 6-6 घंटे तक पूजा करते हैं पुनः वे देव आगे-आगे के 6-6 घंटों में आगे-आगे की दिशाओं में बढ़ते जाते हैं अतः 24 घंटों में वे देव चारों दिशाओं की पूजा कर लेते हैं वहाँ नदीश्वर द्वीप में दिन-रात का भेद नहीं है यह घंटे के काल का हिसाब यहीं के अनुसार है। उसी बात को स्पष्ट करते हैं ये देव भक्ति युक्त

होकर अष्टमी से पूर्णिमा तक पूर्वान्ह, अपराह्न, पूर्वरात्रि, अपररात्रि में दो-दो प्रहर तक उत्तम भक्तियुत प्रदक्षिण क्रम से जिनेन्द्र भगवान की विविध प्रकार से पूजा करते हैं। सुगंधित जल आदि से उन दिव्य प्रतिमाओं का अभिषेक आदि करते हैं। अष्टद्रव्य, वाद्य, नृत्य प्रकारों से जिन भगवान की उपासना करते हैं।

इस प्रकार से पूर्वादि चार दिशा सम्बंधी 1-1 अंजनगिरि, 4-4 दधिमुख, 8-8 रतिकर ऐसे 13-13 पर्वतों के 13-13 जिन भवनों के जोड़ से यहाँ 52 चैत्यालय शोभित हैं। उनमें स्थित सभी जिन प्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

अरुणवर द्वीप समुद्र

नंदीश्वर द्वीप के आगे अरुण नाम का द्वीप है उसको वेष्टित करके अरुणवर समुद्र स्थित है। अरुणवर समुद्र का विस्तार 13107200000 योजन प्रमाण है। इस समुद्र के दूर ऊपर उठा हुआ अरिष्ट नाम का अंधकार प्रथम चार स्वर्गों को आच्छादित करके पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त हो गया है। मृदंग के समान आकार वाली आठ कृष्णराजियाँ उसके बाह्य भाग में सब ओर स्थित हैं। उस सघन अंधकार में अल्पर्द्धिक देव दिशा भेद को भूलकर चिरकाल तक भटक जाते हैं। वे यहाँ से दूसरे महर्द्धिक देवों के प्रभाव से निकल पाते हैं। अन्य प्रकार से नहीं निकल पाते हैं।

ग्यारहवां कुण्डलवर द्वीप

ग्यारहवां द्वीप 'कुण्डलवर' नाम से प्रसिद्ध है इसके मध्य भाग में कुण्डल नामक पर्वत वलयाकार से स्थित है। इस पर्वत की ऊँचाई 75000 योजन और नींव 1000 योजन है इसका मूल विस्तार 10220 योजन, मध्य विस्तार 7230 एवं उपरिम विस्तार 4240 योजन है। इस पर्वत का विस्तार मानुषोत्तर पर्वत से दस गुणा है इसके ऊपर तथा तलभाग में तटवेदी, वनखंड मौजूद हैं। इस पर 20 कूट हैं।

पूर्वादि चार दिशाओं में प्रत्येक में से चार-चार कूट एवं उनके अभ्यंतर भाग में एक-एक सिद्धवर कूट हैं। प्रथम 16 कूटों के वज्र, वज्रप्रभ आदि सुंदर सुंदर नाम हैं एवं उन्हीं नाम के धारक व्यंतर देव इन पर रहते हैं। इन कूटों की ऊँचाई आदि का वर्णन नंदन के कूटों के समान है। चार सिद्ध कूटों पर चार जिन भवन हैं जो वर्णन में निषधपर्वत के जिनभवन सदृश हैं।

तेरहवां रुचकवर द्वीप

तेरहवां द्वीप 'रुचकवर' नाम से प्रसिद्ध है। इसके मध्य भाग में सुवर्णमय रुचकवर पर्वत स्थित है। इस पर्वत का विस्तार सर्वत्र 84000 योजन एवं ऊँचाई भी इतनी ही है इसकी नींव 1000 योजनमात्र है। इस पर्वत के मूल व उपरिम भाग में वनवेदी आदि से विशेष रमणीय, तटवेदियाँ व उपवन स्थित हैं। इस पर्वत के ऊपर 44 कूट हैं पूर्वदिशा में कनक आदि उत्तम नाम वाले 8 कूट हैं ये कूट 500 योजन ऊँचे, मूल में 500 योजन विस्तृत व ऊपर में 250 योजन विस्तृत, वेदी, वनखंडों से युक्त हैं। इन कूटों के ऊपर जिन भवनों से भूषित देवियों के भवन हैं उन पर क्रम से विजया, वैजयंता, जयंता, अपराजिता, नंदा, नंदवती, नंदोत्तरा, और नंदिषेणा नामक दिक्कन्यायें निवास करती हैं। पर्वत पर दक्षिण दिशा में स्फटिक रजत आदि नाम वाले आठ कूटों पर इच्छा, समाहारा, सुप्रकीर्णा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नाम की 8 दिक्कन्यायें रहती हैं। पर्वत पर पश्चिम दिशा में अमोघ, स्वस्तिक आदि नाम वाले 8 कूटों पर इला, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मा, एकनासा, नवमी, सीता और भद्रा नाम की दिक्कन्यायें रहती हैं। पर्वत के उत्तर में विजय आदि 8 कूटों पर क्रम से अलंभूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री नाम की दिक्कन्यायें रहती हैं। इनमें से पूर्व दिशा की 8 दिक्कन्यायें जिन भगवान के जन्म कल्याणक में झारी को धारण करती हैं। दक्षिण दिशा गत दिक्कन्यायें जिन जन्मकल्याणक में दर्पण धारण करती हैं। पश्चिम दिशा गत कन्यायें जिन जन्मकल्याणक में जिनमाता के ऊपर छत्र धारण करती हैं। उत्तर दिशागत दिक्कन्यायें जिन जन्मकल्याणक में जिन माता पर चंवर ढोरती हैं।

वे सभी उपर्युक्त वन वेदियों से रमणीय हैं। इन कूटों की वेदियों के अभ्यंतर चार दिशाओं में पूर्वोक्त कूटों के सदृश चार महाकूट स्थित हैं। इन कूटों पर रहने वाली सौदामिनी, कनका, शतह्रदा और कनकचित्रा देवियाँ जिन जन्मकल्याणक में दिशाओं को निर्मल करती हैं। इन कूटों के अभ्यंतर भाग में पूर्वोक्त कूटों के सदृश चार कूट हैं इन पर रहने वाली रुचका, रुचककीर्ति, रुचककांता और रुचकप्रभा दिक्कन्यायें जिन भगवान के जात

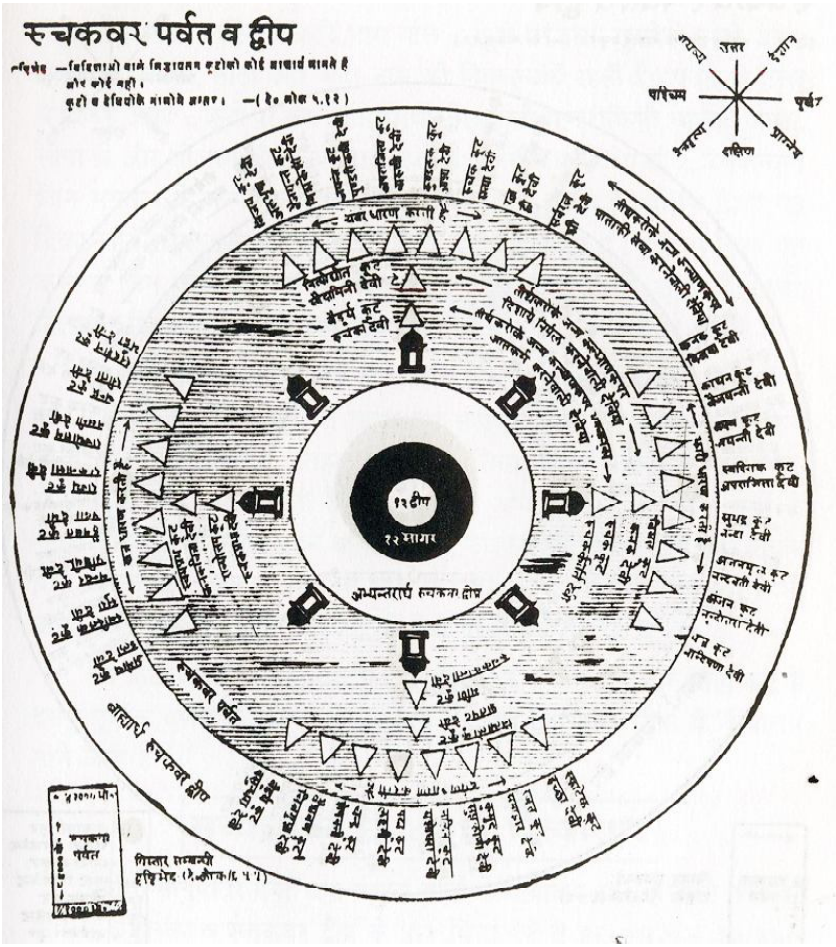

कर्म में जाती हैं। इनमें से प्रत्येक की आयु एक पल्य है। उनके परिवार श्री देवी के समान हैं।

इन कूटों के अभ्यंतर भाग में चारों दिशाओं में 1-1 ऐसे चार सिद्धकूट हैं इसमें पूर्वोक्त वर्णन से युक्त 4 जिन भवन हैं। यहाँ तक मध्य लोक के चैत्यालय माने जाते हैं।

मध्यलोक में 458 चैत्यालय

पूर्वोक्त मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य लोक के चैत्यालय 398 हैं उनमें नंदीश्वर के 52, कुण्डलवर व रुचकवर द्वीप के 4-4 मिला देने से

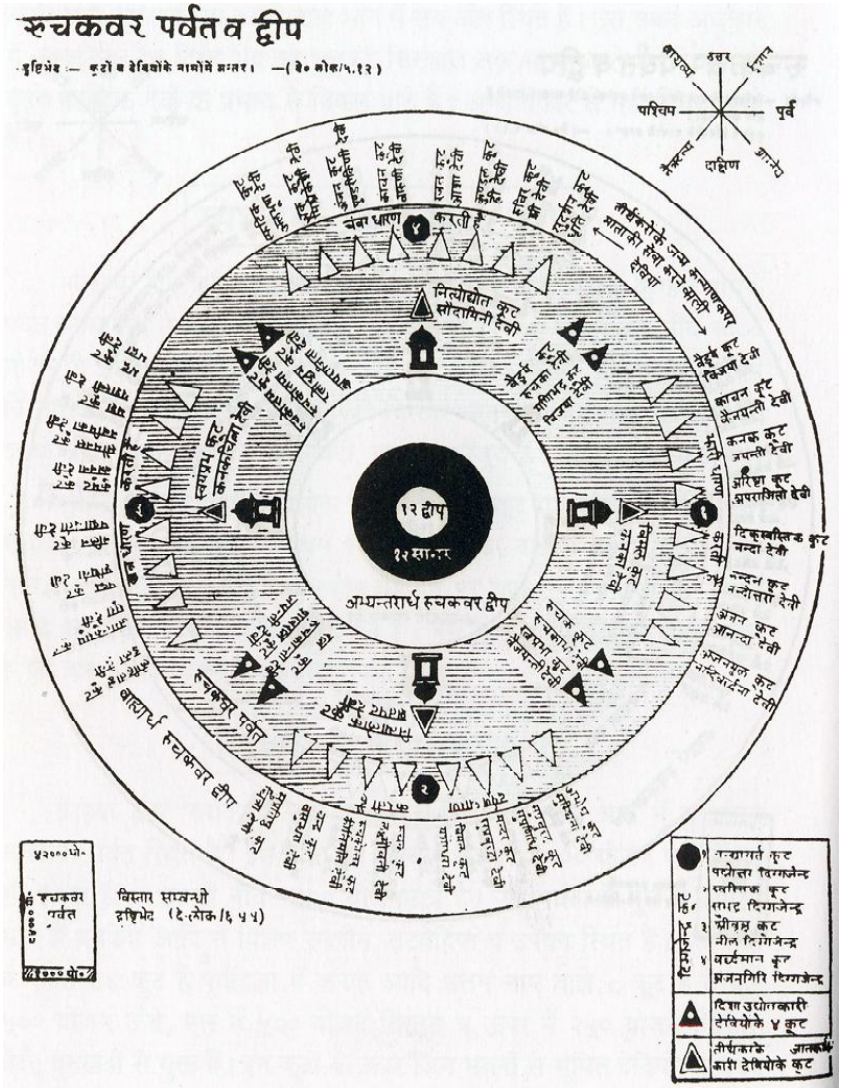

398+52+4+4=458 चैत्यालय हैं उनमें विराजमान सभी जिनप्रतिमाओं को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

दूसरा जम्बूद्वीप

इस जम्बूद्वीप के आगे संख्यात समुद्र व द्वीपों के बाद अतिशय रमणीय दूसरा जम्बूद्वीप है वहाँ पर वज्रापृथ्वी के ऊपर चित्रा के मध्य में पूर्वादिक

दिशाओ में 'विजय' आदि देवों की दिव्य नगरियाँ हैं। ये नगरियाँ उत्सेधयोजन से बारह हजार योजन विस्तृत, जिन भवनों से सुंदर, उपवन वेदियों से युक्त हैं। इनके प्राकार 37-1/2 योजन ऊँचे हैं इनका विस्तार मूल में 12-1/2 योजन एवं ऊपर में 6-1/2 योजन मात्र है। इन नगरियों में मणिमय तोरणों से युक्त 25 गोपुर द्वार हैं। इन नगरियों के भवनों की लम्बाई 62 योजन एवं विस्तार 31 योजन है। इन भवनों के मध्य में 1200 योजन प्रमाण विस्तृत 1 कोस ऊँचा राजांगण है। इस राजांगण के मध्य में उत्तम प्रासाद हैं एवं चारों दिशाओं में 4 प्रासाद हैं। मध्य के प्रासाद पर विजय देव रहता है जो सदैव अपने परिवार देवों से युक्त होता हुआ सुखों का उपभोग करता है। शेष दक्षिण आदि दिशाओं में वैजयंत, जयंत, अपराजित देव के ऐसे ही वैभव युक्त नगर हैं जो कि जिन चैत्यालय से संपन्न हैं।

स्वयंभूरमण द्वीप

सब द्वीपों में अंतिम द्वीप 'स्वयंभूरमण नाम वाला है इसके मध्य में मंडलाकार स्वयंप्रभ पर्वत स्थित है यह पर्वत तटवेदी वन, उपवन से सहित रत्नों से देदीप्यमान है। मानुषोत्तर पर्वत, कुण्डलवर पर्वत, रुचकवर पर्वत एवं स्वयंप्रभ पर्वत ये चारों पर्वत वर्तुलाकार– वलयाकार से अपने-अपने द्वीप के मध्य में स्थित हैं।

तिर्यंचों की भोगभूमि-कर्मभूमि व्यवस्था

पुष्कर द्वीपस्थ मानुषोत्तर पर्वत से उधर अर्ध पुष्कर द्वीप से लेकर स्वयंभूरमण द्वीपस्थ स्वयंप्रभ पर्वत के इधर-उधर असंख्यातों द्वीपों में भोगभूमि व्यवस्था है यहाँ के तिर्यंच युगलिया उत्पन्न होते हैं। एक पल्य आयु से सहित ये भोगभूमिज तिर्यंच जघन्य भोगभूमि के सुखों का अनुभव करते हैं। स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य अर्ध स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र में तिर्यंचों में कर्मभूमि की व्यवस्था है। इन कर्मभूमिज जलचर, स्थलचर, नभचर आदि तिर्यंचों में सम्यक्त्व ग्रहण करने की एवं अणुव्रत पालन करके देश संयत होने की योग्यता है। वहाँ पर कदाचित् किन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को जातिस्मरण से कदाचित् देवों के द्वारा धर्मोपदेश

का लाभ मिलने से सम्यक्तव हो जाता है कदाचित् देशव्रती भी बन जाते हैं ऐसे सम्यक्त्वी और देशव्रती तिर्यंच वहाँ पर असंख्यातों हैं। जो कि मरकर देवगति को प्राप्त कर लेते हैं। मध्य के असंख्यातों द्वीपों के भोगभूमिज तिर्यंच भी मरकर भवनत्रिक में अथवा यदि सम्यक्त्व सहित हैं तो सौधर्म युगलस्वर्ग तक जन्म लेते हैं।

तिर्यंचों की आयु

शुद्ध पृथ्वी की उत्कृष्ट आयु 12000 वर्ष, खर पृथ्वी की 1000 वर्ष जलजीव की 7000 वर्ष, अग्निकायिक की 3 दिन, वायुकाय की 3000 वर्ष, वनस्पति की 10000 वर्ष है। दो इंद्रिय की उत्कृष्ट आयु 12 वर्ष, तीन इंद्रियों की 49 वर्ष, चार इंद्रियों की 6 माह, पंचेन्द्रियों में सरीसृप की नौ पूर्वांग, पक्षियों की 72000 वर्ष, सर्पों की 42000 वर्ष, शेष तिर्यंचों की उत्कृष्ट आयु 1 पूर्वकोटि प्रमाण है। यह उत्कृष्ट आयु पूर्व-पश्चिम विदेहों में उत्पन्न हुये तिर्यंचों के तथा स्वयंप्रभ पर्वत से बाहर उत्पन्न हुये कर्मभूमि तिर्यंचों के सर्वकाल पाई जाती है। भरत-ऐरावत क्षेत्र के भीतर चतुर्थकाल में प्रारंभिक प्रथम भाग में भी किन्हीं तिर्यंचों के उत्कृष्ट आयु पाई जाती है।

एकेन्द्रिय की जघन्य आयु उच्छ्वास के अठारवें भाग प्रमाण है। विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की जघन्य आयु इससे उत्तरोत्तर संख्यात गुणी है। जघन्य भोगभूमिज तिर्यंचों की जघन्य आयु एक समय अधिक एक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट एक पल्य प्रमाण है। मध्यम भोग-भूमिजों की जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य एवं उत्कृष्ट दो पल्य है। उत्कृष्ट भोग-भूमिजों की जघन्य एक समय अधिक दो पल्य एवं उत्कृष्ट आयु तीन पल्य प्रमाण है।

तिर्यंचों की उत्पत्ति-गुणस्थान आदि का वर्णन

तिर्यंचों की उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से ही होती है। इनकी योनियाँ 62 लाख प्रमाण हैं – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्य निगोद, इतर निगोद इन छहों की 7-7 लाख, वनस्पति की 10 लाख, विकलत्रय की 6 लाख, पंचेन्द्रियों की 4 लाख इस प्रकार से 7×6=42+10+6+4=62 लाख हैं।

सभी भोग भूमिज तिर्यंचों में केवल एक सुख ही होता है कर्मभूमिज तिर्यंचों के सुख-दुःख दोनों होते हैं। संज्ञी को छोड़कर शेष-एकेन्द्रिय से चार इंद्रिय तक एवं असंज्ञी पंचेन्द्रियों को एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है। भरत ऐरावत के भीतर 5-5 आर्यखंडों में, पाँच विदेहों के 160 आर्यखंडों में, विद्याधर श्रेणियों में और स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग के तिर्यंचों में 'देशविरत' तक पाँच गुणस्थान हो सकते हैं। भोगभूमिज तिर्यंचों के अविरत नामक चार तक गुणस्थान ही होते हैं।

सम्यक्त्व के कारण

इन तिर्यंचों में कितने ही तिर्यंच उपदेश श्रवण से, कितने ही स्वभाव से, कितने ही जातिस्मरण से, प्रथमोपशम और वेदक सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते हैं।

कौन तिर्यंच कहाँ तक जन्म ले सकते हैं?

पृथ्वी आदि पाँच स्थावर, विकलत्रय ये जीव कर्म भूमिज मनुष्य या तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। विशेष इतना है कि अग्निकायिक, वायुकायिक जीव मरकर उसी भव से मनुष्य नहीं हो सकते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत सभी जीव भोगभूमि में नारकियों में उत्पन्न नहीं होते हैं। विशेषता यह है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव प्रथम नरक में और भवनत्रिक में जन्म ले सकते हैं।

कर्म भूमिज पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यंच सम्यक्त्व व व्रतों के प्रभाव से मरकर बारहवें स्वर्ग तक चले जाते हैं। परन्तु भोगभूमिज तिर्यंच मरकर ईशान स्वर्ग तक ही उत्पन्न होते हैं। स्वर्ग, नरक और भोगभूमि में विकलत्रय जीवों की उत्पत्ति नहीं होती।

एकेन्द्रिय में कमल की अवगाहना कुछ अधिक 1000 योजन, द्वीन्द्रिय शंख की 12 योजन, तीन इंद्रिय की 3 कोस की, चार इंद्रिय की 1 योजन और पंचेन्द्रिय महामत्स्य की 1 हजार योजन प्रमाण है, ये महामत्स्य आदि स्वयंभूरमण समुद्र में पाये जाते हैं।

एक राजु चौड़े, मोटे मध्यलोक के अंतर्गत तिर्यंचों का वर्णन अति संक्षेप से हुआ है।

ज्योतिर्वासी देव

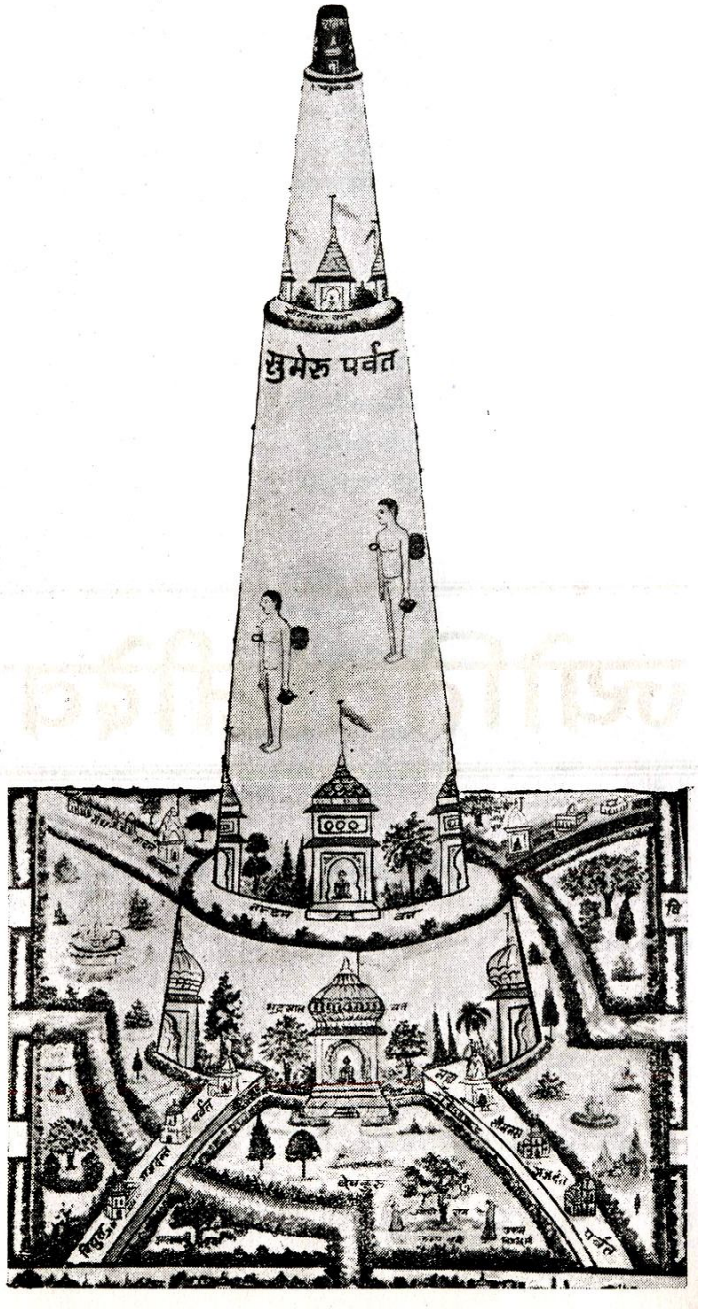

ज्योतिर्लोक प्रकरण

ज्योतिष्क देवों के 5 भेद हैं सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा। इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं। ये सभी विमान अर्धगोलक के सदृश हैं तथा मणिमय तोरणों से अलंकृत होते हुये निरंतर देव-देवियों से एवं जिन मंदिरों से सुशोभित हैं। अपने को जो सूर्य, चंद्र तारे आदि दिखाई देते हैं यह उनके विमानों का नीचे वाला गोलाकार भाग है। जम्बूद्वीप में सभी ज्योतिष्क देव मेरु पर्वत को 1121 योजन छोड़कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते हैं।

इन ज्योतिर्वासी देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से 790 योजन से प्रारंभ होकर 900 योजन की ऊँचाई तक 110 योजन में स्थित हैं।

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊँचाई

विमानों के नाम	चित्रा पृ. से ऊँचाई योजन में	मील में
इस पृथ्वी के तारे	790	3160000
सूर्य	800	3200000
चंद्र	880	3520000
नक्षत्र	884	3536000
बुध	888	3552000
शुक्र	891	3564000
गुरु	894	3576000
मंगल	897	3588000
शनि	900	3600000

सूर्य आदि के विमानों का प्रमाण

सूर्य का विमान 48/61 योजन, चंद्र का 56/61 योजन, शुक्र का 1 कोस ताराओं के सबसे छोटे विमान 1/4 योजन मात्र का है। इन सभी विमानों की मोटाई अपने विस्तार से आधी है। चंद्र विमान के नीचे 4 प्रमाणांगुल जाकर राहु के विमान एवं सूर्य के नीचे केतु के विमान हैं। ये विमान अरिष्टमणि के काले हैं। राहु, केतु के विमान 6-6 महीने में पूर्णिमा

एवं अमावस्या को क्रम से चंद्र, सूर्य के विमानों को ढंक देते हैं। इसे ही ग्रहण कहते हैं।

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिम्ब के प्रमुख देव	योजन	मील से	किरणें
सूर्य	48/61	6147-33/61	12000
चंद्र	56/61	3672-8/61	1200
शुक्र	1 कोस	1000	2500
बुध	कुछ कम 1/2 को.	कुछ कम 500 मी.	मंद किरणें
मंगल	कुछ कम 1/2 को.	कुछ कम 500 मी.	मंद किरणें
शनि	कुछ कम 1/2 को.	कुछ कम 500 मी.	मंद किरणें
गुरु	कुछ कम 1को.	कुछ कम 1000 मी.	मंद किरणें
राहु	कुछ कम 1 को.	कुछ कम 4000 मी.	मंद किरणें
केतु	कुछ कम 1 को.	कुछ कम 4000 मी.	मंद किरणें
तारे	1/4	250मी.	मंद किरणें

ज्योतिष्क देवों के वाहन देव

इन सूर्य, चंद्र के विमानों को अभियोग्य जाति के देव पूर्वादि दिशा में सिंह, हाथी, बैल और घोड़े के आकार को धरकर चार-चार हजार ऐसे 16000 देव खींचते रहते हैं इसी प्रकार से ग्रहों के 8000, नक्षत्रों के 4000, ताराओं के 2000 देव वाहन जाति के हैं।

गमन में चंद्रमा सबसे मंद, सूर्य शीघ्रगामी, इससे अधिक शीघ्रगामी ग्रह, ग्रहों से शीघ्रतर नक्षत्र, नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गतिवाले तारा गण हैं।

शीत-उष्ण किरणें

पृथ्वी के परिणाम रूप चमकीली धातु से सूर्य का विमान बना हुआ है, जो कि अकृत्रिम है। इस बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नाम कर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं सूर्य बिम्ब में मूल में उष्णता नहीं है। उसी प्रकार से चंद्र, तारे आदि के बिम्ब में रहने वाले पृथ्वीकायिक जीवों के उद्योत नाम कर्म का उदय है जिसके निमित्त के मूल में तथा किरणों

में सर्वत्र शीतलता पाई जाती है। सभी तारा, नक्षत्र, ग्रहों के बिम्बों के पृथ्वीकायिक जीवों के उद्योत नाम कर्म का उदय है।

सूर्य आदि के बिम्ब में स्थित जिनमंदिर, प्रासाद आदि

सभी विमानों के ऊपर चारों तरफ तट वेदी उपवन खंड हैं एवं मध्य में जिनभवन हैं। चारों तरफ देवों के प्रमुख प्रासाद हैं। राजांगण के बाहर विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से रचित परिवार देवों के भवन हैं।

देवों की आयु

चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु=1पल्य 1 लाख वर्ष
सूर्य की उत्कृष्ट आयु=1 पल्य 1 हजार वर्ष
शुक्र की उत्कृष्ट आयु=1 पल्य 100 वर्ष
बृहस्पति की उत्कृष्ट आयु=1 पल्य की
बुध, मंगल आदि की आयु=1/2 पल्य की
ताराओं की उत्कृष्ट आयु=1/4 पल्य की

ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु अपने-अपने पति की आयु के अर्ध प्रमाण है।

1 चंद्र का परिवार

इन ज्योतिषी देवों में चंद्रमा इंद्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है। अतः एक चंद्र के सूर्य प्रतीन्द्र, 88 ग्रह, 28 नक्षत्र 66975 कोड़ा-कोड़ी तारे हैं ऐसे परिवार से सहित जम्बूद्वीप में दो चंद्र हैं। सूर्य और चंद्र के 4-4 प्रमुख देवियाँ हैं और प्रत्येक देवी की 4 आश्रित 4-4 हजार देवियाँ हैं।

सूर्य का गमन क्षेत्र

सूर्य का गमन क्षेत्र पृथ्वी से 800 योजन ऊपर जाकर है। 1 लाख योजन व्यास वाले इस जम्बूद्वीप के भीतर 180 योजन एवं लवण समुद्र में 330-48/61 योजन, ऐसा 510-38/61 योजन प्रमाण गमन क्षेत्र है। इतने प्रमाण गमन क्षेत्र में 184 गलियाँ हैं। इन गलियों में दो-दो सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं दोनों सूर्य आमने-सामने रहते हुये 1 दिन रात्रि में एक गली के भ्रमण को पूरा करते हैं।

इस 510-48/61 योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में सूर्य बिम्ब की 1-1 गली 48/61 योजन मात्र की है एवं एक गली से दूसरी गली का अंतर 2-2 योजन का है।

एक मुहूर्त और एक मिनट में सूर्य का गमन

जब सूर्य प्रथम गली में रहता है, तब एक मुहूर्त में 5251-29/60 योजन गमन करता है। एक गली से दूसरी में जाने से परिधि के बढ़ जाने से गमन क्षेत्र बढ़ जाता है। अंतिम 184 वीं गली में एक मुहूर्त में 5305-14/60 योजन गमन करता है।

एक मिनट में सूर्य की गति 4, 37, 6, 23 11/18 मील प्रमाण है।

दक्षिणायन-उत्तरायण

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जब सूर्य अभ्यंतर मार्ग में रहता है तब दक्षिणायन का प्रारंभ है एवं अंतिम गली में पहुँच कर वापस आना प्रारंभ करने पर उत्तरायण होता है।

चक्रवर्ती द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन

जब सूर्य पहली गली में रहता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन पर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। चक्रवर्ती की दृष्टि से सूर्य का अंतर 47263-7/20 यो. अर्थात् 1890534000 मील है। चक्रवर्ती के चक्षु इंद्रिय का उत्कृष्ट विषय इतना ही है।

चंद्र की गलियाँ

सूर्य के समान यही 510-48/61 योजन प्रमाण क्षेत्र ही चंद्र का गमन क्षेत्र है। इस गमन क्षेत्र में चंद्र की 15 गलियाँ हैं। चंद्र बिम्ब प्रमाण 56/61 योजन की एक-एक गली है एवं 35-214/427 योजन प्रमाण एक-एक गली का अंतराल है। प्रतिदिन दो चंद्रमा आमने-सामने रहते हुए 62-23/221 मुहूर्त काल में एक गली का भ्रमण पूरा करते हैं। चंद्रमा 1 मुहूर्त में 5037-7744/13725 योजन प्रमाण गमन करता है एवं एक मिनिट में लगभग 422797 मील प्रमाण गमन करता है।

कृष्ण-शुक्ल पक्ष

पहली से दूसरी गली में प्रवेश करने पर चंद्र मंडल के 16 भागों में से 1 राहु के गमन विशेष से ढक जाता है ऐसे ही 15 दिन तक 1-1 कला ढकते-ढकते अमावस्या के दिन एक ही कला रह जाती है। प्रतिपदा से राहु के गमन विशेष से 1-1 कला खुलती चली जाती है। 16 कला के पूर्ण होने पर पूर्णिमा होती है।

लवण समुद्र में ज्योतिषदेव

लवण समुद्र में 510-48/61 योजन प्रमाण वाले दो गमन क्षेत्र हैं उन 1-1 क्षेंत्रों में 2-2 सूर्यचंद्र संचार किया करते हैं एक-एक चंद्र के परिवार में पूर्वोक्त प्रमाण ग्रह, नक्षत्र, तारे कहे गये हैं।

धातकीखंड आदि द्वीप समुद्रों में ज्योतिषीदेव

धातकीखंड में 12 सूर्य 12 चंद्र हैं। इनके 6 गमन क्षेत्र हैं जो कि 510-48/61 योजन प्रमाण वाले ही हैं। कालोदधि में 42 सूर्य 42 चंद्रमा हैं। इनके लिये 21 गमन क्षेत्र हैं पुष्करार्ध में 72 सूर्य 72 चंद्रमा हैं। इनके लिये 36 गमन क्षेत्र वहाँ हैं वे भी 510-48/61 योजन प्रमाण वाले हैं। इन एक-एक गमन क्षेत्र में दो सूर्य और दो-दो चंद्र भ्रमण किया करते हैं। सभी के परिवार देव पूर्वोक्त प्रमाण हैं।

ध्रुव ताराओं का प्रमाण

जम्बूद्वीप में 36, लवणसमुद्र में 139, धातकीखंड में 1010 कालोदधि में 41120, पुष्करार्ध में 532300 ध्रुव तारे हैं।

ढाई द्वीप के आगे सूर्य, चंद्र आदि का वर्णन

ढाई द्वीप के आगे सभी ज्योतिष्क देव एवं तारे स्थिर ही हैं। आगे के असंख्यात द्वीप एवं समुद्र पर्यंत दूने-दूने चंद्रमा एवं दूने-दूने सूर्य होते गये हैं। ढाई द्वीप के भीतर के ही सूर्य, चंद्र आदि मेरु की प्रदक्षिणा में क्रम से भ्रमण किया करते हैं। इनके गमन से ही दिन, पक्ष आदि का काल विभाग होता है।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर आधा पुष्कर द्वीप आठ लाख योजन का है। इसमें 1264 सूर्य और इतने ही चंद्रमा हैं। मानुषोत्तर पर्वत से 50000 योजन

की दूरी पर प्रथम वलय है। इस वलय में इधर के पुष्करार्धद्वीप के 72 से दूने 72+72=144 सूर्य एवं 144 चंद्र हैं। इस प्रथम वलय से 100000 योजन जाकर दूसरा वलय है ऐसे 100000 योजन दूर से यहाँ 8 वलय हैं। प्रथम वलय में 144 थे, दूसरे वलय में 4 और बढ़ा दीजिये तीसरे में 152, ऐसे प्रत्येक वलय में 4-4 बढ़ते गये हैं। आठों वलयों के कुल मिलाकर 1264 सूर्य हुये हैं।

आगे पुष्करवर समुद्र का व्यास 32 लाख योजन है। वहाँ 32 वलय हैं। बाह्य पुष्कर द्वीप के 1264 को दूना करने से 2528 सूर्य हुये प्रथम वलय में 2528 सूर्य और 2528 चंद्रमा हैं। दूसरे आदि वलयों में 4-4 बढ़ते हैं।

32 वलयों का जोड़ 82880 होता है।

आगे के द्वीप के प्रथम वलय में इसे दूना 82880×2 करने से=165760 सूर्य हुये। सभी द्वीप समुद्रों में प्रत्येक वलय का अंतर 100000 योजन का है समुद्र तट या वेदी तट से 50000 योजन का है। द्वीप से समुद्र में और समुद्र से द्वीप में प्रारंभ से पूर्व के द्वीप या समुद्र के सूर्यों से संख्या दूनी हो जाती है आगे उसी द्वीप या समुद्र के प्रत्येक वलय में 4-4 बढ़ते जाते हैं।

सर्वत्र 1 चंद्र के 1 सूर्य, 88 ग्रह, 28 नक्षत्र 66975 कोड़ाकोड़ी तारे परिवार देव हैं। अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में सूर्यों का प्रमाण असंख्यात हो जाता है। इन सभी ज्योतिष्कवासी देवों के भवनों का 1-1 जिन भवन हैं। ऐसे ज्योतिर्वासी गृह संबंधी असंख्यात जिन भवनों को हमारा नमस्कार होवे।

ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति एवं सम्यक्त्व के कारण

इन ज्योतिर्वासी देवों में सम्यग्दृष्टी का जन्म नहीं होता है। जिन्होंने मिथ्यात्व सहित पुण्य का उपार्जन किया है। या पंचाग्नि तप आदि काय क्लेश से मिथ्या तप किया है। इत्यादि कारणों से वहाँ उत्पन्न होते हैं। इन देवों में जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिन पंचकल्याणक आदि जिन महिम दर्शन, देवैश्वर्य दर्शन आदि कारणों से सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। वहाँ के देव मिथ्यात्व सहित संक्लेश परिणामों से मरकर कदाचित् एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, वनस्पति पर्याय में भी जन्म ले लेते हैं। वहाँ से सम्यक्त्व सहित मरकर कर्मभूमिज आर्य मनुष्य ही होते हैं।

ऊर्ध्व लोक

ऊर्ध्वलोक का वर्णन

मेरु की चूलिका के उत्तर कुरु क्षेत्रवर्ती मनुष्य के एक बालमात्र के अंतर से प्रथम स्वर्ग का प्रथम इंद्रक स्थित है। अर्थात् मेरु की चूलिका के ऊपर से एक बाल के अंतर से ऊर्ध्वलोक प्रारंभ होता है। यह ऊर्ध्वलोक 1 लाख इकसठ योजन 425 धनुष, एक बाल, कम सात राजू प्रमाण है। अर्थात् मध्यलोक 1 लाख 40 योजन ऊँचे सुमेरु प्रमाण है और चूलिका से प्रथम स्वर्ग में 1 बाल का अंतर है एवं लोकशिखर के नीचे 21 योजन, 425 धनुष जाकर अंतिम इंद्रक है। अतः-

100000+40+21=100061 योजन 425 ध.1 बाल, इतना प्रमाण सात राजु में कम हो गया है। ऊर्ध्वलोक के 2 भेद – कल्प, कल्पातीत। 16 स्वर्गों को कल्प कहते हैं।

मेरु की चूलिका से 1-1/2 राजु तक सौधर्म ईशान स्वर्ग हैं। 1/2 राजु में ब्रह्म युगल, 1/2 राजु में लांतव कापिष्ठ, 1/2 राजु में शुक्र-महाशुक्र, 1/2 राजु में शतार-सहस्रार, 1/2 राजु में आनत-प्राणत,1/2 राजु में आरण-अच्युत, आगे 1 राजु में नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश 5 अनुत्तर विमान हैं। 1-1/2+1-1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1=7 राजु हुये।

वैमानिक देव

कल्प के १२ भेद

सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, बह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये 16 स्वर्ग हैं। इनमें से मध्य के 8 स्वर्गों में से दो-दो स्वर्गों के एक-एक इंद्र हैं। इसलिये बारह इंद्र होते हैं। इन बारह इंद्रों की अपेक्षा 12 कल्प होते हैं।

कल्पातीत देवों के भेद

अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयक के 3-3 भेद होते हैं अतः ग्रैवेयक 9 हुये। ऐसे ही नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं।

नव अनुदिश एवं पाँच अनुत्तर के नाम

अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अंक, स्फटिक और आदित्य ये 9 अनुदिश हैं। इनमें से आदित्य विमान मध्य में है, अर्चि अर्चिमालिनी आदि 4 क्रम से पूर्वादिक चार दिशाओं में हैं एवं सोम आदि चार विमान विदिशा में हैं। दिशा के श्रेणीबद्ध, विदिशा के प्रकीर्णक कहलाते हैं।

विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये 5 अनुत्तर हैं। मध्य में सर्वार्थसिद्धि एवं चार दिशा में विजय आदि विमान श्रेणीबद्ध नाम से हैं।

बारह कल्पों की विमान संख्या

सौधर्म के	3200000	लावंत, कापिष्ठ के	50000
ईशान के	2800000	शुक्र, महाशुक्र के	40000
सानत्कुमार के	1200000	शतार, सहस्रार के	6000
माहेन्द्र के	800000	आनत, प्राणत	
ब्रह्म, बह्मोत्तर के	400000	आरण, अच्युत के	700

कल्पातीतों के विमान

3 अधनस्तन ग्रै. के	111	9 अनुदिश के	9
3 मध्यम ग्रैवेयक के	107	5 अनुत्तर के	5
3 उपरिम ग्रैवेयक के विमान	91		

3200000+2800000+1200000+800000+400000+50000+40000+6000+700+111+107+91+9+5=8497023 विमान हुये।

इंद्रक प्रस्तार

स्वर्गनाम	प्रस्तार संख्या	प्रस्तार के नाम
सौधर्म, ईशान	31	ऋतु, विमल, चंद्र, वल्गु, वीर, अरुण, नंदन, नलिन, कंचन, रोहित, चंच, मरुत, ऋद्धीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अंक, स्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र,हारिद्र, पद्म, लोहित, वज्र, नंद्यावर्त, प्रभाकर, पृष्ठक, गज, मित्र और प्रभा।
सानत्कुमार युगल	7	अंजन, वनमाल, नाग, गरुड़, लागंल, बलभद्र और चक्र।
ब्रह्म युगल	4	अरिष्ट देवसमिति, ब्रह्म, बह्मोत्तर।
लांतव युगल	2	ब्रह्महृदय, लांतवकल्प
महाशुक्र युगल	1	शुक्र (महाशुक्र)
सहस्रार युगल	1	शतार (सहस्रार)
आनत दो युगल	6	आनत, प्राणत, पुष्पक, शातंकर, आरण, अच्युत
अधनस्तन ग्रै. 3	3	सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध।
मध्य. ग्रै. 3	3	यशोधर, सुभद्र, सुविशाल।
उपरिम ग्रै. 3	3	सुमनस, सौमनस, प्रीतिंकर।
अनुदिश 9	1	आदित्य
अनुत्तर 5	1	सर्वार्थसिद्धि।

31+7+4+2+1+1+6+3+3+3+1+1=63 इंद्रक विमान हैं।

स्वर्गों के नाम	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक
सौधर्म	4371	3195598
ईशान	1457	2798543
सानत्कुमार	588	1199405

माहेन्द्र	196	799804
ब्रह्म युगल	360	399636
लांतव युगल	156	49842
शुक्र युगल	72	39927
शतार युगल	68	5931
आनतादि दो युगल	324	370
3 अधो ग्रैवेयक	108	0
3 मध्य ग्रैवेयक	72	32
3 उपरिम ग्रैवेयक	36	52
9 अनुदिश	4	4
5 अनुत्तर	4	0

सौधर्म स्वर्ग में इंद्रक विमान 31, श्रेणीबद्ध 4371 प्रकीर्णक 3195598 इन तीनों का जोड़ देने से पूर्वोक्त सौधर्म के 3200000 विमान हो जाते हैं। अर्थात् 31+4371+3195598=3200000 हुए। ऐसे ही सर्वत्र इंद्रक श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक की संख्या जोड़ देने से उन-उन कल्प संबंधी विमानों की संख्या हो जाती है।

इंद्रक विमानों का विस्तार आदि

61 इंद्रक विमानों के ऋतु, विमल, चंद्र, आदि उत्तम-उत्तम नाम हैं। अंतिम 63 वें का नाम सवार्थसिद्धि है। पहला इंद्रक 4500000 योजन का है और अंतिम इंद्रक 100000 योजन का है दूसरे से लेकर 60 वें तक, मध्यम प्रमाण है अर्थात् प्रथम इंद्रक 45 लाख का है उसमें 70967-23/31 योजन को घटा दीजिये दूसरे इंद्रक का प्रमाण 4429032-8/31 योजन आता है। ऐसे ही 60 वें इंद्रक तक 70967-23/31 योजन प्रमाण को घटाते जाइये। अंतिम इंद्रक 100000 योजन का हो जायेगा।

ये सभी इंद्रक एक के ऊपर एक होने से भवनों के खन के समान हैं। एक-एक इंद्रक का आपस में अंतराल असंख्यात योजन है।

श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक कहाँ हैं?

सब इंद्रकों की चारों दिशाओं में श्रेणीबद्ध और विदिशाओं से प्रकीर्णक विमान हैं। ऋतु नामक प्रथम इंद्रक विमान की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में 62 श्रेणीबद्ध विमान हैं। इसके आगे आदित्य नामक 60 वें इंद्रक पर्वत शेष इंद्रकों की प्रत्येक दिशा में एक-एक कम होते गये हैं। अंतिम सर्वार्थसिद्धि इंद्रक के चारों दिशाओं में 1-1 श्रेणीबद्ध विमान विजय आदि नाम के हैं।

प्रथम ऋतु इंद्रक के चारों दिशाओं के 62-62 मिलकर 62×4=248 विमान हुए। इस प्रकार आगे-आगे एक-एक इंद्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमानों में 4-4 घटते गये हैं। ऐसे ही पहले स्वर्ग के 31 इंद्रकों की संख्या बना लीजिए।

विमानों का विस्तार आदि

सभी इंद्रक और श्रेणीबद्ध विमान गोल हैं दिव्य रत्नों से निर्मित ध्वजा तोरणों से सुशोभित हैं। इनके अंतराल में विदिशाओं में पुष्पों के सदृश रत्नमय उत्तम प्रकीर्णक विमान हैं। इंद्रकों का विस्तार कह दिया है। सभी श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं और असंख्यात योजन प्रमाण ही इनका तिरछा अंतराल है। सब प्रकीर्णक विमानों का विस्तार संख्यात व असंख्यात योजन प्रमाण है और इतना ही उसमें अंतराल भी है। इन विमानों की मोटाई और वर्ण का प्रकरण आगे दिखाते हैं।

इंद्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक इन तीन प्रकारों के विमानों के उपरिम व तल भागों में रमणीय एक-एक तट वेदी है यह वेदी मार्ग, गोपुर द्वार, तोरणों से सुशोभित ध्वजा पताकाओं से अत्यंत रमणीय है।

ग्यारह स्थान के विमानों की मोटाई वर्ण आदि

स्थान	मोटाई (योजन)	वर्ण
1. सौधर्म युगल	1121	पाँचों वर्ण वाले
2. सानत्कुमार युगल	1022	कृष्ण रहित 4 वर्ण वाले
3. ब्रह्म युगल	923	कृ.नी. रहित 3 वर्ण वाले
4. लांतव युगल	824	कृ.नी. रहित 3 वर्ण वाले

5. शुक्र युगल	725	कृ.नी. लाल रहित 2 वर्ण
6. शतार युगल	626	कृ.नी. लाल रहित 2 वर्ण
7. आनतादि दो युगल	527	श्वेतवर्ण मुक्ताफल, कुंदपुष्प सदृश
8. अधो ग्रै. 3	428	श्वेतवर्ण मुक्ताफल, कुंदपुष्प सदृश
9. मध्य. ग्रै. 3	329	श्वेतवर्ण मुक्ताफल, कुंदपुष्प सदृश
10. उपरिम ग्रै. 3	230	श्वेतवर्ण मुक्ताफल, कुंदपुष्प सदृश
11. अनुदिश, अनुत्तर	131	श्वेतवर्ण मुक्ताफल, कुंदपुष्प सदृश

संख्यात-असंख्यात योजन वाले विमानों की संख्या

प्रत्येक कल्पों में राशि के पाँचवें भाग प्रमाण विमान संख्यात योजन वाले हैं और अपने-अपने संख्यात योजन विस्तार वाले विमानों की राशि से कम अपनी-अपनी राशि प्रमाण असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। जैसे सौधर्म कल्प में संख्यात योजन विस्तार वाले विमान 640000 हैं एवं ईशान कल्प में 560000 हैं इत्यादि।

संख्यात-असंख्यात योजन के विमान

स्थान	संख्यात योजन वाले	असंख्यात योजन वाले
सौधर्म में	640000	2560000
ईशान में	560000	2240000
सानत्कुमार में	240000	960000
माहेन्द्र में	160000	640000
ब्रह्म युगल में	80000	320000
लांतव युगल में	10000	40000
शुक्र युगल में	8000	32000
शतार युगल में	1200	4800
आनतादि 4 स्वर्गों में	140	560
अधस्तन ग्रै. में	3	108
मध्यम में	18	89
उपरिम में	17	74

अनुदिश 9 में	1	8
अनुत्तर 5 में	1	4

विमानों के आधार

सौधर्म ईशान के विमान धन स्वरूप जल के आधार पर हैं। सानत्कुमार माहेन्द्र के विमान पवन के ऊपर स्थित हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लावंत, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार इन चार युगलों के विमान जल व पवन इन दोनों के आधार हैं। आनत-प्राणत से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सभी विमान शुद्ध आकाश तल में स्थित हैं।

देवों के भवन

इंद्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों के ऊपर, समचतुष्कोण व लंबे विविध प्रकार के प्रासाद स्थित हैं। ये सब प्रासाद सुवर्णमय, स्फटिक मणिमय, मरकत, माणिक्य, इंद्रनील मणियों से निर्मित, उत्तम तोरणों से सुंदर द्वारों वाले, सात आठ नौ दश इत्यादि विचित्र भूमियों से भूषित, उत्तम रत्नों से विभूषित, अनेक यन्त्रों से रमणीय रत्न दीपक, कालागुरु आदि धूपों की गंध से व्याप्त, आसनशाला, नाट्यशाला, क्रीड़नशाला आदिकों से शोभायमान, सिंहासन, गजासन, मकरासन, मयूरासन आदि से परिपूर्ण विचित्र मणिमय शय्यायों से कमनीय, नित्य, विमल स्वरूप वाले कांतिमान अनादि निधन हैं।

दक्षिण-उत्तर इंद्र और उनके विमान

सौधर्मेन्द्र सानत्कुमारेंद्र ब्रह्मेंद्र, महाशुक्रेन्द्र, आनतेंद्र, आरणेन्द्र ये 6 दक्षिण दिशा संबंधी इंद्र दक्षिण इंद्र हैं। ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लांतवेन्द्र शतारेन्द्र, प्राणतेन्द्र और अच्युतेन्द्र ये उत्तर दिशा संबंधी इंद्र उत्तर इंद्र हैं।

ऋतु आदि 31 इंद्रक एवं उनमें पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य आग्नेय दिशा में स्थित प्रकीर्णक इंद्रों का नाम **सौधर्म कल्प** है। इनका स्वामी **सौधर्म इंद्र** है।

उपर्युक्त 31 इंद्रकों की उत्तर दिशा में स्थित श्रेणीबद्ध और वायव्य, ईशान दिशा के प्रकीर्णक विमान ये **ईशान कल्प** हैं इनका स्वामी **ईशान इंद्र** है।

सानत्कुमार युगल के 7 इंद्रक, उनके पूर्व-पश्चिम दक्षिण के श्रेणीबद्ध एवं नैऋत्य, आग्नेय के प्रकीर्णक विमान, इनका नाम **सानत्कुमार कल्प** है।

इन्हीं की उत्तर दिशा में स्थित श्रेणीबद्ध और वायव्य, ईशान के प्रकीर्णक ये **माहेन्द्र कल्प** में हैं।

ब्रह्म युगल के चार इंद्रक तथा इनकी चारों दिशाओं के श्रेणीबद्ध और विदिशाओं के प्रकीर्णक, इनका नाम **ब्रह्म कल्प** है।

लांतव युगल के ब्रह्महृदय आदि दो इंद्रक उनकी चारों दिशाओं में स्थित श्रेणीबद्ध, विदिशाओं के प्रकीर्णक, इनका नाम **लांतव कल्प** है।

महाशुक्र का एक इंद्रक, दिशाओं के श्रेणीबद्ध, विदिशा के प्रकीर्णक इनका नाम **महाशुक्र दो कल्प रूप** है।

सहस्रार का एक इंद्रक दिशा विदिशा के श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक इनका नाम, **सहस्रार कल्प** है।

आनत आदि चार स्वर्गों में आनत आदि 6 इंद्रक, इनकी पूर्व-पश्चिम दक्षिण दिशा के श्रेणीबद्ध, नैऋत्य, आग्नेय विदिशा के प्रकीर्णक इनका नाम **आनत आरण दो कल्प** है।

उक्त इंद्रक की उत्तर दिशा में श्रेणीबद्ध, तथा वायव्य, ईशान दिशा के प्रकीर्णक इनका नाम **प्राणत अच्युत कल्प** है।

कल्पों की सीमायें अपने-अपने अंतिम इंद्रकों के ध्वज दण्ड तक हैं और कल्पातीतों का अंत कुछ कम लोक के अंत तक है।

स्वर्गों में देवेन्द्रों का चिन्ह

सौधर्म स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	वराह
ईशान स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	मृग
सानत्कुमार स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	भैंस
माहेन्द्र स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	मछली
ब्रह्म स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	कछुआ
ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	मेंढ़क
लांतव स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	घोड़ा
कापिष्ठ स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	हाथी

शुक्र स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	चंद्र
महाशुक्र स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	सर्प
शतार स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	खड्ग
सहस्रार स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	अज
आनत प्राणत स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	बैल
आरण अच्युत स्वर्ग के इंद्रों के मुकुट में	चिन्ह	कल्पवृक्ष

ये इंद्रों के चौदह चिन्ह होते हैं।

सौधर्म इंद्र का नगर

सौधर्म युगल के 31 इंद्रकों में जो अंतिम इंद्रक है उसका नाम 'प्रभ' है। इस 'प्रभ' नामक इंद्रक के दक्षिण श्रेणी में स्थित जो अठारहवां श्रेणीबद्ध विमान है उसमें **सौधर्म इंद्र** रहता है। वहाँ पर 84000 हजार योजन विस्तृत, सुवर्णमय प्राकार से वेष्टित सौधर्म इंद्र का नगर है। प्राकार के अग्रभाग पर कहीं पर पंक्तिबद्ध ध्वजायें, कहीं पर मयूराकार यंत्रों से शोभा बढ़ रही है। यह प्राकार 50 योजन विस्तृत और 300 योजन ऊँचा है, 50 योजन की ही इसकी नींव है। इसके पूर्व में 400 गोपुर द्वार 100 योजन विस्तृत, 400 योजन ऊँचे हैं। इनका मूल भाग वज्रमय, उपरिम भाग वैडूर्यमणिमय व सर्व रत्नमय है। सौधर्म इंद्र का 'स्तम्भ' प्रासाद 60 योजन की नींव सहित 120 योजन विस्तृत, 600 योजन ऊँचा है। इस प्रासाद के भीतर 160000 देवियों से सेवित सौधर्म इंद्र निरंतर सुख समुद्र में मग्न रहता है। सौधर्म इंद्र की शची को प्रमुख करके 8 अग्रदेवियाँ हैं, ये आठों ही 16-16 हजार रूप बना सकती हैं। एक-एक देवी के 16-16 हजार परिवार देवियाँ हैं। सौधर्म इंद्र की बल्लभा देवियाँ 32 हजार (16000×8)+32000=160000 देवियाँ होती हैं अग्रमहिषी में प्रमुख शची है और वल्लभा में प्रमुखा कनक श्री है।

सौधर्म इंद्र की अग्रदेवियों के आठ प्रासाद 100 योजन विस्तृत, 500 योजन ऊँचे, 50 योजन अवगाह से सहित हैं। सौधर्म इंद्र की 'कनक श्री' नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ वल्लभा देवी है। उसका मनोहर प्रासाद सौधर्म इंद्र के प्रासाद की पूर्व दिशा में है।

ईशान इंद्र का नगर

अंतिम 'प्रभ' इंद्रक की उत्तर दिशा में जो अठारहवाँ श्रेणीबद्ध विमान है उसमें 'ईशान इंद्र' रहता है। उसका प्रासाद प्रमाण में सौधर्म इंद्र के समान है उसके नगर का विस्तार 80000 योजन तथा वल्लभा का नाम 'हेममाला' है।

सानत्कुमार इंद्र का नगर

सानत्कुमार युगल के 7 इंद्रकों में अंतिम का नाम चक्र है इस चक्र इंद्रक के दक्षिण में स्थित सोलहवें श्रेणीबद्ध विमान में '**सानत्कुमार इंद्र**' रहता है। दक्षिण में असंख्यात योजन जाकर उसका 72000 योजन विस्तृत नगर है। इस नगर का प्राकार जड़ में 25 योजन एवं 25 योजन विस्तृत 250 योजन ऊँचा है। उसकी प्रत्येक दिशा में 300 गोपुर द्वार हैं। उनका विस्तार 90 योजन, ऊँचाई 300 योजन है। वहाँ इंद्र का प्रासाद 50 योजन अवगाह से सहित, 100 योजन विस्तृत, 500 योजन ऊँचा है। इस इंद्र की 72000 देवियाँ हैं उनमें आठ अग्रदेवियाँ हैं। वल्लभा देवी का नाम 'कनक प्रभा' है। देवियों के प्रासाद 90 योजन विस्तृत, 45 योजन जड़ से सहित 450 योजन ऊँचे हैं। ये प्रासाद उस इंद्र प्रासाद के चारों ओर हैं।

माहेन्द्र इंद्र का नगर

चक्र इंद्रक की उत्तर दिशा में स्थित सोलहवें श्रेणीबद्ध विमान में माहेन्द्र इन्द्र का नगर है उसका विस्तार 70000 योजन है। उसके आठ अग्रदेवियों में 'कनक मण्डिता' नाम की वल्लभा देवी है। उनके प्रासाद सानत्कुमार इंद्र की देवियों के प्रासादों के समान हैं।

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर इंद्र के नगर

ब्रह्म युगल के 4 इंद्रक में अंतिम इंद्रक का नाम 'ब्रह्मोत्तर' है। उस ब्रह्मोत्तर इंद्रक के दक्षिण में चौदहवें श्रेणीबद्ध विमान में 'ब्रह्मेन्द्र' का नगर है। उसका विस्तार 60000 योजन है। इसका प्राकार 12-1/2 योजन विस्तृत, 200 योजन ऊँचा है। इस प्राकार की प्रत्येक दिशा में 200 गोपुर द्वार हैं, गोपुर द्वारों का विस्तार 80 योजन, ऊँचाई 200 योजन है। ब्रह्मेन्द्र का प्रासाद 90 योजन विस्तृत, 450 योजन ऊँचा है। ब्रह्मेन्द्र की आठ अग्रदेवियों के

प्रासाद 80 योजन विस्तृत, 400 योजन ऊँचे हैं। 34000 देवियाँ निरंतर उसके आश्रित रहती हैं। उसकी वल्लभा का नाम 'नीला' है। इसका प्रासाद इन्द्र प्रासाद के पूर्व में है।

ब्रह्मोत्तर इंद्र की उत्तर दिशा गत पंक्ति के चौदहवें श्रेणीबद्ध विमान में 'ब्रह्मोत्तर' इंद्र रहता है। उसकी वल्लभा देवी का नाम 'नीलोत्पला' है।

लांतव-कापिष्ठ इंद्र के नगर

लांतव युगल में 2 इंद्रक हैं अंतिम इंद्रक लांतव नामक है इस लांतव इंद्रक विमान से दक्षिण दिशा में पंक्ति के 12वें श्रेणीबद्ध विमान में लांतव इंद्र का पुर है। उसका विस्तार 50000 योजन है। उसका प्राकार 6-1/4 योजन अवगाह एवं 6-1/4 योजन विस्तार से सहित, 150 योजन ऊँचा है। प्राकार की प्रत्येक दिशा में 160 गोपुरद्वार हैं। उनका विस्तार 70 योजन ऊँचाई 160 योजन मात्र है। इस पुर में 80 योजन विस्तृत, 40 योजन नींव से युक्त 400 योजन ऊँचा दिव्य प्रासाद है। यहीं लांतव इंद्र रहता है। लांतवेन्द्र की देवियों के प्रासाद 70 योजन विस्तृत, 35 योजन नींव से सहित, 350 योजन ऊँचे हैं। 16500 देवियों से वेष्टित उस इन्द्र के 8 अग्र देवियाँ हैं और 'पद्मा' नाम की वल्लभा देवी है।

लांतव इंद्रक की उत्तर दिशा में स्थित बारहवें श्रेणीबद्ध विमान में 'कापिष्ठ' इंद्र रहता है जो कि लांतव इंद्र के समान है उसकी वल्लभा देवी 'पद्मोत्पला' नाम से प्रसिद्ध है।

शुक्र महाशुक्र इंद्र के नगर

शुक्र युगल में 1 इंद्रक है जिसका नाम शुक्र है उस शुक्र विमान के दक्षिण में दसवें श्रेणीबद्ध विमान में शुक्र इंद्र का उत्तम नगर है। जो 40000 योजन विस्तृत है इसका प्राकार 4 योजन सहित, 4 योजन विस्तृत 120 योजन ऊँचा है, उसकी प्रत्येक दिशा में 140 गोपुरद्वार हैं। उन गोपुरद्वारों का विस्तार 50 योजन, ऊँचाई 40 योजन है। उस नगर में 35 योजन जड़ से सहित, 70 योजन विस्तृत, 350 योजन ऊँचा 'शुक्र इंद्र' का प्रासाद है। 'वहाँ शुक्रेन्द्र की देवियों के प्रासाद 30 योजन जड़ वाले, 60 योजन विस्तृत 300

योजन ऊँचे हैं। शुक्रेन्द्र की देवियाँ 8250 हैं उनमें आठ अग्र देवियाँ हैं। और 'नंदा' नाम की वल्लभा देवी है।

शुक्र इंद्रक से उत्तर में दसवें श्रेणीबद्ध में 'महाशुक्र इंद्र' रहता है। उसकी वल्लभा का नाम 'नन्दावती' है इसका परिवार और नगर शुक्रेन्द्र के समान है।

शतार-सहस्रार इंद्र के नगर

शतार युगल में 1 इंद्रक शतार नाम का है। इस शतार इंद्रक के दक्षिण में आठवें श्रेणीबद्ध विमान में 30000 योजन विस्तृत 'शतार' इंद्र का पुर है इस पुर को वेष्टित करके 3 योजन जड़ से सहित, 3 योजन विस्तृत 100 योजन ऊँचा प्राकार है। उसकी प्रत्येक दिशा में 120 गोपुर द्वार हैं उन द्वारों का विस्तार 40 योजन ऊँचाई 120 योजन है। शतार इंद्र का प्रासाद 30 योजन जड़ वाला, 60 योजन विस्तृत, 300 योजन ऊँचा है। शतार इंद्र के 4125 देवियाँ हैं। उसकी वल्लभा देवी का नाम 'सुसीमा' हैं उसकी देवियों के प्रासाद 25 योजन पृथ्वी में प्रविष्ट, 50 योजन 250 योजन ऊँचे हैं।

शतार इंद्रक की उत्तर दिशा में स्थित आठवें श्रेणीबद्ध में 'सहस्रार इंद्र' रहता है उसका वर्णन शतार इंद्र के सामन है उसके 'लक्ष्मणा' नाम की वल्लभा देवी है।

आरण-अच्युत इंद्र के नगर

आनत आदि चार स्वर्गों में 6 इंद्रक हैं उसमें अन्तिम इंद्रक का नाम 'अच्युत' है उसकी दक्षिण श्रेणी में स्थित छठे श्रेणीबद्ध विमान में 20000 योजन विस्तृत 'आरण नगर' है उसके प्राकार का अवगाह 2-1/2 योजन विस्तार 1/2 योजन ऊँचाई 80 योजन है। इनकी प्रत्येक दिशा में 100-100 गोपुर द्वार हैं। सभी द्वार 30 योजन विस्तृत, 100 योजन ऊँचे हैं। उस नगर में जो आरण इंद्र का प्रासाद है वह 25 योजन नींववाला, 50 योजन विस्तृत, 250 योजन ऊँचा है। उसकी देवियाँ 2063 हैं उनमें 8 अग्र देवियाँ और 'जिनदत्ता' नाम की वल्लभा देवी है। देवियों के भवन 20 योजन जड़ वाले, 40 योजन विस्तृत 200 योजन ऊँचे हैं। वल्लभा देवियों के प्रासाद प्रमाण में देवियों के भवनों के समान हैं। ऊँचाई में 220 योजन ऊँचे हैं।

अच्युत इंद्रक के उत्तर में स्थित छठे श्रेणीबद्ध में अच्युतइंद्र रहता है। जो आरण इंद्र के समान है। उसकी 'जिनदासी' नाम की वल्लभा देवी है।

लोक विभाग में सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, अच्युत ये 14 इंद्र के नगर माने जाते हैं। तिलोयपण्णत्ति में सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये 12 इंद्रों के नगर बताये हैं।[1] यथा

प्रथम स्वर्ग युगल के 31 इंद्रकों में से अंतिम 'प्रभ' इंद्रक की दक्षिण श्रेणी में बत्तीस श्रेणीबद्ध विमानों में से अठारहवें में सौधर्म इंद्र है। इसी इंद्रक की उत्तर दिशा में 32 श्रेणीबद्ध में से अठारहवें में ईशान इंद्र है।

सानत्कुमार युगल के 7 इंद्रक में से अंतिम 'चक्र' इंद्रक' की दक्षिण पंक्ति में 25 श्रेणीबद्ध विमानों में से सोलहवें में सानत्कुमार इन्द्र है इसी इंद्र की उत्तर दिशा में 25 श्रेणीबद्धों में से सोलहवें में माहेन्द्र इन्द्र है।

ब्रह्म युगल के ब्रह्मोत्तर इंद्र की दक्षिण दिशा में 21 श्रेणीबद्धों में से चौदहवें श्रेणीबद्ध में 'बह्मेन्द्र' रहता है।

लांतव युगल के लांतव इंद्रक की दक्षिण दिशा 20 श्रेणीबद्धों में से बारहवें श्रेणीबद्ध में 'लांतवेन्द्र' रहता है।

शुक्र युगल के महाशुक्र इंद्रक की उत्तर दिशा में अठारह श्रेणीबद्धों में से दसवें श्रेणीबद्ध में 'महाशुक्र इंद्र' रहता है।

शतार युगल में सहस्रार इंद्रक की उत्तर दिशा में सत्रह श्रेणीबद्धों में से आठवें श्रेणीबद्ध में 'सहस्रार इंद्र' रहता है।

जिनेन्द्र भगवान से देखे गये नाम[1] वाले इंद्रक की दक्षिण पंक्ति के श्रेणीबद्धों में से छठे श्रेणीबद्ध में 'आनत इंद्र' निवास करता है।

इस इंद्रक की उत्तर दिशा में इतनी ही संख्या प्रमाण श्रेणीबद्धों में से छठे श्रेणीबद्ध में 'प्राणत इंद्र' निवास करता है।

आरण इंद्रक की दक्षिण दिशा में 11 श्रेणीबद्धों में से छठे श्रेणीबद्ध में 'आरण इंद्र' रहता है। उसी इंद्रक की उत्तर दिशा के ग्यारह श्रेणीबद्धों में से

1. इंद्रों की संख्या में मतभेद।

छठे श्रेणीबद्ध में 'अच्युत इंद्र' का आवास है।

लोक विभाग में भी कल्प 12 ही माने हैं यथा – सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।

त्रिलोकसार में भी सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र ये चार कल्प, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर इन दो कल्पों को मिलाकर एक इंद्र है, अतः एक कल्प लांवत, कापिष्ठ इन दो में भी एक इंद्र, शुक्र, महाशुक्र दो में भी एक इंद्र और शतार-सहस्रार इन दो के मिलकर एक इंद्र ऐसे मध्य आठ स्वर्गों के चार इंद्र की अपेक्षा चार कल्प आगे आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये चार कल्प ऐसे 12 कल्प होते हैं, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल, लांतव कापिष्ठ युगल, शुक्र-महाशुक्र युगल और शतार-सहस्रार युगल इन चार युगलों में एक-एक इंद्र हैं यहाँ वसती की अपेक्षा दो-दो नाम हैं, इंद्र की अपेक्षा से नहीं हैं। आगे आनत-आरण दक्षिण इंद्र हैं और प्राणत-अच्युत उत्तर इंद्र हैं।

बारह प्रकार के कल्पों के 12 इंद्र पूर्वोपार्जित पुण्य के परिपाक से उत्तम रूप के धारक और दस प्रकार के परिवार से युक्त होते हैं। प्रतीन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, तनुरक्ष, पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक ये उपर्युक्त दस प्रकार के परिवार देव हैं।

एक-एक इंद्र के एक-एक प्रतीन्द्र होते हैं वे आज्ञा, ऐश्वर्य के सिवाय बाकी के सभी वैभव में इन्द्र के सदृश होते हैं।

सौधर्म इंद्र का वैभव

सौधर्म इंद्र के 84000 सामानिक देव होते हैं। तैंतीस त्रायस्त्रिंश देव होते हैं। सोम, यम, वरुण और कुबेर नाम के 4 लोकपाल होते हैं। आत्मरक्षदेव 336000 हैं। सौधर्म इन्द्र के पारिषददेवों में अभ्यन्तर पारिषददेव 12000, मध्यम पारिषद 14000, बाह्य पारिषद 16000 हैं। इन तीनों पारिषदों के नाम क्रम से समित्, चंद्रा और जंतु है।

अनीक जाति के देवों में सेनाओं के भेद से 7 भेद होते हैं। वृषभ, अश्व, रथ, गज, पदाति, गंधर्व और नर्तक ये सात सेनायें हैं। इन सात सेनाओं में से प्रत्येक सेना सात-सात कक्षाओं से युक्त होती है उनमें से प्रथम सेना का

प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवों के बराबर है। इससे आगे सप्तम सेना पर्यंत उससे दूना-दूना है। सौधर्म इंद्र के बैल की सेना की प्रथम कथा में 84000 बैल हैं इससे आगे सात कक्षाओं तक वृषभ सेना का प्रमाण 1 करोड़ छह लाख अड़सठ हजार है – 10668000 है और अश्व,रथ आदि भी प्रत्येक इतने-इतने मात्र हैं। सौधर्म इंद्र के समस्त अनीकों की संख्या 74676000 प्रमाण है।

प्रथम कक्षा के वृषभ, अश्व आदि चंद्र सदृश धवल हैं। द्वितीय कक्षा में स्थित वृषभ, अश्व आदि सूर्यमंडल सदृश वर्ण वाले हैं। तृतीय कक्षा के वृषभ आदि फूले हुए कुमुद जैसे वर्ण वाले हैं। चतुर्थ कक्षा में स्थित वे वृषभादि मरकत मणिसदृश वर्ण वाले हैं। पंचम कक्षा में स्थित वे वृषभादि कापोत एवं मयूर कंठ सदृश हैं। छठी कक्षा के वृषभ आदि पद्मराग मणि जैसे वर्ण वाले हैं सातवीं कक्षा में स्थित वृषभ, अश्वरथ आदि इंद्रनील मणि सदृश वर्ण वाले हैं।

सातों अनीकों के अपनी-अपनी कक्षाओं के अंतराल में उत्तम पटह, शंख, मर्दल, काहल आदि में से प्रत्येक होते हैं। बहुत प्रकार की विक्रिया करने वाले ये इंद्रों के वृषभ, तुरंग, रथादि लटकती हुई रत्नमय क्षुद्र घंटिकाओं मणि, पुष्पों की मालाओं से रमणीय, ध्वजाओं से युक्त, चंवर, छत्र से कांतिमान्, रत्नमय तथा सुखप्रद सज्जा से संयुक्त होते हैं।

जो असि, मूसल, तोमर, धनुष आदि विविध शस्त्रों को हाथ में धारण करने वाले हैं वे सात कक्षाओं में दिव्य रूप के धारक पदाति होते हैं। गंधर्व सेना के देव षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन मधुरस्वरों को गाते हैं। ये गंधर्व देव विविध लय से युक्त वीणा, बासुंरी आदि वादित्र बजाते हैं।

प्रथम कक्षा के (नर्तक)[1] देव कंदर्प, राजा, राजाधिराज और विद्याधरों का अभिनय करते हैं। द्वितीय कक्षा के देव अर्ध मंडलीक, महामंडलीक आदि राजाओं के चारित्र का अभिनय करते हैं। तृतीय कक्षा के देव-बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायणों के चरित्र का अभिनय करते हैं। चतुर्थ कक्षा के देव चक्रवर्तियों के चरित्र का नाटक करते हैं। पंचम कक्षा के नर्तक देव लोकपाल और इंद्रों के सुंदर चरित्र का नाटक करते हैं। छठी कक्षा के देव ऋद्धि सम्पन्न

गणधर देवादि मुनीन्द्रों के चारित्र का अभिनय करते हैं। सातवीं कक्षा के नर्तक देव चौंतीस अतिशय, मंगलमय प्रातिहार्यों से युक्त जिननाथों के चरित्र का अभिनय करते हैं। ये सभी नर्तक देव विक्रिया से सहित होकर नित्य ही अपने इंद्रों के सामने नृत्य आदि किया करते हैं। ये सात सेनायें प्रत्येक देवेन्द्रों के होती हैं।

इन सातों अनीकों के जो अधिपति देव हैं उनके नामों को बताते हैं। वृषभों में अधिपति दामयष्टि, अश्वों में हरिदाम, रथों में मातलि, गजों में ऐरावत, पदातियों में वायु, गंधर्वों में अरिष्ट यशस्क, नर्तकों में नीलांजना देवी इस प्रकार इन सात अनीकों में ये महत्तर देव विख्यात हैं।

इंद्र के ऐरावत हाथी का वर्णन

सौधर्म इंद्र के आभियोग्य देवों का अधिपति देव 'बालक' नामक देव है। यह वाहनदेव विक्रिया से एक लाख उत्सेध (लघु) योजन प्रमाण ऐरावत नामक हाथी की विक्रिया करता है। इस हाथी के दिव्य रत्न मालाओं से युक्त बत्तीस मुख होते हैं। जो घंटिकाओं से शब्दायमान होते हुये प्रत्येक पृथक्-पृथक् शब्द करते हैं। चंद्र के समान उज्ज्वल रूप वाले इस हाथी के एक-एक मुख में रत्नों से खचित चार-चार दांत होते है। एक-एक दांत पर निर्मल जल से युक्त एक-एक सरोवर होता है। एक-एक सरोवर में उत्तम कमल वनखंड होता है। एक-एक कमल वनखण्ड में विकसित बत्तीस महाकमल होते हैं। एक-एक महाकमल एक-एक योजन प्रमाण होता है। देवों की विक्रिया से निर्मित वे उत्तम कमल सुवर्णमय शोभायमान होते हैं। एक-एक महापद्म पर एक-एक नाट्यशाला होती है, उस एक-एक नाट्यशाला में बत्तीस-बत्तीस अप्सरायें नृत्य करती हैं।

सौधर्म इंद्र के आभियोग्य, प्रकीर्णक और किल्विषक देवों का प्रमाण असंख्यात है।

सभी इंद्रों के प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवों में से प्रत्येक के दस प्रकार के परिवार अपने इंद्र के समान होते हैं। लोकपाल आदि के परिवार देव कुछ कम-कम होते जाते हैं।

सौधर्म इन्द्र के लोकपालों में से प्रत्येक के विमानों की संख्या 666666

है। उन विमानों में सोमादि लोकपालों के क्रम से स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और वल्गुप्रभ नामक प्रधान विमान हैं।

सौधर्मादि दक्षिणइंद्रों के सोम और यम ये दोनों लोकपाल समान ऋद्धि वाले होते हैं। उनसे अधिक ऋद्धिवाला वरुण एवं उससे अधिक ऋद्धिवाला कुबेर होता है।

इंद्र और प्रतीन्द्रों की देवियों का वर्णन

सौधर्म इंद्र की एक-एक ज्येष्ठ देवी के अनुपम लावण्यवाली सोलह हजार परिवार देवियाँ होती हैं।

सौधर्म इंद्र के 32 हजार वल्लभा देवियाँ हैं। ये ज्येष्ठ देवियाँ और वल्लभा देवियाँ प्रत्येक अपने समान सोलह हजार विक्रिया करने में समर्थ हैं। सौधर्म-ईशान से आगे के इंद्रों की ज्येष्ठ देवियाँ इससे दूने-दूने प्रमाण विक्रिया करने में समर्थ हैं।

एक-एक दक्षिण इन्द्र के क्रम से विनयश्री, कजकमाला, पद्मा, नंदा, सुसीमा और जिनदत्ता इस प्रकार एक-एक वल्लभा देवी होती हैं।

एक-एक उत्तर इंद्र के क्रम से हेममाला, नीलोत्पला, विश्रुता, नंदा, वैलक्षणा और जिनदासी इस प्रकार एक-एक वल्लभा होती हैं।

इन इंद्रों की वल्लभाओं में से प्रत्येक के कामा, कामिनिका, पंकजगंधा, अलंबूषा ये चार महत्तरी होती हैं।

प्रतीन्द्रादि तीन के देवियों की विक्रिया ऋद्धि अपने-अपने इंद्रों के सदृश हैं।

प्रत्येक लोकपाल के 35000000 देवियाँ होती हैं। इंद्रों के तनुरक्षक देवों की देवियाँ प्रत्येक के 600 होती हैं।

देवियों की उत्पत्ति के स्थान

सब देवियाँ सौधर्म, ईशान कल्प में ही उत्पन्न होती हैं आगे के कल्पों में नहीं, दक्षिण इंद्र संबंधी देवियों के सौधर्म कल्प में 600000 विमान हैं एवं उत्तर इंद्र संबंधी देवियों के ईशान कल्प में 400000 विमान हैं। इन कल्पों में उत्पन्न हुई देवियों को अपने-अपने अवधिज्ञान से जानकर वे देव अपनी-अपनी देवियों को ले जाते हैं।

सौधर्म कल्प में 2600000 विमान एवं ईशान कल्प में 2400000 हैं जिनमें देव और देवी दोनों ही उत्पन्न होते हैं।

सौधर्म इंद्र का नगर

उस श्रेणीबद्ध विमान के बहुमध्य भाग में सौधर्म नाम से प्रसिद्ध सौधर्मेन्द्र का नगर है जो समचतुष्कोण 84000 योजन प्रमाण है। इसे 'राजांगण' भी कहते हैं। इस राजांगण भूमि के चारों ओर दिव्य सुवर्णमय तटवेदी है जिसे 'प्राकार' भी कहते हैं। यह प्राकार 300 यो. ऊँचा, 50 योजन विस्तृत एवं 50 योजन नींव से सहित है।

नगर के बाहर का वर्णन

इंद्र के नगर के बाहर पाँच कोट – प्राकार माने गये हैं। उन्हें वेदी भी कहते हैं। इन पाँच प्राकारों के बीच-बीच में चार अंतराल हो जाते हैं अर्थात् प्रथम प्राकार और दूसरे प्रकार के मध्य में एक अन्तराल, दूसरे तीसरे के मध्य में दूसरा अंतराल, तीसरे-चौथे प्राकार के मध्य में तीसरा अंतराल, चौथे-पाँचवें प्राकार के मध्य चौथा अंतराल है। प्रथम अंतराल 1300000 योजन का है, द्वितीय अंतराल 6300000 योजन है, तीसरा अंतराल 6400000 योजन एवं पाँचवां अंतराल 8400000 योजन वाला है।

प्रथम अंतराल में सौधर्म इंद्र के आत्मरक्षक देव सपरिवार रहते हैं। दूसरे अंतराल में तीनों पारिषद जाति के देव सपरिवार अपने-अपने भवनों में निवास करते हैं। तृतीय अंतराल में सभी सामानिक देव सपरिवार निवास करते हैं। चतुर्थ अंतराल में अपने-अपने आरोहक, अनीक आभियोग्य, किल्विषक, प्रकीर्णक तथा त्रायस्त्रिंश देव सपरिवार रहते हैं।

नंदन वन का वर्णन

इस पाँचवें परकोटे के आगे इंद्रपुर की चारों ही दिशाओं में दिव्य वन खंड हैं। इनको ही 'नंदन वन' कहते हैं। पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्रवन हैं। ये वन खण्ड पद्मद्रह के समान अर्थात् हजार योजन लम्बे, पाँच सौ योजन चौड़े हैं। इन चारों दिशा संबंधी वनों में प्रत्येक के मध्य में एक-एक 'चैत्यवृक्ष' हैं। ये जम्बूवृक्ष के समान प्रमाण वाले

हैं अर्थात् 10 योजन ऊँचे, मध्य में 6 योजन चौड़े, ऊपर में 4 योजन चौड़े, प्रमुख चार महाशाखा एवं अनेकों लघु शाखाओं से सहित हैं। इन एक-एक चैत्यवृक्षों के चारों तरफ 'पल्यंकासन' से जिनप्रतिमायें विराजमान हैं उनको नमस्कार हो। इस प्रकार से चैत्य वृक्षों से शोभित, पुष्पकरिणी, वापी, मणिमय देव भवनों से संयुक्त, फल, पुष्प, पत्र आदि से परिपूर्ण ये वनखंड अपने 'नंदन' नाम से सार्थक होकर सभी को आनंद देने वाले हैं।

लोकपाल नगर का वर्णन

नंदन वन से चारों ही दिशाओं में संख्यात योजन आगे जाकर सौधर्म इंद्र के लोकपालों के नगर हैं। वे प्रत्येक नगर 12000 योजन लम्बें, 5000 योजन विस्तृत वेदी आदि से शोभायमान हैं।

गणिकाओं के नगर

विदिशाओं में गणिका महत्तरियों की समचतुष्कोण नगरियाँ हैं। प्रत्येक नगरियाँ100000 योजन दीर्घ और इतनी ही विस्तृत, विविध रत्नमय प्रासादों से युक्त हैं। इनके प्रासाद 100 योजन लम्बे, 50 योजन विस्तृत विचित्र मुखमण्डप आदि से संयुक्त हैं।

इनमें से प्रधान चार महत्तरी के नाम–कामा, कामिनी, पद्मगंधा, अलंबूषा हैं।

यहाँ तक सौधर्म इंद्र के नगर के बाहर का वर्णन हुआ अब सौधर्म इंद्र के नगर के भीतर का वर्णन करते हैं।

सौधर्म नगर के अभ्यन्तर का वर्णन

सौधर्म नगर के मध्य भाग में सौधर्म इंद्र का दिव्य प्रासाद है यह प्रासाद फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से सहित सुवर्ण, मणिमालाओं से सुंदर, रत्नमय, मत्तवारण, रत्न दीपक, वज्रमय कपाटों से संयुक्त, शय्या, आसन आदि से परिपूर्ण, सात, आठ, नौ आदि तलों से सुशोभित, रत्नों से खचित दिव्य मनोहर है। इस प्रासाद की ऊँचाई 600 योजन, विस्तार 120 योजन एवं भवन की नींव 60 योजन प्रमाण है।

प्रासाद के मध्य में पादपीठ से सहित अकृत्रिम आकार वाला, विशाल

और उत्तम रत्नमय 'सिंहासन' स्थित है। इस सिंहासन पर दिव्य, उत्तम षोडश आभरणों से युक्त, सौधर्म इंद्र विराजमान होते है। पूर्वोपार्जित करोड़ों सुचरित्रों से प्राप्त हुई सौधर्म शुक्र की अनुपम विभूति को कौन कह सकता है? उत्तम छत्र चंवरों को धारण करने वाली देवियों से, प्रतीन्द्रों और सामानिक आदि देवों से जो नित्य ही सेवित हैं ऐसे सौधर्म इंद्र के 160000 देवियाँ एवं आठ अग्रमहिषी हैं। माया से रहित बहुत ही अनुराग से युक्त वे निपुण देवियाँ नित्य ही अपने इंद्र की सेवा करती रहती हैं।

इंद्र के आस्थान में पीठ अनीक के अधिपतिदेव पादपीठ सहित बहुत से रत्नमय आसनों को देते हैं। जो आसन जिसके योग्य है ऐसे ऊँच, नीच, निकट, दूरवर्ती को जानकर वैसा ही आसन देते हैं।

इंद्र की सभा में उत्तम दंडरत्न को हाथ में लिये हुए द्वारपाल होते हैं, वे सेवकों को प्रस्तुत-अप्रस्तुत कार्य की घोषणा करते हैं। अनेक प्रकार के कार्यों को करने में कुशल अनेकों देवगण इंद्र की आज्ञा को सिर से ग्रहण करते हैं।

प्रतीन्द्रादि देव बड़ी भक्ति से इंद्र सभा में अभिमुख स्थित रहते हैं। इंद्र के प्रधान भवन पूर्वादि चारों दिशाओं में चार होते हैं।

दक्षिण इंद्रों के प्रासादों के नाम वैडूर्य, रजत, अशोक और मृषत्क सार एवं उत्तर इंद्रों के भवनों के नाम–रूचक, मंदर, अशोक और सप्तछद हैं।

तीर्थंकरों के वस्त्रादि वाले दिव्य स्तम्भ

सौधर्म इंद्र के गृहों के आगे 36 योजन ऊँचे, 1 योजन मोटाई से सहित वज्रमय 12 धाराओं वाले 'मानस्तम्भ' होते हैं, इनकी प्रत्येक धारा का विस्तार 1-1 कोस प्रमाण है। अर्थात् ये मानस्तम्भ बारह कोण संयुक्त गोल होते हैं। एक योजन चौड़े मानस्तंभ की परिधि 12 कोस (3 योजन) प्रमाण हो गई है। इसलिये इसमें 12 धारायें 1-1 कोस चौड़ी हैं। इन मानस्तंभों में उत्तम रत्नमय करंडक–पिटारे हैं। प्रत्येक करंडक 500 धनुष विस्तृत, एक कोस लम्बे हैं। मानस्तंभ 36 योजन ऊँचा है उसमें नीचे से 5-3/4 योजन तक करंडक नहीं हैं एवं मध्य में 24 योजन की ऊँचाई तक करंडक हैं। पुनः ऊपर 6-1/4 योजन तक करंडक नहीं है अर्थात् 5-3/4+24+6-1/4=36 योजन

के ऊँचे मानस्तंभ में पहले पौने छह योजन तक करंडक नहीं हैं। आगे 24 योजन तक हैं एवं उसके ऊपर सवा छह योजन तक नहीं हैं। रत्नमय सीकों के समूहों से लटकते हुये ये सब संख्यातों करंडक शक्रादि से पूज्य, अनादिनिधन, महारमणीय हैं।

ऐसे ही मानस्तम्भों में करंडक ईशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इंद्रों के भवनों में भी हैं।

सौधर्म इंद्र के मानस्तम्भों के पिटारों से भरत क्षेत्र के तीर्थंकर बालक के लिये दिव्य, आभरण, भूषण आदि आते हैं। ईशान इंद्र के मानस्तम्भों के पिटारों से इंद्र ऐरावतक्षेत्रवर्ती बालक तीर्थंकरों के लिये दिव्य वस्त्राभूषण आदि लाते हैं। सानत्कुमार के भवन गत मानस्तम्भों से पूर्व विदेहवर्ती तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण आते हैं एवं माहेन्द्र इंद्र के भवनों के मानस्तम्भों से पश्चिम विदेहज तीर्थंकरों के लिए वस्त्र अलंकार आदि लाये जाते हैं।

न्यग्रोध वृक्ष

इंद्र भवनों के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं ये एक-एक वृक्ष पृथ्वीकायिक और जम्बूवृक्ष के सदृश हैं। इन वृक्षों के मूल में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिन प्रतिमा विराजमान हैं। जिनके चरणों में सतत शक्रादि नमस्कार करते हैं।

उपपाद गृह और जिनभवन

उस मानस्तम्भ के पास (ईशान दिशा में) 8 योजन ऊँचा, लम्बा और इतना ही चौड़ा उपपाद गृह है, उस उपपाद गृह में दो रत्नमयी शय्या हैं। यहीं पर इंद्र का जन्म स्थान है। उसी दिशा में इस उपपाद गृह के पास बहुत से शिखरों से युक्त पांडुक वन के जिनभवन सदृश उत्तम 'जिनभवन' हैं।

सुधर्मा सभा का वर्णन

सौधर्म इंद्र के भवन में ईशान दिशा में 300 कोस ऊँची, 400 कोस लम्बी 200 कोस विस्तृत 'सुधर्मा' नामक सभा है। वेदिका आदि से सुंदर इस सभा गृह के द्वारों की ऊँचाई 64 कोस एवं विस्तार 32 कोस है। इस रमणीय सुधर्मा सभा में सौधर्म इंद्र बहुत से परिवार से युक्त विविध सुखों का अनुभव करता है।

इंद्र के सिंहासन के आगे 8 पट्टदेवियों के 8 आसन हैं।इन महादेवियों के आसन के बाहर पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से सोम, यम, वरुण और कुबेर लोकपाल के 4 आसन हैं। इंद्र के आसन से आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशा में अभ्यंतर मध्यम और बाह्य पारिषद देवों के क्रम से 12000, 14000, 16000 आसन हैं। नैऋत्य दिशा में ही त्रायस्त्रिंश देवों के 33 आसन हैं। सेनानायकों के 7 आसन पश्चिम दिशा में हैं। इंद्र के आसन के वायव्य और ईशान दिशा में क्रम से 42 हजार 42 हजार आसन हैं। चारों ही दिशाओं में अंग रक्षक के भद्रासन हैं। सौधर्म के पूर्वादि प्रत्येक दिशा में 84000 आसन हैं। यहाँ सुधर्मा सभा में इस प्रकार से आसनों की व्यवस्था है।

देवियों के भवन

इंद्र प्रासाद के चारों ओर देवी और वल्लभाओं के अनेकों उत्तम रत्नमय दिव्य भवन हैं इन देवियों के भवनों की ऊँचाई 500 योजन, चौड़ाई 50 योजन एवं लम्बाई 100 योजन है। वल्लभाओं के भवनों की ऊँचाई 520 योजन, चौड़ाई 52 योजन लम्बाई 104 योजन प्रमाण है।

इन सभी भवनों में षट् ऋतुओं के योग्य फल, पुष्पादि से व्याप्त, उपवनखंड, स्वच्छ जल से भरी वापियाँ, आदि वस्तुयें शोभायमान हैं। नित्य ही अनेक प्रकार के गीत, वाद्यों से वहाँ का मनोरम, स्थान शब्दायमान रहता है। ये सब भवन उत्तम-उत्तम कर्केतन, मरकत, प्रवाल, पुखराज आदि रत्नों से निर्मित हैं।

इंद्रों के यान विमान

सौधर्म इंद्र का 'वालकु' नामक यान विमान है। ऐसे ईशान आदि इंद्रों के यान विमान पुष्पक, सोमनस, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र आदि सुंदर नाम वाले हैं। इनमें से प्रत्येक 'यानविमान' 1 लाख योजन लम्बे और चौड़े हैं। ये विमान दो प्रकार के हैं-

1. विक्रिया से उत्पन्न, 2. स्वभाव से उत्पन्न।

विक्रिया से उत्पन्न हुए यान विमान विनश्वर एवं स्वभाव से उत्पन्न हुए यान विमान, नित्य अविनश्वर हैं। ये यानविमान फहराती हुई ध्वजाओं से

रमणीय, आसन शय्या आदि से परिपूर्ण धूपघट, घंटा, चामर आदि से शोभित, वंदनमाला, सुवर्ण, मुक्ता मालाओं से सहित, सुंदर द्वार, वज्रमय कपाटों से अलंकृत शोभायमान होते हैं।

यान विमान में स्वच्छ भोजन, वस्त्र, आभरण आदि वस्तुयें, विक्रिया जन्य और स्वाभाविक के भेद से दो प्रकार की होती हैं। विक्रिया से उत्पन्न वस्त्रादि विनश्वर एवं स्वभाव से उत्पन्न हुए पृथ्वीकायिक–अविनश्वर होते हैं।

यहाँ सौधर्म इंद्र के परिवार, वैभव आदि का वर्णन किया है। ऐसे ही ईशान इंद्र से लेकर अच्युत इंद्र पर्यंत व्यवस्था है। बस 1 परिवार देव, देवियों की संख्या में न्यूनता एवं भवन आदि के प्रमाण में न्यूनता आती गई हैं।

कल्पातीतों का वर्णन

नवग्रैवेयक से लेकर सवार्थसिद्धि पर्यंत देव 'अहमिन्द्र' होते हैं अतः इनके प्रतीन्द्र आदि परिवार देव नहीं होते हैं और न देवियाँ ही होती हैं। इन कल्पातीतों में उपपाद सभायें, जिनभवन, दिव्यरत्नमय प्रासाद, अभिषेक सभा, संगीत शाला आदि होते हैं एवं चैत्य वृक्ष भी होते हैं।

अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकों के इंद्र भवनों की ऊँचाई क्रम से 200, 150 और 100 योजन है एवं लम्बाई क्रम से 40, 30, 20 योजन तथा चौड़ाई 20, 15, 10 योजन प्रमाण है।

भवनों का प्रमाण

	ऊँचाई	लंबाई	चौड़ाई
अध. ग्रै.	200	40	20
मध्य. ग्रै.	150	30	15
उप.ग्रै.	100	20	10

नवअनुदिश में भवनों की ऊँचाई 50 योजन, लंबाई 10 योजन एवं चौड़ाई 5 योजन मात्र है ऐसे ही अनुत्तरों में भवनों की ऊँचाई 25 योजन, लंबाई 5 योजन और चौड़ाई 2-1/2 योजन मात्र है।

जिनलिंगधारी मुनिगण ही सोलहवें स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवेयक में जाते हैं। यहाँ ग्रैवेयकों में द्रव्यलिंगी मुनि अभव्य-मुनि भी जा सकते हैं। किन्तु

नवअनुदिश और पाँच अनुत्तरों में सम्यदृष्टि महामुनि ही जाते हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं जाते हैं। विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित इन चारों में जन्म लेने वाले जीव अधिक से अधिक दो भव में नियम से मोक्ष जाते हैं। सर्वार्थ सिद्धि के देव नियम से एक भवावतारी ही होते हैं।

कल्पवासी देव तीर्थंकरों के कल्याणक महोत्सव में आते हैं किन्तु आगे अहमिन्द्र देव वहीं स्थित रहकर भक्ति से मस्तक को झुकाकर प्रणाम करते हैं। कल्पवासी देवों की अपेक्षा इन अहमिन्द्रों को अनंत गुणा सुख अधिक है।

लौकान्तिक देवों का वर्णन

पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग के अंत में लौकांतिक देव रहते हैं। ईशान आदि आठ दिशाओं में गोलाकार प्रकीर्णक विमानों में ये यथाक्रम से रहते हैं। लौकांतिक देवों के 8 भेद होते हैं–सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट।

ईशान दिशा में सारस्वत, पूर्व दिशा में आदित्य, आग्नेय दिशा में वन्हि देव, दक्षिण दिशा में वरुण, नैऋत्य भाग में गर्दतोय, पश्चिम दिशा में तुषित, वायव्य में अव्याबाध और उत्तर दिशा में अरिष्ट ये आठ प्रकार के देव निवास करते हैं। इनके अंतराल में दो-दो अन्य देव हैं उनके नाम-सारस्वत-आदित्य के अंतराल में नियम से अनलाभ और सूर्याभ देव, आदित्य-वन्हि के अंतराल में चंद्राभ, सत्याभ। वन्हि अरुण के मध्य में श्रेयस्कर, क्षेमंकर, अरुण गर्दतोय के अंतराल में वृषभेष्ट, कामधर, गर्दतोयतुषित के अंतराल में निर्माणराज, दिगंतरक्षित। तुषित और अव्याबाध के मध्य में आत्मरक्ष, सर्वरक्ष। अव्याबाध और अरिष्ट के मध्य में मरुतदेव, वसुदेव। अरिष्ट और सारस्वत के अंतराल में अश्व और विश्व नामक देव रहते हैं। इनकी संख्या-

देवों के नाम	संख्या	अंतराल के देव	संख्या	अन्तःदेव	संख्या
सारस्वत	700	अनलाभ	7007	निर्माणराज	23023
आदित्य	700	सूर्याभ	9009	दिगंतरक्ष	25025
वन्हि देव	7007	चंद्राभ	11011	आत्मरक्ष	27027
अरुण	7007	सत्याभ	13011	सर्वरक्ष	29029
गर्दतोय	9009	श्रेयस्कर	15015	मरुदेव	31031

तुषित	9009	क्षेमंकर	17017	वसुदेव	33033
अव्याबाध	11011	वृषभेष्ट	19019	अश्वदेव	35035
अरिष्ट	11011	कामधर	21021	विश्वदेव	37037

इन सभी लौकतांत्रिक देवों का प्रमाण-407806 है।

लौकांतिक देवों की ऊँचाई आयु आदि

लौकांतिक देवों में प्रत्येक के शरीर की ऊँचाई 5 हाथ प्रमाण है। ये लौकांतिक देव, देवी आदि परिवार से रहित परस्पर में हीनाधिकता से रहित, विषयों से विरक्त, देवों में ऋषि के समान होने से देवर्षि कहलाते हैं। अनित्य आदि बारह भावनाओं से चिंतवन में तल्लीन, सभी इंद्रों, देवों से पूज्य हैं। चौदह पूर्व रूप श्रुत ज्ञान के धारी हैं। तीर्थंकरों के निष्क्रमण कल्याण में संबोधन रूप नियोग को पूरा करने के लिए और भक्ति भाव स्तुति करने के लिए आते हैं, अन्य कल्याणकों में नहीं आते हैं। ये नियम से एकभव मनुष्य का लेकर मोक्ष चले जाते हैं।

इन देवों की आयु आठ सागर प्रमाण है। इनमें से अरिष्ट नामक लौकांतिक देवों की आयु नव सागर प्रमाण है। इन सभी देवों में अरिष्टदेव श्रेणीबद्ध विमानों में रहते हैं एवं अवशेष सभी देव प्रकीर्णक विमानों में रहते हैं।

मुक्तिगामी जीवों का वर्णन

सौधर्म इंद्र तथा इंद्र की शचीदेवी, सौधर्म इंद्र के सोम, यम, वरुण, कुबेर, लोकपाल, सानत्कुमार आदि दक्षिण इंद्र, सभी लौकांतिक देव और सर्वार्थसिद्धि के देव नियम से एक भवावतारी होते हैं।

स्वर्ग में जन्म का सुख

देव पूर्वोपार्जित पुण्य से देवगति नाम कर्म के उदय से जीवन सुरलोक के भीतर उपपाद गृह में महार्घ शय्या पर उत्पन्न होते हैं और एक मुहूर्त में छहों पर्याप्तियों को प्राप्त करके नव यौवन संपन्न शरीर वाले हो जाते हैं। देवों के शरीर में नख, केश, रोम, चर्म, माँस, हड्डी, चर्बी, रुधिर, नसें, मल, मूत्रादि मल नहीं होते हैं। प्रत्युत दिव्य वैक्रियक शरीर होता है।

देव विमान में उत्पन्न होने पर पूर्व में बिना खोले किवाड़ युगल खुल जाते

हैं और उसी समय आनंद भेरी शब्द फैलता है। भेरी शब्द को सुनकर परिवार के देव देवियाँ 'जय जय नंद' ऐसे विविध शब्दों को बोलते हुए आते हैं। किल्विष देव जय घंटा, पटह आदि बजाते हैं, गंधर्व देव नृत्य करते हैं। इन सब देव देवियों को देखकर वह देव कौतुक करता है और उसे तत्क्षण विभंगज्ञान या अवधिज्ञान प्रकट हो जाता है। कितने ही मिथ्यादृष्टि देव इस वैभव को पुण्य का फल समझकर सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते हैं।

कोई देव महाविभूति के साथ स्वयं ही जिन पूजा का उद्योग करते हैं एवं कितने देव अन्य देवों के उपदेशवश जिन पूजा करते हैं। द्रह में स्नान कर दिव्य अभिषेक मंडप में प्रविष्ट हुये सिंहासन पर आरूढ़ इस नवजात देव का अन्य देवगण अभिषेक करते हैं। भूषण शाला में प्रवेश कर रत्न भूषणों से वेशभूषा करते हैं। पुनः व्यवसायपुर में प्रवेश कर दिव्य चंदन अक्षत आदि द्रव्यों को लेकर परिवार से संयुक्त हो जिनेन्द्रभवन में जाते हैं। वहाँ प्रदक्षिणा करके 'जय जय' कार करते हुए जिन दर्शन करके क्षीर समुद्र के जल से भरे 1008 कलशों से जिन प्रतिमा का अभिषेक करते हैं। पुनः विधिवत पूजा अर्चन आदि करके भृंगार चंवर आदि उपकरणों से पूजा करके नाटक आदि अभिनय करते हैं।

सम्यग्दृष्टी देव कर्म क्षय के निमित्त भक्ति सहित जिन पूजा करते हैं एवं मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों के संबोधन से 'ये कुल देवता हैं' ऐसा मानकर जिन पूजा करते हैं। पूजा करके आकर वे देवेन्द्र अपने भवनों में आकर सिंहासन पर विराजते हैं।

देवों का गमन मूल शरीर में नहीं है

गर्भ, जन्म आदि कल्याणकों में या क्रीड़ा के लिये यत्र तत्र जाने में देवों के उत्तर-शरीर–विक्रिया से निर्मित शरीर जाते हैं उनके मूल शरीर सुखपूर्वक जन्मस्थानों में स्थित रहते हैं। विक्रिया के शरीर की स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र है। ये देव अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में शरीर की नई-नई विक्रिया करते रहते हैं। इन्हें इसमें कष्ट का अनुभव नहीं होता है प्रत्युत आनंद आता है। इस विषय में विशेषता इतनी है कि सौधर्म-ईशान कल्प में उत्पन्न हुई देवियों के मूल शरीर अपने-अपने स्वर्ग देवों के पास में जाते हैं अर्थात् आगे के स्वर्गों की

सभी देवियाँ सौधर्म ईशान कल्प में ही जन्म लेती हैं पुनः इनके देव आकर इन देवियों को अपने-अपने स्वर्गों में ले जाते हैं तब ये देवियाँ मूल शरीर में ही जाती हैं।

देवों की आयु

सौधर्म-ईशान की उत्कृष्ट आयु 2 सागर, सानत्कुमार-माहेन्द्र में 7, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में 10, लांतव-कापिष्ठ में 14, शुक्र-महाशुक्र में 16, शतार-सहस्रार में 18, आनत-प्राणत में 20, आरण-अच्युत में 22, नव ग्रैवेयक में क्रम से प्रथम ग्रैवेयक में 23, द्वितीय में 24, तृतीय में 25, चतुर्थ में 26, पंचम में 27, छठे में 28, सातवें में 29, आठवें में 30, नवमें में 31 सागर की है। नव अनुदिश में बत्तीस एवं पंच अनुत्तरों में उत्कृष्ट आयु 33 सागर प्रमाण है।

पूर्व-पूर्व के देवों की उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक होकर आगे-आगे के देवों की जघन्यु आयु हो जाती है। जैसे सौधर्म कल्प के देवों की जघन्य आयु एक पल्य है एवं उत्कृष्ट आयु 2 सागर है। आगे सानत्कुमार कल्प में जघन्य आयु कुछ अधिक 2 सागर और उत्कृष्ट आयु 7 सागर है। ऐसे ही नव ग्रैवेयक, अनुदिश तक समझना। विजय आदि चार अनुत्तरों में जघन्य आयु 32 सागर और उत्कृष्ट आयु 33 सागर है। सर्वार्थसिद्धि में जघन्य आयु नहीं है। यह उत्कृष्ट आयु इंद्र, प्रतीन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंश इन चार की ही होती है अन्य देवों की मध्यम व जघन्य आयु होती है।

सौधर्म इंद्र के ऋतु पटल में उत्कृष्ट आयु-छ्यासठ लाख, छ्यासठ हजार छह सौ, छ्यासठ करोड़, छ्यासठ लाख, छ्यासठ हजार, छह सौ और-2/3 पल्य-अर्थात् 66666666666666-2/3 पल्य प्रमाण है।

देवियों की आयु

प्रथम दो कल्पों की देवियों की जघन्य आयु 1 पल्य से कुछ अधिक है उत्कृष्ट आयु सौधर्म में 5 पल्य, ईशान में 7 पल्य है, सा.में 9, मा.11, ब्रह्म में 13, ब्रह्मोत्तर 15, ला में 17, का. में 19, शुक्र में 21, महाशुक्र में 23, शतार में 25, सह. में 27, आनत में 34, प्राणत में 41, आरण में 48,

अच्युत में 55 पल्य प्रमाण है। पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट आयु आगे-आगे के लिये जघन्य आयु बन जाती है। यथा ईशान की उत्कृष्ट आयु 7 पल्य है वही सानत्कुमार में जघन्य है।

अवगाहना

प्रथम दो कल्प – सौधर्म ईशान में देवों के शरीर की ऊँचाई 7 हाथ, सानत्कुमार युगल में 6 हाथ, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ में 5 हाथ, शुक्र, महाशुक्र में 4 हाथ, शतार सहस्रार में 3-1/2 हाथ, आनतादि चार में 3 हाथ, अधस्तन तीन ग्रैवेयक में 2-1/2 हाथ, मध्य तीन ग्रै.में 2 हाथ, उपरिम तीन ग्रै. में 1-1/2 हाथ, नव अनुदिश, पाँच अनुत्तरों में 1 हाथ प्रमाण होती है।

देवों का आहार उच्छ्वास

जिन देवों की आयु 2 सागर है वे 2000 वर्षों के बीत जाने पर दिव्य अमृतमय मानसिक आहार ग्रहण करते हैं अर्थात् 2000 वर्ष बीतने पर उन्हें भोजन की इच्छा होते ही कण्ठ से अमृत झर जाता है और तृप्ति हो जाती हैं ये देव दो पक्ष में उच्छ्वास लेते हैं। जिनकी आयु एक सागर है वे 1000 वर्ष में आहार एवं एक पक्ष में उच्छ्वास लेते हैं आगे सानत्कुमार युगल में 7 सागर की आयु वाले 7000 वर्ष में आहार एवं सात पक्ष में श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं।

सौधर्म इंद्र के सोम, यम लोकपालों तथा उनके सामानिक देवों की आयु 2-1/2 पल्य है। उनकी देवांगनाओं की आयु 1-1/2 पल्य प्रमाण है। अतः ये सोम आदि देव 12-1/2 दिन में आहार एवं 12-1/2 मुहूर्त में उच्छ्वास लेते हैं उनकी देवियाँ 6-1/2 दिन में आहार एवं 6-1/2 मुहूर्त में उच्छ्वास लेती हैं।

जो देव जितने सागर तक जीवित रहते हैं उतने ही हजार वर्षों में आहार ग्रहण करते हैं एवं पल्य प्रमाण रहने वाले देव 5 दिन में आहार ग्रहण करते हैं प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवों का आहार काल अपने-अपने इंद्रों के सदृश है।

देवों में जन्म-मरण का अंतर काल

सब इंद्र उनकी महादेवियाँ, लोकपाल और प्रतीन्द्र इनका उत्कृष्ट विरह काल छह मास का है अर्थात् एक इंद्र के मरने के बाद यदि उस स्थान पर दूसरा इंद्र उत्पन्न न होवे तो अधिक से अधिक छह मास तक स्थान खाली रह सकता है पुनः दूसरा इंद्र उस स्थान पर अवश्य ही जन्म ले लेता है।

त्रायस्त्रिंश देव, सामानिक, तनुरक्ष और तीनों पारिषद इनका उत्कृष्ट विरह काल 4 मास का है। अनीक आदि देवों का उत्कृष्ट विरह काल-सौधर्म में 6 मुहूर्त, ईशान में 4 मुहूर्त, सान. में 9-2/3 दिन, मा. में त्रिभाग सहित 12 दिन, ब्रह्म कल्प में 40 दिन, महाशुक्र में 80 दिन, सहस्रार में 100 दिन, आनतादि चार स्वर्गों में संख्यात 100 वर्ष प्रमाण है।

कल्पातीत में नवग्रैवेयकों में से प्रत्येक में उत्कृष्ट अंतर संख्यात हजार वर्ष है। नव अनुदिश और अनुत्तरों में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण अंतर है। जन्म-मरण का जघन्य अंतर सब जगह एक जगह मात्र है।

त्रिलोक सार में उत्कृष्ट अंतर की मान्यता में अंतर है।

सौधर्म ईशान में उत्कृष्ट अंतर 7 दिन, सानत्कुमार युगल में 15 दिन, ब्रह्मादि चार स्वर्गों में 1 मास, शुक्रादि चार स्वर्गों में 2 मास, आनतादि चार स्वर्गों में 4 मास, ग्रैवेयक आदि में 6 मास प्रमाण है। सभी इंद्र, इंद्रों की महादेवियाँ, लोकपाल इनका अंतर काल 6 महीना है एवं त्रायस्त्रिंश, अंगरक्षक, सामानिक, पारिषद देवों का अंतर काल 4 महीना प्रमाण है।

काय प्रवीचार का वर्णन

सौधर्म-ईशान स्वर्गों के देव, देवांगनाओं के साथ शरीर से काम सेवन करते हैं। सानत्कुमार युगल के देव, देवियों के स्पर्श से, ब्रह्म आदि चार स्वर्गों के देव देवियों के रूपावलोकन से, शुक्र आदि चार स्वर्गों के देव देवांगनाओं के गीतादि सुनकर, आनत आदि चार स्वर्गों के देव अपनी-अपनी देवांगनाओं के मन में स्मरण मात्र से तृप्त हो जाते हैं। इन देव देवियों का पारस्परिक दांपत्य प्रेम इसी प्रकार होता है। आगे ग्रैवेयक आदि में देवियाँ

ही नहीं हैं अतः वहाँ स्त्रीजन्य सुखों की बात ही नहीं है। वे अहमिन्द्र इन देवों की अपेक्षा अनन्त गुणा सुखी हैं।

देवों में लेश्यायें

सौधर्म ईशान स्वर्ग के देवों में मध्यम पीत लेश्या, सानत्कुमार युगल में उत्कृष्ट पीत लेश्या और जघन्य पद्म लेश्या, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र में देवों के मध्यम पद्मलेश्या है। शतार युगल में उत्कृष्ट पद्म एवं जघन्य शुक्ल लेश्या, आनतादि चार स्वर्गों में, नव ग्रैवेयकों में देवों के मध्यम शुक्ल लेश्या होती है, तथा नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर में विमानों के देवों में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।

देवों में अवधिज्ञान और विक्रिया शक्ति का प्रमाण

प्रथम दो स्वर्गों के देव घर्मा नामक पहली पृथ्वी तक विक्रिया करते हैं। सानत्कुमार युगल के देव दूसरी पृथ्वी तक, ब्रह्मादि चार स्वर्ग के देव तीसरी पृथ्वी तक, शुक्र आदि चार स्वर्गों के देव चार पृथ्वी तक, आनतादि चार स्वर्गों के देव पाँचवीं पृथ्वी तक, ग्रैवेयकवासी छठी पृथ्वी तक एवं अनुदिश अनुत्तर में रहने वाले देव सातवीं पृथ्वी तक विक्रिया करते हैं। ये सोलह स्वर्ग तक के देव ही विक्रिया से गमनागमन करते हैं अन्य अहमिन्द्र आदि अपने-अपने ग्रैवेयक आदि में ही रहते हैं। विक्रिया से अधिक से अधिक तीसरी पृथ्वी तक जाकर संबोधन कर सकते हैं। उससे नीचे नहीं जाते हैं।

इन देवों के अवधिदर्शन-अवधिज्ञान के विषय का भी यही प्रमाण है अर्थात् सौधर्म युगल के देव पहली पृथ्वी तक देखते जानते हैं इत्यादि। अनुत्तर विमानवासी देव मूर्तिक कर्मों के अनन्तवें भाग को कर्म सहित जीवों को तथा समस्त लोक नाली को भी देखते हैं। यह अधोदिशा में अवधिज्ञान का विषय हुआ है। अब ऊर्ध्व दिशा में अवधि को बताते हैं सौधर्म आदि देव अपने-अपने स्वर्ग के विमानों के ध्वज दण्ड पर्यन्त अवधि ज्ञान से देखते हैं उसके ऊपर नहीं देख सकते। काल की अपेक्षा सौधर्म युगल में देवों का अवधिज्ञान असंख्यात करोड़ वर्ष तक जानता है आगे-आगे अधिक होता जाता है।

महादेवियों की विक्रिया

सभी इंद्रों की महादेवी आठ-आठ हैं। इनमें से सौधर्म ईशान की ये प्रत्येक महादेवियाँ सोलह-सोलह हजार रूप बना सकती हैं।

सानत्कुमार युगल में प्रत्येक महादेवी 32 हजार रूपों की विक्रिया कर लेती हैं। ब्रह्म युगल में प्रत्येक महादेवी 64 हजार रूप बना लेती हैं।

लांतव युगल में प्रत्येक महादेवी 128000 रूप बना लेती है।

शुक्र युगल में प्रत्येक महादेवी 256000 रूपों की विक्रिया करती है।

शतार युगल में प्रत्येक महादेवी 512000 रूपों की विक्रिया करती है।

आनतादि चार में प्रत्येक महादेवी 1024000 विक्रिया कर लेती है।

महादेवियों की परिवार देवियाँ

सौधर्मद्विक में एक-एक महादेवी की परिवार देवियाँ सोलह-सोलह हजार हैं। सानत्कुमार माहेन्द्र में प्रत्येक महादेवी के 8-8 हजार परिवार देवियाँ हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर में प्रत्येक महादेवी के 4000 परिवार देवी हैं।

लांतव कापिष्ठ में प्रत्येक महादेवी के 2000 परिवार देवियाँ हैं।

शुक्र युगल में प्रत्येक महादेवी के 1000 परिवार देवियाँ हैं।

शतार युगल में प्रत्येक महादेवी के 500 परिवार देवियाँ हैं।

आनत आदि चार स्वर्ग में महादेवी के 250 परिवार देवियाँ हैं।

दक्षिण इंद्रों की महादेवियों के नाम

शची, पद्मा, शिवा, श्यामा, कालिन्दी, सुलसा अञ्जुका और भानु ये दक्षिण इंद्रों की पट्टदेवियों के नाम हैं।

उत्तर इंद्रों की महादेवियों के नाम

श्रीमती, रामा, सुसीमा, प्रभावती, जयसेना, सुषेणा, वसुमित्रा और वसुंधरा ये उत्तर इंद्रों की महादेवियाँ हैं।

इंद्रों की वल्लभिका देवियाँ

सौधर्मद्विक में वल्लभा देवियाँ	32000 हैं।
सानत्कुमारद्विक में वल्लभा देवियाँ	8000 हैं।

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर में वल्लभा देवियाँ	2000 हैं।
लांतव कापिष्ठ में वल्लभा देवियाँ	500 हैं।
शुक्र महाशुक्र में वल्लभा देवियाँ	250 हैं।
सतार सहस्रार में वल्लभा देवियाँ	125 हैं।
आनत आदि चार में वल्लभा देवियाँ	63 हैं।

सौधर्म ईशान इंद्र की परिवार देवियाँ, वल्लभा देवियाँ और महादेवियाँ, इनमें से प्रत्येक देवी 16000 विक्रिया करने में समर्थ है। इससे आगे आनत आदि तक दूने-दूने प्रमाण विक्रिया कर सकती हैं।

देवों में सम्यक्त्व के कारण

इन देवों में से कोई देव जातिस्मरण से, कोई उपदेश श्रवण से, कोई जिनमहिमा दर्शन से, कोई देवर्द्धि दर्शन से सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त कर लेते हैं। सोलह स्वर्ग तक ये चार कारण हैं। आगे नौ ग्रैवेयकों में देवर्द्धिदर्शन निमित्त नहीं है क्योंकि वहाँ के सभी देव अहमिन्द्र समान ऋद्धि वाले हैं। नव अनुदिश, पंचअनुत्तर में सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं।

देवगति में गमन के कारण

असंयत, देश संयत मनुष्य और तिर्यंच उत्कृष्टपने से अच्युत स्वर्ग पर्यंत जाते हैं। तिलोयपण्णत्ति में तिर्यंचों का गमन उत्कृष्ट से बारहवें स्वर्ग तक ही माना है।

द्रव्य से निर्ग्रंथ मुनि और भाव से असंयत, देश संयत या मिथ्यादृष्टि ऐसे साधु उपरिमग्रैवेयक तक जाते हैं। एवं भाव से सम्यग्दृष्टि महामुनि सवार्थसिद्धि पर्यंत जाते हैं।

भोग भूमिया सम्यग्दृष्टि मरकर सौधर्म ईशान स्वर्ग तक जाते हैं। भोगभूमिया मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक में जन्म लेते हैं। पंचाग्नि आदि तपने वाले कुतापसी अधिक से अधिक भवनत्रिक तक जाते हैं। चरक, एकदंडी, त्रिदण्डी, परिव्राजक, संन्यासी आदि अधिक रूप से ब्रह्म स्वर्ग तक जाते हैं। कांजिका-हारभोजी, आजीवक आदि अच्युत स्वर्ग पर्यंत जाते हैं।

देवों के आने के स्थान

ईशान कल्प तक के देवों का जन्म एकेन्द्रिय जीवों तक में हो सकता है। सहस्रार कल्प तक के देवों का मरकर मध्य लोक में जन्म संज्ञी तिर्यंच या मनुष्य में होता है। आनत आदि से ऊपर के देव कर्म भूमि मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं अन्यत्र नहीं। ये देव असैनी, अपर्याप्त, संमूर्च्छन, भोगभूमिज नहीं होते हैं प्रत्युत सैनी पर्याप्त, गर्भज, कर्म भूमिज ही होते हैं।

अनुदिश अनुत्तर विमानों से च्युत होकर बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण पद को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

मनुष्यगति, तिर्यंच गति या भवनत्रिक से आये हुये जीव त्रेसठ शलाका पुरुषों के पद को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण ये 63 महापुरुष शलाकापुरुष कहलाते हैं।

देवों की शक्ति का कथन

एक पल्य आयु वाला देव छह खंड पृथ्वी को उखाड़ने के लिये और उनमें स्थित मनुष्य, तिर्यंचों को मारने अथवा पोषने के लिए समर्थ है। सागरोपम आयु वाला देव जम्बूद्वीप को भी पलटने के लिये उनमें स्थित मनुष्य तिर्यंचों को मारने व पोषने के लिए समर्थ है। इस प्रकार से देवों की शक्ति का वर्णन किया है। ये देव कभी ऐसा कार्य करते नहीं हैं।

देवों में किनकी अधिकता और किनकी न्यूनता है?

तत्त्वार्थ सूत्र महाशास्त्र के अनुसार-''स्थिति प्रभावसुखद्युतिलेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः।।20।। गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः।।21।। अर्थात् आगे-आगे के स्वर्गों में आयु, प्रभाव, सुख, कांति, लेश्याओं की विशुद्धि इंद्रियों का विषय और अवधिज्ञान का विषय अधिक-अधिक होता है। तथा यत्र तत्र गमन, शरीर की ऊँचाई, परिग्रह और अभिमान आगे-आगे घटता जाता है।

कंदर्प किल्विषक आभियोग्य देवों की उत्पत्ति

जो यहाँ कंदर्प-काम, राग आदि परिणामों से सहित पुण्य संचय करते हैं। वे मनुष्य ईशान स्वर्ग पर्यंत कंदर्प जाति के देवों में ही उत्पन्न होते हैं, आगे

नहीं, जो यहाँ गीत, गान आदि को आजीविका – नृत्य आदि कार्य करते हैं वे किल्विष परिणाम से सहित जीव, शुभ कर्म संचय के साथ लांतव कल्प तक किल्विषक जाति के देवों में ही पैदा होते हैं आगे नहीं होते। जो यहाँ पाप क्रिया – पूज्यों के अपमान आदि में प्रवृत्त होते हैं वे आभियोग्य भावना से सहित जीव अच्युत कल्पपर्यंत आभियोग्य जाति के देवों में ही जन्म लेते हैं अन्यत्र नहीं। अपने-अपने स्वर्ग में जो जघन्य आयु होती है कंदर्प किल्विषक और आभियोग्य देव उस जघन्य आयु से सहित होते हैं।

घातायुष्क देवों की आयु

तत्त्वार्थ सूत्र में ''सौधर्मेशानयोः सागरोपमे अधिके''।।29।। सूत्र में सौधर्म ईशान स्वर्ग में दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु बताई गई है एवं 'अधिक' शब्द का संबंध बारहवें स्वर्ग तक करना चाहिये ऐसा कहा है। यह 'अधिक' का कथन 'घातायुष्क' की अपेक्षा से है। घात के दो भेद हैं- अपवर्तन घात, कदलीघात।

बध्यमान आयु का घटना 'अपवर्तन' है और उदीयमान – (भुज्य-मान) आयु का घटना 'कदलीघात' है। देवों में कदलीघात संभव ही नहीं है अतः बध्यमान आयु के घटाने से 'घातायुष्क' जीव होते हैं। किसी जीव ने मनुष्य में देवायु का बंध कर लिया है यदि वह मिथ्यादृष्टि हो गया है तो आयु घटाकर भवनत्रिक में चला जायेगा और यदि सम्यग्दृष्टि है तो किसी निमित्त से परिणामों की विशुद्धि घट जाने से वह आयु को घटाकर भी नीचे के स्वर्गों में जन्म लेता है और वहाँ की उत्कृष्ट स्थिति में कुछ स्थिति बढ़ाकर जन्म लेता है। जैसे ऊपर के स्वर्ग की सात सागर की आयु बांधी थी तो वह सम्यग्दृष्टि, घातायुष्क होता हुआ पहले दूसरे स्वर्ग में कुछ अधिक 2 सागर की आयु को प्राप्त कर लेगा। यहाँ कुछ अधिक से अर्ध सागर ग्रहण करना चाहिए।

सौधर्म युगल में घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु	2-1/2 सागर
सानत्कुमार माहेन्द्र में घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु	7-1/2 सागर
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर में घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु	10-1/2 सागर
लांतव कापिष्ठ में घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु	14-1/2 सागर
शुक्र महाशुक्र में घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु	16-1/2 सागर

शतार सहस्रार में घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु 18-1/2 सागर प्रमाण है।

इससे आगे घातायुष्क जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सभी देवगण सागरोपम आयु तक अपरिमित सुखों को भोगते हैं।

उर्ध्व लोक के चैत्यालय

इस उर्ध्व लोक में जितने वैमानिक देवों के विमान हैं। उनमें एक-एक मंदिर होने से उतने ही जिन मंदिर हैं। यथा–

सौधर्म स्वर्ग के	3200000	आनत, प्राणत, स्वर्ग के	
ईशान स्वर्ग के	2800000	आरण, अच्युत स्वर्ग के	700
सानत्कुमार स्वर्ग के	1200000	अधस्तन तीन ग्रै. स्वर्ग के	111
माहेन्द्र स्वर्ग के	800000	मध्यम तीन ग्रै. स्वर्ग के	107
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के	400000	उपरिम तीन ग्रै. स्वर्ग के	91
लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग के	50000	नव अनुदिश स्वर्ग के	9
शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग के	40000	पंच अनुत्तर स्वर्ग के	5
सतार, सहस्रार स्वर्ग के	6000		

3200000+2800000+1200000+800000+400000+50000+40000+6000+700+111+107+91+9+5=8497023 होते हैं।

इन चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस जिन चैत्यालयों को मेरा मन वचन काय पूर्वक बारम्बार नमस्कार होवे।

सिद्ध लोक और सिद्ध शिला

सर्वार्थसिद्धि नामक इंद्रक के ध्वज से 12 योजन मात्र ऊपर जाकर 'ईषत्प्राग्भार' नाम की आठवीं पृथ्वी स्थित है। तीन भुवन के मस्तक पर स्थित इस पृथ्वी की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई 1 राजु है, उत्तर-दक्षिण लम्बाई 7 राजु है एवं मोटाई आठ योजन मात्र है। अतः यह पृथ्वी लोक के अंत तक आठ योजन मोटी है। इस पृथ्वी के ऊपर तीन वातवलय हैं जो कुछ कम एक योजन मात्र हैं। घनोदधि वातवलय 2 कोस घनवात वलय 1 कोस, तनु वातवलय 425 धनुष कम 1 कोस है। एक कोश 2000 धनुष का है।

इस आठवीं पृथ्वी के मध्य में रजतमयी, अर्धचन्द्र के आकार वाला

मनुष्य क्षेत्र समान, गोल, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत 'सिद्ध क्षेत्र' है। इस क्षेत्र के मध्य की मोटाई आठ योजन है एवं क्रम से घटते-घटते अंत में 1 अंगुल मात्र है। अर्थात् यह सिद्ध शिला उपरिम भाग में तो समान रूप है और नीचे हानि वृद्धि रूप है। त्रिलोकसार में इस सिद्ध शिला को उत्तान चषक मिव[1] – सीधे रखे हुए कटोरे सदृश कहा है। यह शिला 4500000 योजन विस्तृत है और इसकी परिधि 14230249 योजन प्रमाण है।

सभी सिद्ध भगवान सिद्ध क्षेत्र के उपरिम भाग – तनु वात के चतुर्थ भाग में विराजमान हैं, अंतिम शरीर के प्रमाण से किंचित् न्यून आत्मप्रदेश वाले हैं।

तनुवातवलय 425 धनुष कम एक कोश का है। एक कोश में 2000 धनुष होते हैं। अतः तनुवातवलय में– 2000 – 425=1575 धनुष। तनुवातवलय के कोस प्रमाणांगुल की अपेक्षा से है और सिद्धों की अवगाहना व्यवहारांगुल की अपेक्षा से है। इसलिये 1575 को 500 से गुणा करके व्यवहार धनुष बना लीजिये 1575×500=787500 तनुवात की मोटाई को पाँच सौ से गुणा करके 1500 का भाग देने पर सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है। जैसे– 1575×500÷1500=525 धनुष एवं 900000 का भाग देने पर जघन्य अवगाहना होती है। 1575×500 ÷900000=7/8 धनुष=3/1/2 हाथ। इसमें सिद्धों की जघन्य अवगाहना सात धनुष के आठवें भाग है। धनुष के 4 हाथ होते हैं अतः 7×4=28; 28÷8=3-1/2। सिद्धों की जघन्य अवगाहना 3-1/2 हाथ है एवं उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष हैं[2]।

अथवा सरलता से समझने के लिए दूसरी विधि यह है–

घनोदधि वातवलय	4000 धनुष
घनवात वलय	2000 धनुष
तनुवातवलय	1575 धनुष।

ये महाधनुष का प्रमाण है। इन सभी को 500 से गुणा करके लघु धनुष बनाइये-4000+2000+1575=7575 को 500 से गुणा-7575×5=3787500 लघु धनुष हुए।

इनमें सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना 525 को घटाइये। तब 3787500-

1. उत्तानस्थितपात्रमिव चषकमिवत्यर्थः। 2. त्रिलोकसार गाथा 141-142 (त्रिलोकसार गाथा 558 की टीका का अंश।

525=3786975 हुआ।

उत्कृष्ट 525 धनुष की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान—सिद्धशिला से सैंतीस लाख, छ्यासी लाख नव सौ पचहत्तर लघु धनुष ऊपर जाकर उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं, जैसे कि इस युग के प्रारंभ में उत्कृष्ट अवगाहना वाले श्री बाहुबली भगवान हैं।

लघु साढ़े 3 हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान—एक धनुष में चार हाथ होते हैं। अतः 3787499 लघु धनुष व अर्द्ध हाथ ऊपर जाकर साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं।

मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध भगवान—साढ़े तीन हाथ से ऊपर व 525 धनुष से नीचे की सभी अवगाहना वाले सिद्ध मध्यम अवगाहना वाले हैं। जैसे कि भगवान महावीर स्वामी 7 हाथ की अवगाहना वाले हैं अतः वे सिद्धशिला से 3787498 धनुष एक हाथ ऊपर जाकर सात हाथ की अवगाहना से विराजमान हैं।

सभी सिद्ध भगवन्तों के मस्तक तनुवातवलय के अंत से स्पर्शित हैं।

भगवान ऋषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ ये तीन तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष गये हैं और शेष इक्कीस तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये हैं।[1]

वे सिद्ध जीव जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहीं तक जाकर स्थित हो गये हैं आगे नहीं जाते हैं। एक जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना से सहित अनंत सिद्ध होते हैं। मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनुवात के उपरिम भाग में सब सिद्धों के मस्तक सदृश होते हैं अधस्तन भाग में कोई विसदृश होते हैं। जितना मार्ग मध्यलोक के ऊपर जाने योग्य है उतना जाकर लोक शिखर पर सब सिद्ध पृथक् पृथक् मोम से रहित मूषक के अभ्यंतर आकाश के सदृश हो जाते हैं। ये सिद्ध भगवान आठ कर्मों से छूटकर सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान आदि अनंतगुणों के सागर स्वरूप, अरूपी, अशरीरी, नित्य, निरंजन, कृतकृत्य होकर एक ही समय में युगपत् तीनलोक, तीनकालवर्ती समस्त पदार्थों को जान लेते हैं और अनंत सुख सागर में सदा के लिये निमग्न हो जाते हैं। असंख्यों कल्प कालों के बीत जाने पर भी वे

1. हरिवंशपुराण पृ. 726।

वापस संसार में नहीं आते हैं। संसार के संपूर्ण दुःखों से छूटकर आत्मीक अनंत शिव सौख्य का अनुभव करते हैं।

लोक में एक शास्त्र या संपूर्ण शास्त्र को अच्छी तरह से जान लेने पर मनुष्य को बहुत ही संतोष सुख–आनंद उत्पन्न होता है। पुनः सम्पूर्ण लोकालोक को जानने वालों को कितना सुख होगा इसका अनुमान करना भी अशक्य है। जिन्हें वह ज्ञान और सुख प्राप्त हुआ है वे ही उस आनंद का अनुभव कर सकते हैं। अन्य जन नहीं कर सकते। त्रिलोकसार में कहा है कि-

चक्किकुरुफणिसुरिदे सहमिन्दे जं सुहं तिकालभवं।
तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि।।560।।

अर्थ—चक्रवर्ती के सुख से भोग भूमियों का सुख अनंतगुणा है भोग-भूमियों से धरणेन्द्र का सुख अनंतगुणा है उससे देवेन्द्र का सुख अनंतगुणा है। उससे अहमिन्द्रों का सुख अनंतगुणा है। इन सभी के अनंतानंत गुणित अतीत, अनागत और वर्तमान काल संबंधी सम्पूर्ण सुखों को एकत्रित करिये उसकी अपेक्षा भी अनंतगुणा अधिक सुख सिद्धों को एक क्षण मात्र में उत्पन्न होता है यह तो केवल उदाहरण मात्र है संसारी सभी जीवों का सुख आकुलता सहित है और सिद्धों का सुख निराकुल है इसलिये सिद्धों का सुख वचन के अगोचर है।

संसार में कोई-कोई भव्य जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र रूप रत्नत्रय के बल से कर्मों का नाश करके स्वयं ही अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। उसी का नाम सिद्धावस्था है ''सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः'' के अनुसार अपने आत्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही सिद्धि है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी अनंतानंत प्रमाण हैं वर्तमान में भी विदेह आदि से कितने ही भव्य जो रत्नत्रय रूप पुरुषार्थ के बल से अपने अनंत गुणों को और शाश्वत सौख्य, पूर्ण ज्ञान को प्रकट करेंगे। उन अतीताना गत वर्तमान कालीन सम्पूर्ण सिद्धों को सिद्ध भक्तिपूर्वक मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

सिद्धांस्त्रैलोक्यमूर्धस्थान्, अकृतानि कृतानि च।
जिनचैत्यानि लोकेऽस्मिन् वंदे सर्वाणि सिद्धये।।

।।समाप्तोऽयं ग्रंथ।।

जम्बूद्वीप के चार्ट

पर्वत और क्षेत्रों के नाम	विस्तार (दक्षिण उत्तर)	लम्बाई पूर्व पश्चिम	(जघन्य) लम्बाई (उत्कृष्ट	ऊँचाई
क्षेत्र-भरत क्षेत्र	$526\frac{6}{19}$	×	$14471\frac{5}{19}$	
पर्वत-हिमवान्	$1052\frac{12}{19}$	$14471\frac{5}{19}$	$24931\frac{18}{19}$	100
क्षेत्र-हेमवत	$2105\frac{5}{19}$	$24931\frac{18}{19}$	$376741\frac{6}{19}$	
पर्वत-महाहिमवान्	$4210\frac{10}{19}$	$37974\frac{16}{19}$	$53931\frac{6}{19}$	200
क्षेत्र-हरि	$8421\frac{1}{19}$	$53931\frac{6}{19}$	$73901\frac{17}{19}$	
पर्वत-निषध	$16842\frac{2}{19}$	$73901\frac{17}{19}$	$94156\frac{2}{19}$	400
क्षेत्र-विदेह	$33684\frac{4}{19}$	$94156\frac{9}{19}$	मध्य में उत्कृष्ट 100000 योजन	
पर्वत-नील	$16842\frac{2}{19}$	$73901\frac{17}{19}$	$94156\frac{2}{19}$	400
क्षेत्र-रम्यक	$8421\frac{1}{19}$	$53931\frac{6}{19}$	$73901\frac{17}{19}$	
पर्वत-रुक्मि	$4210\frac{10}{19}$	$37974\frac{16}{19}$	$53931\frac{6}{19}$	200
क्षेत्र-हैरण्यवत	$2105\frac{5}{19}$	$24931\frac{18}{19}$	$37674\frac{16}{19}$	
पर्वत-शिखरी	$1052\frac{12}{19}$	$14471\frac{5}{19}$	$24931\frac{18}{19}$	100
क्षेत्र-ऐरावत	$526\frac{6}{19}$		$14471\frac{5}{19}$	

(क) पर्वत और क्षेत्र

वर्ण	पर्वत की नींव	कूट	ऊँचाई	चौड़ाई
सुवर्णमय	25 यो.	11	25 यो.	मूल में 25, मध्य में $18\frac{3}{4}$ अंत में $12\frac{1}{2}$
रजतमय	50 यो.	8	50 यो.	मूल में 50, मध्य में $37\frac{1}{2}$ अंत में 25
तप्तसुवर्ण	100 यो.	9	100 यो.	मूल में 100, मध्य में 75, अतं में 50
वैडूर्य मणि	100 यो.	9	100 यो.	मूल में 100, मध्य में 75, अतं में 50
रजत	50 यो.	8	50 यो.	मूल में 50, मध्य में $37\frac{1}{2}$ अंत में 52
हेममय	25 यो.	11	25 यो.	मूल में 25, मध्य में $18\frac{3}{4}$ अंत में $12\frac{1}{2}$

जम्बूद्वीप के (चार्ट)

पर्वत और क्षेत्र	विस्तार (दक्षिण उत्तर)	(जघन्य) लम्बाई पूर्व पश्चिम	लम्बाई (उत्कृष्ट)	ऊँचाई
पर्वत-विजयार्ध	50	9748 12/19	10720 11/19	25
क्षेत्र-दक्षिण भरत	238 3/19	×	9748 12/19	
क्षेत्र-उत्तर भरत	238 3/19	10720 11/19	14471 4/19	
ऐसे ही ऐरावत का विजयार्ध और दक्षिण उत्तर ऐरावत का प्रमाण है।				
पर्वत-विजयार्ध	50	9748 13/19	10720 11/19	25
क्षेत्र-दक्षिण ऐरावत	238 3/19	10720 11/16	14471 5/19	
क्षेत्र-उत्तर ऐरावत	238 3/19	×	9748 12/19	

संख्या	नाम	विस्तार		लम्बाई	ऊँचाई
16	वक्षार पर्वत	500	×	16512 2/19	निष.नी. के पास 400 नदी के पास 500
32	विदेह क्षेत्र	2212 7/8	×	16512 2/19	×
4	गजदंत	500	×	30209 6/19	निष.नी. के पास 400 सुमेरु, के पास 500
32	विदेह के विजयार्ध	50	×	2212 6/19	25
4	यमकगिरि	मूल में 1000 मध्य में 750 अंत में 500 यो. गोल हैं।	ये पर्वत गोल हैं		2000 यो.
8	दिग्गज पर्वत	ये पर्वत गोल हैं	मू.में 100.म.में 75 अतं में 50 यो.		100 यो.
200	कांचन गिरि	कांचन पर्वत गोल हैं	मू.में विस्तार 100 म.में 75 अं.में 50		100 यो. 100 यो.
4	नाभि गिरि	मू.1000 यो.म. 750 अतं में 500 यो. गोल हैं।			1000 यो.
34	वृषभगिरि	मू.1000 यो. म. 75 अंत में 50 यो. गोल हैं।			100 यो.

(ख) पर्वत और क्षेत्र

वर्ण	पर्वत की नींव	कूट	लम्बाई	चौड़ाई
चाँदी का	6-1/2	9	6-1/4	मू.6-1/4 मध्य में 4 यो. 11/4 कोस, अंत में 3 यो. 1/2 कोस।
चाँदी	6-1/4	9	6-1/4	मू.में 6-1/4, मध्य 4 यो. 11/4, कोस, अंत में 3 यो. 1/2 कोस

वर्ण	नींव	कूट	ऊँचाई	चौड़ाई
सुवर्णमय	100 सर्वत्र 125 चतुर्थ भाग	सभी पर 4-4	नि.नी. के पास 100 यो.सी. सी.के 125 यो.	
सौ. रजत, विद्यु.स्व.	100 सर्वत्र	गंध.सौ.7	सु.के पास 125	मू.में 6-1/4 मध्य 4
गंध, स्व.माल्य वैंडूर्य	125 चतुर्थ	वि.मा. 9 भाग	यो. निष.नी. के	यो. 11/4 कोस, पास 100 यो.
अंत में 3 यो.			म.में यथायोग्य	1/2 कोस
चाँदी के	6-1/6 योजन	सभी पर 9-9	6-1/4	
स्वर्णमय	25 योजन			
श्वेत	25 योजन			
~~विचित्र रत्नमय~~				

जम्बूद्वीप के

नदियों के नाम	उद्गम स्थान	उद्गम का प्रमाण	प्रवेश	गहराई उद्गम में	गहराई प्रवेश में	उद्गम तोरण
गंगा सिंधु	पद्म सरोवर से	6-1/4	62-1/2	1/2 कोस	5 को.	9-3/8
रोहित रोहितास्या	महापद्म से रोहित पद्म में रोहित	12-1/2	125	1 कोस	10 को.	18/-9/8
हरित् हरिकांता	तिगिंच्छ से हरित् महापद्म से हरिकांता	25	250	2 कोस	20 को.	37-4/8
सीता सीतोदा	केसरी से सीता तिगिंच्छ से सीतोदा	50	500	4 कोस	40 को.	76 यो.
नारी-नरकांता	पुंडरीक से-नारी केसरी से नरकांता	25	250	2 कोस	20 को.	37-4/8
सुवर्ण रूप्यकूला	महापुंडरीक से सुवर्ण पुंडरीक से रूप्यकूला	12-1/2	125	1कोस	10 को.	18-9/8
रक्ता रक्तोदा	महापुंडरीक से रक्ता रक्तोदा	6-1/4	62-1/2	1/2 कोस	5 को.	9-3/8
विभंगा नदी 12 हैं	नील, निषध की तलहटी के कुण्ड	12-1/2	125	1 कोस	10 को.	18-6/8
गंगा सिंधु 16 विदेह की	नील की तलहटी के कुण्ड से	6-1/4	62-1/2	1/2 कोस	5 को.	9-3/8
रक्ता रक्तोदा 16 विदेह की	निषध की तलहटी के कुण्ड से	6-1/4	62-1/2	1/2 कोस	5 को.	9-1/8

इन सभी नदियों के दोनों तरफ वेदी और 1/2 योजन के उपवन खंड हैं। जिनमें देवप्रसाद, वापिक, जल यंत्र आदि विद्यमान हैं।

(क) नदियाँ

प्रवेशतोरण	परिवार नदियाँ	गिरने के कुण्ड	विजयार्ध गुफा में प्रवेश के समय	किस क्षेत्र में हैं	जलधारा की मोटाई
93-3/4	14000×2=28000	60 यो.	8 यो.	भरत	25 यो.
187-1/2	28000×2=56000	120	नाभिगिरि को 1/2 यो. छोड़कर मुड़ जाती	हैमवत	50
375	56000×2=112000	240	नाभिगिरि को 1/2 यो. छोड़कर	हरि	100
750	84000×2=168000	480	सुमेरु को अर्ध यो. छोड़कर सीतोदा विद्युत्प्रभ की गुफा में सीता माल्यवान की	विदेह	200
375	56000×2=112000	240	नाभि.को 1/2 यो. छोड़कर	रम्यक	100
187-1/2	28000×2=56000	120	नाभि.को 1/2 योजन छोड़कर	हैरण्यवत	50
93-3/4	14000×2=28000	60	विजयार्ध की गुफा से 8 योजन	ऐरावत	25
187-1/2	28000×12=336000	+	विदेह में	पूर्व-पश्चिम विदेह में	
93-3/4	14000×2=28000 प्रत्येक की 28000×16 =448000	+	विदेह में विजयार्ध की गुफा से 8 यो.	कच्छा आदि 16 देशों में	
93-3/4	14000×2=28000 सभी की 28000×16 =448000	+	विदेह में विजयार्ध की गुफा से 8 यो.	मंगलावती आदि 16 देशों में	

ये वेदिकायें अनेक तोरण द्वार जिन प्रतिमाओं से सुशोभित हैं।

छब्बीस सरोवर

नाम	कहाँ हैं?	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	मुख्य कमल	जल से ऊँचाई
पद्म	हिमवान पर	1000	500	10	1 यो.	1/2 यो.
महापद्म	महाहिमवान पर	2000	1000	20	2 यो.	1 यो.
तिगिंच्छ	निषध पर	4000	2000	40	4 यो.	2 यो.
केसरी	नील पर	4000	2000	40	4 यो.	2 यो.
पुण्डरीक	रूक्मि पर	2000	1000	20	2 यो.	1 यो.
महापुण्डरीक	शिखरी पर	1000	500	10	1 यो.	1/2 यो.

नदी के मध्य	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	मुख्य कमल	जल से ऊँचा
सीता के सरोवर 10	1000	500 या नदी की चौ. प्रमाण	10	1 को.	1/2
सीतोदा के सरोवर 10	1000	नदी की चौ. प्रमाण	10	1 को.	1/2
सीता के मध्य 10	1000	नदी की चौ. प्रमाण	10	1 को.	1/2
सीतोदा के मध्य 10	1000	नदी की चौ. प्रमाण	10	1 को.	1/2

इन सब सरोवरों के चारों तरफ वेदिका है और 1/2 योजन चौड़े वन खण्ड हैं।

(ख) सरोवर

मुख्य पर निवास	परिवार कमल	परिवार देव आदि	मुख्य देवी का भवन	परिवार कमलों का विस्तारादि
श्रीदेवी	140115+1 मुख्य कमल	श्रीदेवी के इतने ही	1 को. लं., 3/4 को. ऊँचा 1/2 को. चौड़ा	मुख्य कमल से अर्ध हैं
ह्रीदेवी	180230+1	ह्री "	2 को. लं. 1-1/2 को. ऊँचा 1 को. चौड़ा	"
धृति	560470+1	धृति "	4 को.लं. 3 को. ऊँचा 2 को. चौड़ा	"
कीर्ति	560460+1	कीर्ति "	4 को.लं. 3 को. ऊँचा 2 को. चौड़ा	"
बुद्धि	280230+1	बुद्धि "	2 को.लं. 1-1/2 को. ऊँचा 1 को. चौड़ा	"
लक्ष्मी	140115+1	लक्ष्मी "	1 को.लं. 1-3/4 को. ऊँचा 1/2 को. चौड़ा	"

मुख्य पर निवास	परिवार कमल	परिवार देवादि
नाग कुमार देव या नागकुमारी	140115	नाग कु. के उतने ही
"	"	"
"	"	"
"	140115	"

इन सभी कमलों में जिन भवन हैं। ये सब कमल पृथ्वी कायिक हैं।

स्वर्गों का विशेष विवरण

1	2	3	4	5	6	7
नाम	नगर वि.चौ.यो.	प्राकार ऊँचाई	नींव	चौड़ाई	प्र.दिशा के गो.द्वारो की सं.	ऊँचाई, गो.यो.
सौधर्म इंद्र	84000	300	50	50	400	400 यो.
ईशान	8000	300	50	50	400	400 यो.
सानत्कुमार	72000	250	25	25	300	300 यो.
माहेन्द्र	70000	250	25	25	300	300 यो.
ब्रह्म	60000	200	12-1/2	12-1/2	200	200 यो.
लांतव	50000	150	6-1/4	6-1/4	160	160 यो.
महाशुक्र	40000	120	4	4	140	140 यो.
सहस्रार	30000	100	3	3	120	120 यो.
आनतादि 4	20000	80	2-1/2	2-1/2	100	100 यो.

(1) में इंद्रों के नाम हैं।

(2) में उनके नगरों का लंबा-चौड़ा विस्तार है।

(3) में उस इंद्र नगर के परकोटे की ऊँचाई है।

(4) में परकोटे की नींव है।

(5) में परकोटे की चौड़ाई है।

(6) में परकोटे के एक-एक दिशा के गोपुरों की संख्या है।

(7) में गोपुरों की ऊँचाई योजन प्रमाण से है।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	8	9	10	11	12	13
नाम	विस्तार गो.यो.	इंद्र भवन	ऊँचाई	विस्तार	प्र.दिशा के नींव	देवियाँ
सौधर्म इंद्र	100 यो.	1	600 यो.	150	75	16000 0
ईशान	100 यो.	1	600 यो.	150	75	160000
सानत्कुमार	90 यो.	1	500 यो.	100	50	72000
माहेन्द्र	90 यो.	1	500 यो.	100	50	72000
ब्रह्म	90 यो.	1	450 यो.	90	45	34000
लांतव	70 यो.	1	400 यो.	80	40	16000
महाशुक्र	50 यो.	1	350 यो.	70	35	8250
सहस्रार	40 यो.	1	300 यो.	60	30	4125
आनतादि 4	30 यो.	1	250 यो.	50	25	प्रत्येक के 2063

(8) में गोपुरों का विस्तार योजन से बताया है।

(9) में इन नगरों के मध्य में इंद्रों के भवन हैं।

(10) में इंद्र भवनों की ऊँचाई योजन से है।

(11) में इंद्र महल का विस्तार है।

(12) में भवन की नींव प्रमाण है।

(13) में इंद्रों की देवियों की संख्या है।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	14	15	16	17	18	19	20	21
नाम	अग्रदेवी	सभा	ऊँचाई	लंबाई	चौड़ाई	सभाद्वार	ऊँचाई	चौड़ाई
सौधर्म इंद्र	8	सुधर्मा	3000 कोस	400 कोस	200 कोस	सभा के तीन हैं	64 कोस	32 कोस
ईशान	8					"		
सानत्कुमार	8					"		
माहेन्द्र	8					"		
ब्रह्म	8					"		
लांतव	8					"		
महाशुक्र	8					"		
सहस्रार	8 प्रत्येक					"		
आनतादि	4					"		

(14) में महादेवियों की संख्या है।

(15) में सौधर्म इंद्र की सुधर्मा सभा है ऐसे ही सभी इंद्रों के सभा गृह हैं। उनका प्रमाण मालूम नहीं है।

(16) में सभाभवन की ऊँचाई कोसों से है।

(17) में सभा की लम्बाई है।

(18) में सभा भवन की चौड़ाई है।

(19) में सभाभवन के पूर्व, उत्तर, दक्षिण, तीन द्वार हैं।

(20) में सभाभवन द्वारों की ऊँचाई कोसों से है।

(21) में सभा भवन की चौड़ाई कोसों से है।

विशेष- इन इंद्र नगर, इंद्र भवन, प्राकार, सभा, देवी भवन, वनखंड, लोकपाल नगर, भवन, गणिका नगर, भवन, मानस्तंभ, चैत्यवृक्ष आदि सब में जिन भवन व जिन प्रतिमाएँ हैं उनको मेरा नमस्कार हो।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	22	23	24	25	26	27	28
नाम	देवी भवन की ऊँचाई	चौड़ाई	लम्बाई	वनखंड	लंबे	चौड़े	लोकपाल के नगर
सौधर्म इंद्र	500 यो.	50	100	चार दिशा सम्बन्धी	100 यो. 4	500	दिशा संबंधी 4
ईशान	500 यो.	50	100	"	"	"	4
सानत्कुमार	450 यो.	45	90	"	"	"	+
माहेन्द्र	450 यो.	45	90	"	"	"	
ब्रह्म	400 यो.	40	80	"	"	"	
लांतव	350 यो.	35	70	"	"	"	
महाशुक्र	300 यो.	30	60	"	"	"	
सहस्रार	250 यो.	25	50	"	"	"	
आनतादि	200 यो.	20	40	"	"	"	

(22) में इंद्र भवन के चारों तरफ देवियों के भवन हैं उनकी ऊँचाई योजन से है।

(23) में देवी भवनों की चौड़ाई योजन से है।

(24) में देवी भवनों की लंबाई योजन से है।

(25) में इंद्र नगर के बाहर 5 परकोटे हैं उनसे दूर चारों दिशाओं में 4 वन खण्ड हैं।

(26) में वनखण्डों की लम्बाई योजन से है।

(27) में वनखण्डों की चौड़ाई योजन से है।

(28) इंद्र नगर के चारों दिशाओं में लोकपालों के नगर हैं।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	29	30	31	32	33	34
नाम	लंबे लोकपाल	चौड़े के नगर	विदिशा में गणिका के नगर	लंबे प्रासाद	चौड़े प्रासाद	यान वि. नाम
सौधर्म इंद्र	12000 यो.	5000 यो.	समचतुष्क 100000	100 यो.	50 यो.	बालुक
ईशान	''	''	100000			पुष्पक
सानत्कुमार	''	''	''			सौमनस
माहेन्द्र	''	''	''			श्रीवृक्ष
ब्रह्म	''	''	''			सर्वतोभद्र
लांतव	''	''	''			प्रीतिंकर
महाशुक्र	''	''	''			रम्यक
सहस्रार	''	''	''			मनोहर
आनतादि	''	''	''			अर्चिमाली विमल

(29) लोकपाल के नगरों की लम्बाई योजन से है।

(30) लोकपाल के नगरों की चौड़ाई योजन से है।

(31) इंद्रनगर की विदिशा में गणिका महत्तरियों के नगर हैं वे चौकोन हैं।

(32) गणिका के भवन की लम्बाई योजन से है।

(33) गणिका के महल की चौड़ाई योजन से है।

(34) प्रत्येक इंद्रों के यान-विमान के नाम हैं।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	35	36	37	38	39	40	41
नाम यान विमान	लंबे	चौड़े	मानस्तंभ ऊँचे	चौड़े मोटे	करंडक विस्तार	लंबे	न्यग्रोध वृक्ष
सौधर्म इंद्र	100000	100000	36	1	500 ध.	1 कोस	1
ईशान	''		36	1	500 ध.	1 कोस	1
सानत्कुमार	×		36	1	500 ध.	1 कोस	1
माहेन्द्र			36	1	500 ध.	1 कोस	1
ब्रह्म			×	×			1
लांतव			×	×			1
महाशुक्र			×	×			1
सहस्रार			×	×			1
आनतादि			×	×			1

(35) में यान-विमानों की लम्बाई है।

(36) में यान-विमानों की चौड़ाई है।

(37) इंद्र के भवन के आगे तीर्थंकरों के आभरण वाले मानस्तंभ हैं उनकी ऊँचाई है।

(38) में मानस्तंभों की चौड़ाई सब योजनों से है।

(39) उसमें लटकने वाले पिटारों का विस्तार धनुष प्रमाण से है।

(40) पिटारों की लम्बाई कोस से है। इसमें तीर्थंकरों के योग्य वस्त्रादि हैं।

(41) में इंद्र भवनों के आगे-1-1 न्यग्रोध वृक्ष-चैत्य वृक्ष हैं, जम्बू वृक्ष के समान हैं।

सोलह स्वर्गों का विशेष विवरण

नाम	इंद्रक	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक	विमान तल बाहल्य	विमानवर्ण	विमानाधार	उत्कृष्ट आयु प्रवीचार	बद्धायुष्क	घातायुष्क	उत्कृष्ट विरहकाल	अवधि क्षेत्र
1.सौधर्म	31	4371	3195598	1121यो.	पाँचोंवर्ण	घन उदक	काय प्रवी.	2 सा.	2-1/2 सा.	7 दिन	प्र.पृथ्वी
2. ईशान	×	1457	2798543	1121यो.	पाँचोंवर्ण	घन उदक	काय प्रवी.	2 सा.	2-1/2 सा.	7 दिन	प्र.पृथ्वी
3. सानत्कुमार	7	588	1199405	1022 यो.	कृ.से.र.4	वात	स्पर्श प्रवी.	7 सा.	7-1/2 सा.	1 पक्ष	द्वि.पृथ्वी
4. माहेन्द्र	×	196	799804	1022 यो.	कृ.से.र.4	वात	स्पर्श प्रवी.	7 सा.	7-1/2 सा.	1 पक्ष	द्वि.पृथ्वी
5. ब्रह्म	4	360	399636	923 यो.	कृ.नी.र.3	जल-वात	रूप प्रवी.	10 सा.	10-1/2सा.	1 मास	तृ.पृथ्वी
6. लांतव	2	156	49842	824 यो.	कृ.नी.र.3	जल-वात	रूप प्रवी.	14 सा.	14-1/2सा.	1 मास	तृ.पृथ्वी
7. महाशुक्र	1	72	39927	725 यो.	पीत-शुक्ल	जल-वात	शब्द प्रवी.	16 सा.	16-1/2सा.	2 मास	तृ.पृथ्वी
8. सहस्रार	1	68	5931	626 यो.	पीत-शुक्ल	जल-वात	शब्द प्रवी.	18 सा.	18-1/2सा.	2 मास	च.पृथ्वी
9. आनत						शुद्ध आ.	मनःप्रवी.	20 सा.	×	4 मास	पं. पृथ्वी
10. प्राणत	6	324	370	527 यो.	शुक्ल	शुद्ध आ.	मनःप्रवी.	20 सा.	×	4 मास	पं. पृथ्वी
11. आरण						शुद्ध आ.	मनःप्रवी.	22 सा.	×	4 मास	पं. पृथ्वी
12. अच्युत						शुद्ध आ.	मनःप्रवी.	22 सा.	×	4 मास	पं. पृथ्वी

बारह इंद्र

इंद्र नाम	प्रतीन्द्र	सामानिक	त्रायस्त्रिंश	लोकपाल	अभ्यन्तर तनुरक्ष	अभ्यन्तर पारिषद	मध्यम पारिषद	बाह्य पारिषद	सप्तानीक	आभि-किल्विषक प्रकीर्णक	आभि-किल्विषक योग्य		मुकुट देवियाँ	मुकुट चिन्ह
1.सौधर्म	1	84 है	33	4	336000	12000	14 है	16 है	74676000	असं.	असं.	असं.	160008	शुकर
2. ईशान	1	80	33	4	320000	10000	12 है	14 है	71120000	असं.	असं.	असं.	160008	हरिण
3. सानत्कुमार	1	72	33	4	288000	8000	10 है	12 है	64008000	असं.	असं.	असं.	72008	महिष
4. माहेन्द्र	1	70	33	4	280000	6000	8 है	10 है	62230000	असं.	असं.	असं.	72008	मत्स्य
5. ब्रह्म	1	60	33	4	240000	4000	6 है	8 है	53340000	असं.	असं.	असं.	72008	मेंढक
6. लांतव	1	50	33	4	200000	2000	4 है	6 है	44450000	असं.	असं.	असं.	72008	सर्प
7. महाशुक्र	1	40	33	4	160000	1000	2 है	4 है	35560000	असं.	असं.	असं.	72008	छगल
8. सहस्रार	1	30	33	4	120000	500	1 है	2 है	26670000	असं.	असं.	असं.	72008	वृषभ
9. आनत	1	20	33	4	80000	250	500 है	1 है	17780000	असं.	असं.	असं.	72008	कल्पतरु
10. प्राणत	1	20	33	4	80000	250	500 है	1 है	17780000	असं.	असं.	असं.	72008	कल्पतरु
11. आरण	1	20	33	4	80000	125	500 है	1 है	17780000	असं.	असं.	असं.	72008	कल्पतरु
12. अच्युत	1	20	33	4	80000	125	500 है	1 है	17780000	असं.	असं.	असं.	72008	कल्पतरु

ग्यारह कल्पातीत

नाम	इंद्रक	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक	विमानतल बाहल्य	उत्कृष्ट आयु	उत्कृष्ट विरहकाल	अवधि क्षेत्र
1. अ.अ. ग्रैवेयक	1	40	-	428 यो.	23 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
2. अ.म.ग्रैवेयक	1	36	-	428 यो.	24 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
3. अ.उ.ग्रैवेयक	1	32	-	428 यो.	25 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
4. म.अ. ग्रैवेयक	1	28	-	329 यो.	26 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
5. म.म. ग्रैवेयक	1	24	32	"	27 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
6. म.उ. ग्रैवेयक	1	20	-	"	28 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
7. उ.अ. ग्रैवेयक	1	16	-	230 यो.	29 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
8. उ.म.ग्रैवेयक	1	12	52	"	30 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
9. उ.उ. ग्रैवेयक	1	8	-	"	31 सा.	संख्यात हजार वर्ष	छठी पृथ्वी
10. अनुदिश	1	4	4	131 यो.	32 सा.	पल्य का असंख्यातवां भाग	लोक नाली
11. सर्वार्थ सिद्धि	1	-	-	131 यो.	33 सा.	"	"

आओ जानें तीनलोक

(हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर निर्मित तीनलोक रचना)

तीन लोक रचना–

त्रैलोक्यं मंगलं भूयात्, मंगलं नवदेवताः।
मंगलं जिनचैत्यानि, शान्तिनाथोऽस्तु मंगलम्।।1।।

यह तीनलोक रचना अनादिनिधन है–शाश्वत है। इसे न तो किन्हीं ने बनाया है और न कोई इसका नाश ही कर सकते हैं। ऐसा जैन शास्त्रों में कहा है। यह चौदह राजु ऊँचा है, सात राजु मोटा है और नीचे सात राजु चौड़ा है, पुनः घटते हुए मध्य में एक राजु रह गया है। पुनः बढ़ते हुए ब्रह्मस्वर्ग के पास पाँच राजु है, आगे घटते हुए ऊपर में एक राजु रह गया है। यहाँ एक राजु में असंख्यातों कोश होते हैं, ऐसी भगवान महावीर की वाणी है।

अधोलोक–इसमें मध्यलोक से नीचे अधोलोक में दश भाग हैं। नीचे के भाग में निगोदजीव हैं ये बहुत ही सूक्ष्म–छोटे-छोटे हैं, जो कि हमें और आपको आँखों से नहीं दिखते हैं भगवान ने अपने ज्ञान से देखा है। हमें और आपको अब ऐसे पुण्य कार्य करना है, जिससे कि इस निगोदयोनि में न जाना पड़े।

पुनः दूसरे भाग में सातवाँ नरक है, ऐसे क्रम से सात नरक हैं। इन नरकों में नारकी जीव बहुत ही विकृत–भयंकर रूप वाले हैं। जो यहाँ हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, जुआ खेलना, शिकार करना, परस्त्री और वेश्यासेवन करना आदि पाप करते हैं, वे मरकर नरक में जाकर बहुत ही दुःख पाते हैं। ऐसे सातों नरक में नारकी यहाँ दिखाये गये हैं।

इन नरकों के दुःखों को देखकर शराब, मांसाहार आदि का त्याग करके पापों से दूर रहने का नियम करें कि जिससे नरक में कभी भी न जाना पड़े, यहाँ से यही प्रेरणा लेना है।

खरभाग-पंकभाग–इन 1 निगोद और 7 नरक ऐसे 8 भागों के बाद दो भागों में देव-देवियाँ रहते हैं, इन्हें खरभाग व पंकभाग कहते हैं। जो यहाँ पुण्य करते हैं, जीवदया, सत्य आदि धर्म पालते हैं, वे इन देवों में जन्म

लेकर बहुत वर्षों तक सुख ही सुख पाते हैं। इन दो भागों में देवों के यहाँ सातकरोड़, बहत्तर लाख (77200000) जैन मंदिर हैं। व्यंतर देवों के यहाँ और भी अनेक जैन मंदिर हैं। ये देव-देवियाँ एवं 18 जैन मंदिर यहाँ दिखाये गये हैं। इनके आगे चैत्यवृक्ष हैं, उनमें भी जिनप्रतिमा विराजमान हैं। इनके दर्शन से जन्म-जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, बहुत पुण्य मिलता है एवं सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। धरणेन्द्रदेव और पद्मावती देवी पाताललोक में ही रहते हैं।

मध्यलोक—इन अधोलोक के दश भागों के ऊपर बीचों बीच में मध्यलोक है। इस मध्यलोक में बीचों बीच में जम्बूद्वीप है। इसे घेरकर बहुत से द्वीप-समुद्र हैं। तेरह (13) द्वीपों तक मध्यलोक के चार सौ अट्ठावन (458) जैन मंदिर हैं। इन्हीं में पाँच मेरू हैं और आठवाँ नंदीश्वरद्वीप है तथा चक्रवर्ती, राजा, महाराजा एवं साधारण मनुष्यों द्वारा बनवाये गये बहुत ही जैनमंदिर आदि हैं।

यह सभी रचना आप यहाँ हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप रचना व तेरहद्वीप रचना में देखते हैं।

इसी मध्यलोक में ढाईद्वीप तक अर्थात् एक जम्बूद्वीप दूसरा धातकीखण्डद्वीप, तीसरे में आधा पुष्करद्वीप ऐसे ढाईद्वीप तक ही मनुष्य जन्म लेते हैं। हम और आप सभी मनुष्य इस प्रथम जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में भरतक्षेत्र के आर्यखंड में रह रहे हैं, जिसे आप खुले जम्बूद्वीप की रचना में देखिए।

यहाँ पर असंख्यातों पशु-पक्षी आदि तिर्यंच प्राणी भी रहते हैं।

यहाँ पर मनुष्य और पशु-पक्षी जो भी अच्छे या बुरे कार्य करते हैं, उसी के अनुसार नरक या स्वर्ग में जन्म लेते हैं।

इसी मध्यलोक में तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, शांतिनाथ, महावीर स्वामी आदि हुए हैं। भरतचक्रवर्ती आदि चक्रवर्ती हुए हैं और श्रीराम, लक्ष्मण, बलदेव, श्रीकृष्ण आदि बलभद्र-नारायण हुए हैं।

ज्योतिर्लोक—इसी मध्यलोक में आकाश में सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागण ऐसे पाँच प्रकार के ज्योतिषी देव हैं। इनके विमान हमें आपको दिख रहे हैं। जो प्रकाश दे रहे हैं। इन प्रत्येक विमानों में एक-एक जैन मंदिर हैं अतः ये असंख्यात जैन मंदिर हैं। परोक्ष से भी इनकी वंदना करने से

महान पुण्य मिलता है। यहाँ सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा के विमान दिखाये गये हैं।

ऊर्ध्वलोक—इस मध्यलोक से ऊपर ऊर्ध्वलोक है। इसमें आप बीस भाग समझिए। पहले सौधर्म-ईशान आदि सोलह स्वर्ग हैं, जो कि दो-दो एक साथ होने से 8 भागों में हैं। इसके बाद नव ग्रैवेयक हैं, जो कि क्रम से एक-एक हैं अतः ये 9 भाग हुए। अनंतर एक भाग में नव अनुदिश हैं और इसके ऊपर एक भाग में पाँच अनुत्तर विमान हैं। इस प्रकार ये 8+9+1+1=19 भाग हुए। इन 19 भागों में चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस (8497023) जैन मंदिर हैं। यहाँ स्वर्गों में इन्द्रों के महल, इन्द्रसभा, इन्द्र-इन्द्राणी, देव-देवियाँ व अप्सराएं आदि दिखाये गये हैं। तीर्थंकर भगवन्तों के लिए गृहस्थाश्रम में जहाँ से वस्त्र, अलंकार आदि लेकर देवगण वहाँ से लाकर उन्हें देते हैं, ऐसे मानस्तंभों में रत्नों के पिटारे भी बनाये गये हैं। इस तरह तीनलोक के अकृत्रिम—शाश्वत जैन मंदिरों की संख्या अधोलोक में 77200000+ मध्यलोक में 458+ऊर्ध्वलोक में 8497023=85697481 जैन मंदिर हैं तथा व्यंतर देवों के और ज्योतिषी देवों के असंख्यातों जैन मंदिर हैं, ये सब शाश्वत हैं। मनुष्य आदि द्वारा बनवाये गये अतीत, वर्तमान व भविष्यत् की अपेक्षा अनन्तों जैनमंदिर माने गये हैं। इन सबको परोक्ष में भी नमस्कार करने से अनंत-अनंतगुणा पुण्यबंध हो जाता है।

यहाँ पर अधोलोक में अर्थात् पाताललोक में 18 जैन- मंदिर विराजमान हैं। मध्यलोक में पाँच मेरु में, ज्योतिषी सूर्य, चन्द्रमा आदि में व अनेक भी जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। ऊर्ध्वलोक में—16 स्वर्ग में, 9 ग्रैवेयक में, 9 अनुदिश में और पाँच अनुत्तर में ऐसे 16+9+9+5=39 जैन मंदिर हैं। इन मंदिरों में 4-4 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। चैत्यवृक्षों में भी 4-4 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

तीनलोक रचना में जैनमंदिर—यहाँ निर्मित तीन- लोक रचना में पाताललोक में जैन मंदिर 18 और ऊर्ध्वलोक में 39 ऐसे 18+39=57 सत्तावन जैनमंदिर दिखाये गये हैं, उनमें 4-4 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। अन्यत्र चैत्यवृक्षों में व पाँच मेरु आदि में भी जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

जो मध्यलोक में भगवान की भक्ति करते हैं। साधुओं को आहारदान आदि

देते हैं। अहिंसा अणुव्रत आदि अथवा महाव्रत आदि का पालन करते हैं, वे सभी इन स्वर्गों में देव-देवी आदि में जन्म लेकर बहुत वर्षों तक सुखों का अनुभव करते हैं।

सिद्धशिला – इनके ऊपर सबसे अंत में सिद्धशिला है, जो कि अर्धचन्द्राकार या सीधे रखे हुए कटोरे के सदृश है। मध्यलोक के जो मनुष्य साधु बनकर तपश्चरण करके घातिया कर्मों का नाश कर देते हैं, केवलज्ञान प्राप्तकर लेते हैं, वे ही पुनः सभी कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, भगवान बन जाते हैं, वे ही सिद्धशिला के ऊपर जाकर विराजमान हो जाते हैं, वे अनंतानंत काल तक वहीं विराजमान रहेंगे, वे पुनः जन्म नहीं लेंगे। जन्म-मरण के दुःखों से छूट गये हैं। ऐसे सभी सिद्ध परमात्मा को हमारा अनंत-अनंत बार नमस्कार होवे। यहाँ सिद्धशिला पर 12 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

यहाँ तीन लोक रचना में विराजमान सभी जिनप्रतिमाओं को कोटि-कोटि नमन।

भजन

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज–जंगल जंगल धूम मची है.....

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से, बात सुनी है।
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है।-2
जम्बूद्वीप से पता चली है, बात सुनी है, बात सुनी है।
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।टेक.।।

ज्ञानमती, माताजी की, प्रेरणा मिली है।
इसीलिये, भक्तों में नव, चेतना खिली है।-2
मैंने टी.वी. के माध्यम से, बात सुनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।1।।

अधोलोक में, नरक भयावह, देखो कितने।
पापकर्म, करने वाले, जाते हैं उनमें।।
मध्यलोक से मोक्षगमन की, बात सुनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।2।।

ऊर्ध्वलोक में, स्वर्ग देखकर, मन ललचाता।
पुण्यकर्म, करने से मानव, स्वर्ग में जाता।।
अर्धचन्द्रसम सिद्धशिला की, बात सुनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।3।।